



UGC App. No. 64785
Impact Factor: 3.012
ISSN 2348-3857

Research Reinforcement

(A Peer Reviewd International Refereed Journal)

रिसर्च रिइन्फोर्समेंट

Volume 5

Issue 2

November 2017 - April 2018



Research Reinforcement

(A PEER REVIEWED INTERNATIONAL REFEREED JOURNAL)

Editor's Desk

Patron

Shri Rajendra Prasad Gupta

RAS (Rtd.), Govt. of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Editor in Chief

Dr. Pankaj Gupta

Assistant Professor, Department of College Education, Govt. of Rajasthan

Editors

Dr. Sanjay Kedia

Assistant Principal, IIERD, Jaipur (Raj.)

Dr. Archana Bansal

Lecturer, Govt. S.S. School, Jaipur (Raj.)

Associate Editors

Dr. Vinod K. Bhardwaj

Assoc. Prof., Dept. of College Edu., Govt. of Raj.

Dr. Shiv Kumar Mishra

Asst. Prof., Govt. P.G. College, Kota (Raj.)

Dr. Jagadeesh Giri

Asst. Prof., University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Ms. Deepshikha Parashar

Asst. Prof., The IIS University, Jaipur (Raj.)

Dr. Shikha Sharma

University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Advisory Board

Prof. B.L. Sukhwai

Wisconsin University, Madison, USA

Dr. Kedar P. Acharya

UGC, Nepal

Prof. P.N. Shastry

Vice Chancellor, Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi

Prof. Uma Gole

Pt. Ravishankar Shukla University, Raipur (Chh.)

Prof. Ravindra G. Jayabhaye

Savitribai Phule Pune University, Pune (Maharashtra)

Prof. P.S. Bhatnagar (Rtd.)

University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Dr. Vimal Prasad Agarwal

Ex-Chairman, RBSE, Ajmer (Raj.)

Dr. Inakshi Chaturvedi

University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Prof. H.S. Sharma

University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Prof. B. Srinagesh

Osmania University, Hyderabad (Telangana)

Prof. Syeda Rozana Rashid

Dhaka University, Bangladesh

Prof. Miroljub Jevtic

University of Belgrade, Belgrade

Prof. Kaushal Kishore Mishra

Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

Prof. Rajeev Gupta (Rtd.)

University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Prof. K.G. Sharma

University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Prof. B.L. Fadia (Rtd.)

JNV University, Jodhpur (Raj.)

Prof. M. Pareek (Rtd.)

University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Prof. S.K. Sharma

Chaudhary Charan Singh University, Meerut (U.P.)

Prof. K.S. Sharma

The IIS University, Jaipur (Raj.)

Prof. Archana Purohit

Mata Jijabai Govt. Girls College (Auto.), Indore (M.P.)

Board of Refrees

Dr. Nandkumar N. Sawant

Principal, Parvatibai Chowgule College, Madgaon (Goa)

Dr. Wangshimenla Jamir

Assoc. Prof., Nagaland Central Uni., HQ Lumami (Nagaland)

Dr. Sameena Hameed

Assoc. Prof., SIS, JNU (Delhi)

Dr. Anju Beniwal

Asst. Prof., Sociology, Govt. Meera Girls College, Udaipur (Raj.)

Dr. Sherap Bhutia

Asst. Prof., Darjeeling Govt. College, Darjeeling (W.B.)

Dr. Ibalari Phylla Khongjoh

Asst. Prof., Economics, Synod College, Shillong (Meghalaya)

Dr. Batskhem Myrboh

Asst. Prof., Pol. Sci., Synod College, Shillong (Meghalaya)

Virendra Sharma

Asst. Prof., History, Govt. Girls PG College, Ajmer (Raj.)

Dr. Shivangna Sharma

Assoc. Prof., Sanskrit, Govt. Arts College, Chimanpura, Jaipur (Raj.)

Dr. Savita Mishra

Principal, Vidyasagar College of Education, Darjeeling (W.B.)

Dr. Aditi Pednekar

Economics, Jaipur (Raj.)

Dr. Monika Kannan

Head, Geography, Sofia Girls Autonomous College, Ajmer (Raj.)

Dr. Iyatta M. Upreti

Principal, Sikkim Govt. College, Rhenok (Sikkim)

Dr. Sheenu Jain

Asst. Prof., Jaipuria Institute of Management, Jaipur (Raj.)

Dr. Shakti Singh Shekhawat

Asst. Prof., Pol. Sci., Govt. College, Jaipur (Raj.)

Dr. Ravindra Tailor

Asst. Prof., History, Maulana Azad University, Jodhpur (Raj.)

Dr. Avdhesh Sharma

Asst. Prof., Sanskrit, Govt. Arts College, Chimanpura, Jaipur (Raj.)

Dr. Vishal Vikram Singh

Vice Principal, Raj. College, Uni. of Rajasthan, Jaipur, (Raj.)



Research Reinforcement

(A PEER REVIEWED INTERNATIONAL REFEREED JOURNAL)

From the Editor's Desk

Discoveries of new phenomena and creation of new knowledge are the main task of scientific research. Research contributes in shaping the future of the society. There are several ways in which knowledge can be generated and utilized. It has multifarious benefits for individuals and nations. It enhances quality of life, public services and policy matters. Simultaneously research has a great responsibility of transforming the society. The development of sustainable lifestyle is a crucial challenge for contemporary societies. The prevailing challenge in current research scenario is to strike a balance between technological development and ecological sustainability. Research should not only be concerned with acquisition of new knowledge or the elaboration of new technologies. Nowadays it is widely accepted that research requires social and moral legitimization, transparency and participation of public. It should assist to make this world a better place to live. This require to couple research with the needs of society.

RRJ is an opinion maker predominantly marked by evidences produced through the research work it publishes. RRJ emphasise on critical and analytical writings which aids in shift in opinion and build a fresh perspective. The journal tackles recent events and issues and makes an attempt to formulate a viewpoint based on objective analysis. The journal strike a balance by reconciling various contradictory opinions and enlightened the readers without being prejudice or dogmatic, which thereby helps in the paradigm shift from existing pattern of disciplinary study to interdisciplinary character of academics

This journal is a small step toward creating a sustainable society. The topics covered in this volume are diverse and relevant for present time. In this spirit of continuous improvement any productive suggestions on streamlining our endeavour is very welcome. We look forward towards the valuable contribution from our readers and patrons.

Best Wishes

Editors



Research Reinforcement

(A PEER REVIEWED INTERNATIONAL REFEREED JOURNAL)

Contents

S.No.	Particulars	Page No.
1.	चीन द्वारा हिन्द महासागर में भू राजनीति में दखल : एक विश्लेषण क्षिप्रा शर्मा	1
2.	मोहन राकेश और कमलेश्वर की कहानियों के प्रभाव स्रोत—अंतर्दर्शी विश्लेषण कैलाश गहलोत	6
3.	सविनय अवज्ञा : हेनरी डेविड थोरो एवं महात्मा गाँधी—एक तुलनात्मक अध्ययन डॉ. रुचि मिश्रा	11
4.	कालिदास के नाटकों में वस्त्र-विन्यास सुमन जांगिड़ एवं डॉ. अर्चना श्रीवास्तव	17
5.	भारत के उत्तरपूर्वी राज्यों में अलगाववाद : समस्याएं व समाधान श्रीमति नीतू गुप्ता	21
6.	भगवद् गीता में मोक्ष की अवधारणा आशा मीणा	29
7.	लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं पंचायती राज : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास यात्रा डॉ. मनोज कुमार शर्मा	34
8.	श्री अरविन्द का सामान्य जीवन दर्शन रणसिंह यादव	38
9.	चुनावों में मीडिया की भूमिका राजेश चौधरी	43
10.	राजस्थान के आदिवासी युवाओं में शिक्षा एवं मूल्य परिवर्तन दीपाली भार्गव	47
11.	बाल श्रम : दशा, दिशा एवं निवारण डॉ. अनिल कुमार शर्मा	51
12.	अमरकांत की कहानियों में आम आदमी ज्योति शर्मा	56

S.No.	Particulars	Page No.
13.	स्वच्छ भारत अभियान : गाँधी जी एवं वर्तमान संदर्भ राजेश गुप्ता	60
14.	बौद्ध धर्म में अहिंसा के व्यावहारिक आधार—एक ऐतिहासिक अध्ययन अन्जु लता मीणा	64
15.	भारत-फिलीस्तीन सम्बन्ध : वर्तमान परिप्रेक्ष्य डॉ. सीताराम चौधरी	68
16.	राजस्थान के माध्यमिक विद्यालयों की सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं एवम् अध्यापिकाओं की निर्णय प्रक्रिया का विद्यालयी वातावरण पर प्रभाव का अध्ययन डॉ. रितु कन्धल	72
17.	चौधरी चरणसिंह के आर्थिक विचार डॉ. हरगोविंद सिंह	77
18.	सर्वधर्म समभाव: मानव कल्याण का आधार स्तम्भ सुमन मोर्य	81
19.	भारतीय संघ व्यवस्था—वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में केन्द्र-राज्य सम्बन्ध डॉ. धर्मराज शर्मा	86
20.	भूटान की जनसंख्या, संस्कृति व राजनैतिक संगठन डॉ. कन्हैया लाल मीना	91
21.	भारत की डी-हाइफनेटेड की नई विदेश नीति (इजराइल के विशेष संदर्भ में) डॉ. बबीता चौधरी	95
22.	भारत में आतंकवाद—चुनौती एवं समस्या डॉ. कौसर फिरदौस जाफरी	100
23.	अलवर जिले में कृषि का आधुनिकीकरण एवं भौगोलिक अध्ययन डॉ. मीनाक्षी शर्मा	105
24.	महिलाओं की राजनीति में सहभागिता एवं सशक्तिकरण डॉ. सुनीता गोयल	108
25.	भारतीय राजनीति का बदलता स्वरूप मनुसिंह	112
26.	सामाजिक न्याय की समस्या: सर्वोदयी विकल्प मुकेश कुमारी	116
27.	जलवायु परिवर्तन के वैश्विक प्रभाव दीपक कुमार अवस्थी	123
28.	राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एवं मानवाधिकार संरक्षण भवशेखर	127

चीन द्वारा हिन्द महासागर में भू राजनीति में दखल : एक विश्लेषण



क्षिप्रा शर्मा

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान

कनोडिया पी जी महिला महाविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

हिन्द महासागर आज विश्व राजनीति में महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। वैश्विक शक्तियों का ध्यान इस पर नियंत्रण करने पर लगा हुआ। वाणिज्य की दृष्टि से सामुद्रिक व्यापार बढ़ रहा है तथा वैश्वीकरण के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में काफी वृद्धि हुई है। लेकिन हिन्द महासागर पर कोई राष्ट्र अकेला नियंत्रण नहीं कर सकता है क्योंकि यहाँ पर चीन, भारत एवं अमेरिका के समान हित हैं। वैश्वीकरण के पश्चात् चीन ने अपने दरवाजे व्यापार के लिए खोल दिये हैं तथा वह अरब देशों, अफ्रीका एवं यूरोप में अपना व्यापार बढ़ा रहा है। इसके लिए उसे हिन्द महासागर के रास्ते की आवश्यकता है। भारत पहले से ही भौगोलिक दृष्टि से मजबूत होने के कारण हिन्द महासागर में महत्वपूर्ण है। शक्ति संतुलन बना रह सके इसके लिए भारत, चीन और अमेरिका की सामरिक हिस्सेदारी आवश्यक है। हालांकि इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल ये ही शक्तियाँ हिन्द महासागर में महत्व रखती हैं लेकिन शक्ति संतुलन के लिए मूल रूप से इन तीनों के मध्य एक सामरिक प्रबंध होना चाहिए।

संकेताक्षर : हिन्द महासागर, शक्ति संतुलन, भू-राजनीति, शांति क्षेत्र, सामरिक सम्बन्ध

हिन्द महासागर पर भारत, चीन और अमेरिका में से कोई राष्ट्र अकेला नियंत्रण नहीं कर सकता। तीनों की अपनी-अपनी इच्छाएँ और शक्ति प्रदर्शन का रूझान है। इसलिए वे निरंतर आपसी सहयोग और संघर्ष के माध्यम से संतुलन बनाए रखना चाहते हैं। चीन यह मानता है कि तीनों देशों के मध्य उनके मूलभूत हितों में टकराहट का कोई कारण नहीं है और उनके हितों में कोई संरचनात्मक संघर्ष निहित नहीं है। इसलिए इन त्रिभुजीय संबंधों में एक सुदृढ़ एवं गत्यात्मक संतुलन स्थापित हो सकता है। इसके लिए आवश्यक शर्त यह है कि वे आपस में एक-दूसरे में निष्ठा रखें और हिन्द महासागर में इनकी गतिविधियों एवं क्षेत्र में शांति स्थायित्व एवं सम्पन्नता को जन्म दें। तीनों के त्रिभुजीय संबंध एक क्षेत्रीय संरचना का निर्माण करते हैं जो वैश्विक शांति के लिए एक आधार प्रस्तुत कर सकती है। आज हिन्द महासागर सामरिक एवं व्यापारिक दृष्टि से अटलांटिक एवं प्रशान्त महासागर के समकक्ष आने का प्रयास कर रहा है। विश्व के एक तिहाई कार्गो परिवहन और दो तिहाई तेलीय जहाज हिन्द महासागर से होकर गुजरते हैं।

चीन एवं हिन्द महासागर

चीन दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका है और उसे अपने विकास हेतु हिन्द महासागर की बहुत आवश्यकता है। हिन्द महासागर उसके लिए सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि वह मध्य-पूर्व से जुड़ा हुआ है तथा एशिया पैसिफिक के देशों को यूरोप के देशों से जोड़ता है। चीन को अपनी आर्थिक शक्ति बढ़ाने और बनाए रखने के लिए सामुद्रिक हितों में वृद्धि करना अनिवार्य है। तथा इसके साथ-साथ इसकी रक्षा करना भी आवश्यक है। चीन की तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था उसी पर आधारित है और ऊर्जा के आयात के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक रास्ता हिन्द महासागर से होकर गुजरता है। इस कारण से चीन की बढ़ती हुई शक्ति के संदर्भ में हिन्द महासागर का महत्व भी बढ़ रहा है।

चीन धीरे-धीरे अपनी अर्थव्यवस्था में वृद्धि के लिए पेट्रोलियम के उत्पादन पर निर्भर होता जा रहा है और 1993 के पश्चात् वह दुनिया का सबसे बड़ा पेट्रोलियम आयात करने वाला देश बन गया है। कच्चे तेल की उसकी मांग 1995 से 2005 के मध्य दुगुनी हो गयी है और अगले 15 वर्षों से पुनः दुगुनी हो जायेगी। 2020 तक आते-आते यह अनुमान है कि चीन कच्चे तेल का 73 मिलियन

बैरल प्रतिदिन आयात करने लगेगा। जो कि सऊदी अरब के प्रतिदिन होने वाले उत्पादन का आधा है। 2050 तक आते-आते चीन अमेरिका से भी बड़ा तेल का आयातक राष्ट्र बन जायेगा। चूंकि चीन के पास तेल को रिजर्व रखने की क्षमता कम है और वह पूर्णतया प्रतिदिन तेल के आयात पर निर्भर है। इसलिए उसकी अर्थव्यवस्था के लिए प्रतिदिन तेल के आयात के रास्ते में रूकावट नहीं होनी चाहिए। अन्यथा उसकी अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। हिन्द महासागर में भी तेल एवं प्राकृतिक गैसों की प्रचुरता है वहीं पर्सिया की खाड़ी में विश्व के तेल रिजर्व में लगभग 62 प्रतिशत मौजूद है। हाल ही में की गई खोजों के अनुसार बंगाल की खाड़ी, लाल सागर, अरब सागर, अफ्रीका के पूर्वी तटीय क्षेत्रों और मेडागास्कर के चारों तरफ पानी में पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस के भंडार मिले हैं। इस कारण भी हिन्द महासागर ऊर्जा की दृष्टि से महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। चीन अपने तेल की पूर्ति के लिए इन भंडारों एवं इस समुद्री रास्ते पर पूर्णतया निर्भर होता जा रहा है। इस कारण उसके लिए हिन्द महासागर में सुरक्षित व्यापार एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन रहा है। तेल एवं गैस के अलावा इस क्षेत्र में खनिज पदार्थ जैसे लोहा, मैंगनीज, बैनेरियम, क्रोमियम, यूरेनियम इत्यादि खनिज पदार्थों की भी बहुलता है और ये सभी चीन के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक हैं। इसी कारण चीन ने दक्षिण-पश्चिम हिन्द महासागर के क्षेत्र में 2011 में दस हजार स्क्वायर फीट खुदाई करने का अधिकार प्राप्त किया है। चीन का विदेशी व्यापार का प्रतिशत भी तेजी से बढ़कर 40 प्रतिशत से 80 प्रतिशत हो गया है और वह विश्व का सबसे अधिक विदेशीय व्यापार पर निर्भर रहने वाला देश बन चुका है। चीन के आयात व निर्यात का 90 प्रतिशत माल समुद्र के रास्ते से जाता है और इसलिए अपनी सामुद्रिक सुरक्षा को लेकर चीन बहुत सजग है।

हिन्द महासागर इस कारण भी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि वह चीन के व्यापारिक रास्ते में दक्षिण एशिया मध्य-पूर्व, यूरोप व अफ्रीका को जोड़ता है। आज के संदर्भ में चीन समुद्री रास्ते जो चीन के बन्दरगाह से आरंभ होते हैं उन्हें चार भागों में विभक्त किया जाता है। 1. पूर्वी 2. पश्चिमी 3. दक्षिणी और 4. उत्तरी रास्ता। इनमें से पश्चिमी रास्ते उसके व्यापार का लगभग 40 प्रतिशत वहन करते हैं। अरेबियन द्वीप से पश्चिमी प्रशान्त महासागर तक के रास्ते को सामुद्रिक सिल्क रोड कहा जाता है। हिन्द महासागर इसमें से अधिकतर रास्ते को बनाता है और इसलिए वह चीन की सामरिक एवं विदेशीय व्यापार के आयात की जीवन रेखा है। चीन के तेल के आयात का 30 प्रतिशत पर्सिया की खाड़ी एवं उत्तरी हिन्द महासागर से मलक्का की खाड़ी होकर जाता है। चीन जाने वाले

व्यापारी जहाज के 60 प्रतिशत मलक्का की खाड़ी से गुजरते हैं तथा लगभग एक हजार चीनी व्यापारिक जहाज अदन की खाड़ी से प्रतिवर्ष गुजरते हैं। चीन, अफ्रीका और यूरोपीयन यूनियन का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदारी बन चुका है और उनके मध्य व्यापार का आदान-प्रदान हिन्द महासागर के द्वारा ही होता है। इस पूरे रास्ते में भारत के द्वारा हस्तक्षेप करना अत्यन्त आसान है और किसी भी संकट या संघर्ष के समय यह रास्ता रोका जा सकता है जिससे चीन की अर्थव्यवस्था गड़बड़ा सकती है और उसका अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव कम हो सकता है। यह माना जाता है कि किसी जमाने में किसी देश की सुरक्षा का खतरा उस देश पर आक्रमण करने से बनता था लेकिन आजकल किसी देश के समुद्री रास्तों में बाधा पहुँचा दी जाये तथा उससे आर्थिक संबंधों में अवरोध पैदा हो तो किसी भी देश से खतरा उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार चीन का अपनी अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति को बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि वह अपने समुद्री रास्तों में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न होने दें। चीन इसी लिए हिन्द महासागर पर भारत या अमेरिका का प्रभूत्व नहीं होने देना चाहता अपितु अपनी भू-राजनीतिक सुरक्षा के लिए इसमें बराबरी का हिस्सा चाहता है।

चीन और अमेरिका की प्रतिस्पर्द्धा

चीन के द्वारा हिन्द महासागर में अपनी गतिविधियाँ बढ़ाने के कारण अमेरिका ये महसूस करने लगता है कि आने वाले समय में चीन उसकी भूमिका पर प्रश्न चिन्ह लगायेगा। भारत पहले से ही भौगोलिक स्थिति में मजबूत होने के कारण हिन्द महासागर में महत्वपूर्ण बन चुका है। इसलिए शक्ति संतुलन बना रह सके इसके लिए भारत, चीन और अमेरिका को सामरिक हिस्सेदारी करनी चाहिए। हालांकि इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल ये ही शक्तियाँ हिन्द महासागर में महत्व रखती हैं लेकिन शक्ति संतुलन के लिए मूल रूप से इन तीनों के मध्य एक सामरिक प्रबंध होना चाहिए। यह सामरिक प्रबंध किस प्रकार से हो इसके बारे में अलग-अलग प्रकार के सिद्धान्त हैं-राजनीतिक यथार्थ और सामाजिक निर्माणवाद के सिद्धान्त इस प्रबंध को स्थापित करने के लिए अलग-अलग प्रकार के दृष्टिकोण अपनाते हैं। डेविड वालग्रीन¹ ने कैनेथ वॉल्टज के यथार्थावादी सिद्धान्त के आधार पर हिन्द महासागर में शक्ति संतुलन के सिद्धान्त को विश्लेषित किया। कैनेथ वॉल्टज के अनुसार उच्च शक्ति के सामर्थ्य वाले राज्य अपने भौगोलिक एवं आर्थिक क्षमताओं के साथ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इस प्रकार व्यवहार करते हैं जिससे कि शक्ति राजनीति में उनका महत्व बना रह सके। वॉल्टज के अनुसार उत्तर शीत युद्ध के अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में जो बहुध्रुवीय विश्व की तरफ बढ़ रही है। राज्य प्रभावी

शक्ति के विरुद्ध एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास करते हैं। वालग्रीन² के अनुसार की शक्ति में आर्थिक और सैनिक शक्ति में वृद्धि से यह संभावना हो रही है कि वह अपनी शक्ति में वृद्धि के साथ अमेरिका के प्रभुत्व को चुनौती प्रस्तुत करेगा। वास्तविक शक्ति या खतरे की अपेक्षा खतरे की संभावना को दृष्टिगत रखते हुये इस खतरे की संभावना के विरुद्ध संतुलन बनाते हैं न कि किसी वास्तविक शक्ति के विरुद्ध। किसी भी राज्य की सुरक्षा या धमकी संबंधी धारणा उसकी भौगोलिक समयुक्ता मारक शक्ति और गंतव्यों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है। वालग्रीन³ के अनुसार ये सभी मापदण्ड चीन व अमेरिका के संतुलन में देखे जा सकते हैं। अमेरिका के सैनिक शक्ति के जापान एवं दक्षिणी कोरिया में उपस्थिति और पश्चिमी प्रशांत महासागर में अमेरिकी सातवें बेड़े की उपस्थिति चीन के संबंधों में शक्ति की धमकी की भूमिका अदा करते हैं। चीन किसी प्रकार से अमेरिकी सैनिकों की सामरिक एवं परम्परागत दृष्टि से अधिक शक्तिशाली होने को भी धमकी का संकेत मानता है। चीन अमेरिका द्वारा ताइवान को दिया जाने वाला समर्थन और एशिया पैसिफिक में उसकी मित्र मण्डलों की संरचना को वह चीन को घेरने की नीति का अंग मानता है। ये एक सामान्य अवधारणा है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एक राज्य के द्वारा सुरक्षा में वृद्धि को दूसरे राज्यों के द्वारा धमकी के रूप में लिया जाता है और इसे सुरक्षा असामंजस्यता की संज्ञा दी जाती है। यह भी माना जाता है कि वह राज्य जो अपनी सुरक्षा को लेकर अधिक चिंतित रहते हैं। वे अपनी सुरक्षा के खतरे को अधिक करके आंकते हैं चाहे इसका स्रोत अस्पष्ट हो। सुरक्षा की असामंजस्यता चीन तथा अमेरिका के संबंधों में भी देखी जा सकती है।

चीन के द्वारा अमेरिका द्वारा ताइवान को उच्च स्तर की सुरक्षा सामर्थ्य प्रदान करना इसके लिए खतरा माना जाता है। इसके जवाब में चीन द्वारा अपनी सुरक्षा व्यवस्था को आधुनिक बनाने के प्रयास अमेरिका द्वारा ताइवान के लिए अप्रत्यक्ष रूप से उसके लिए खतरे का संकेत है। अमेरिका के सामर्थ्यक राज्यों और अमेरिका की साझेदारी में एशिया पैसिफिक क्षेत्र में सैनिक उपस्थिति में चीन सुरक्षित महसूस करता है और अपनी सैनिक का आधुनिकरण कर रहा है। इसके जवाब में अमेरिका और उसके क्षेत्रीय साथी विशेषकर जापान अपनी शक्ति को आधुनिक कर उसकी पुनर्संरचना कर रहे हैं। इस प्रकार चीन अपनी सुरक्षा व्यवस्था की निरंतर जाँच पड़ताल कर उसे आधुनिक बनाकर अमेरिका के साथ एक अनौपचारिक शक्ति संघर्ष में लिप्त है। उसकी प्रभुत्व की स्थिति समाप्त करने के लिए प्रयासरत है। हालांकि अभी चीन को अमेरिका से बराबरी करने में बहुत समय लगेगा, यह बात चीन भी समझता है और

अपनी शक्ति में निरंतर में वृद्धि करने का प्रयास कर रहा है। चीन के लिए हिन्द महासागर में अपनी शक्ति बढ़ाने की एक प्रयोगशाला है और यहीं से वह अन्य क्षेत्रीय शक्तियों व अमेरिका को सशक्त चुनौती प्रस्तुत कर सकता है। इसी दृष्टि से चीन पाकिस्तान को निरंतर समर्थन देने के साथ-साथ भारत के साथ मैत्री पूर्ण संबंध बनाये रखना चाहता है। जिससे भारत चीन की बढ़ती शक्ति को रोकने का प्रयास न करें इसलिए वह भारत की शक्ति को भी हिन्द महासागर क्षेत्र में संतुलित बनाये रखना चाहता है। चीन के द्वारा ग्वादर प्राजेक्ट का समर्थन भारत की शक्ति को रोकने का प्रयास माना जा सकता है। चीन, भारत, अमेरिका के नौ परिवहन संबंधों के बढ़ने को चिंता की दृष्टि से देखता है। चीन हिंद महासागर में अपनी नौ सैनिक उपस्थिति स्थाई रूप से रखना चाहता है जिससे वह भारत व अमेरिका का मुकाबला कर सके। चीन के ईरान से बढ़ते संबंधों को इसी दृष्टिकोण से देखा जा सकता है कि दोनों देश चीन के हार्मुज की खाड़ी व दक्षिण एशिया में बढ़ते प्रभुत्व को रोकना चाहते हैं। चीन इस प्रकार से अपनी बढ़ती आर्थिक शक्ति के साथ सैनिक शक्ति में भी वृद्धि कर कर एक वैश्विक शक्ति जिसका प्रभुत्व अमेरिका के समक्ष हो बनाना चाहता है।

चीन की रणनीति

चीन के हिंद महासागर में मोतियों की माला/हार की रणनीति को भी संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। इस रणनीति के अन्तर्गत चीन अपने भू-भाग से दक्षिण चीन समुद्र मलक्का की खाड़ी हिंद महासागर से लेकर अरब सागर और पर्सीया की खाड़ी तक तटीय देशों को एक सुरक्षा के घेरे में डालना चाहता है। इसके लिए उसने आइनर द्वीप, मुड़ी द्वीप, चटगांव, और पाकिस्तान के ग्वादर बन्दरगाह और अन्य प्रोजेक्ट में सहायता दी है। इसके माध्यम से चीन अपना महत्व हिंद महासागर में बढ़ाना चाहता है हालांकि चीन के विशेषज्ञ इस मोतियों की माला को एक मनगढ़ंत कथा बताते हैं जो अमेरिकी विशेषज्ञों द्वारा रची गई है और जो चीन की विदेश नीति को बदनाम करने का प्रयास है। क्रिस्टोफर पेहर्सन⁴ के अनुसार 'मोतियों का हार' चीन के केन्द्रीय नेतृत्व की सोची समझी नीति नहीं है अपितु उसके द्वारा प्रयुक्त विदेश नीति को अमेरिकी विशेषज्ञ द्वारा भ्रष्ट करके बताई गई है। जहाँ अमेरिका हिंद महासागर को नौ परिवहन के लिए एक स्वतंत्र क्षेत्र बनाये रखना चाहता है वही चीन के बढ़ते प्रभाव ने उसमें संदेह उत्पन्न कर दिया है।

चीन द्वारा भारत के पड़ोसी देशों में बन्दगाहों पर सामरिक महत्व के निर्माण का यह अर्थ लगाना आसान है कि चीन अपनी नौ

सैनिक शक्ति बढ़ा रहा है। राजनीतिक यथार्थवादी दृष्टिकोण के अलावा सामाजिक निर्माणवादी चिंतन से भी हिंद महासागर क्षेत्र की राजनीतिक गतिविधियों को समझने का प्रयास किया गया है। अलस्टेयर जोन्सटन⁵ ने इस दृष्टिकोण का उपयोग करते हुये इस बात पर बल दिया है कि विशेष आदर्शात्मक संरचनाएँ जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होती हैं, विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में उनको और उनके मूल्यों को कई स्तर पर कैसे काम में लाया जाता है। यह जानना आवश्यक है। सामाजिक निर्माणकताओं के लिए सामाजीकरण वह प्रमुख प्रक्रिया है जो संरचनाओं को उनके एजेंट से जोड़ती हैं। इसमें यह समझा जाता है कि चीन अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की संदर्भ में एक नया खिलाड़ी है जो 1990 के दशक में अन्तर्राष्ट्रीय जगत में महत्वपूर्ण बना है। इस दृष्टिकोण से यह नहीं माना जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राज्य निरंतर राजनीति में व्यस्त रहते हैं और अपनी शक्ति को बढ़ाने का प्रयास करते हैं। इसके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति भी कुछ आदर्श मानको पर आधारित होती है और उनको बनाये रखने हेतु राज्य आपस में सहयोग भी करते हैं और इस कारण आपसी संघर्ष को निपटाने के लिए हमेशा सैनिक शक्ति का उपयोग ही नहीं किया जाता। राज्य अपने संबंधों में एक खुलापना भी रखते हैं और बात-चीत के माध्यम से अपने संबंधों को बनाने में यकीन रखते हैं। उत्तर शीत युद्ध में सामान्य सुरक्षा की अवधारणा अधिक महत्वपूर्ण बनी है और पुरानी सुरक्षा अवधारणाओं को नये तरीके से परिभाषित किया जा रहा है। पुरानी सुरक्षा अवधारणा शक्ति संतुलन के सिद्धान्त पर आधारित थी। उसके स्थान पर वर्तमान में आपसी सुरक्षा की बात की जा रही है। इसके अनुसार अपनी सुरक्षा के लिए पड़ोसी सुरक्षा आवश्यक है। आपसी सुरक्षा में सहयोगी सुरक्षा और व्यापक सुरक्षा की अवधारणाएँ सम्मिलित हैं जिसके बारे में 1990 से पहले चीन अनभिज्ञ था। 90 के दशक में खुली व्यवस्था को अपनाने के पश्चात् चीन में भी इस पर चिंतन आरंभ हुआ और उन्होंने अपनी नई सुरक्षा अवधारणा को आपसी सुरक्षा से जोड़ा। इसके अनुसार सुरक्षा में जीत या हार उत्पन्न ही किये जाते अपितु यह आपसी समझ और समान सुरक्षा तथा सहमति पर आधारित होती है। कुछ विशेषज्ञों के अनुसार इस क्षेत्र में चीन की भविष्य की सुरक्षा के अन्तर्गत परम्परागत भू-भागीय राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा महत्वपूर्ण नहीं रह गई। विश्व में बढ़ती हुई गैर परम्परागत सुरक्षा समस्याएँ केवल राष्ट्रीय सैनिक शक्ति को विकसित करने से समाप्त नहीं हो सकती। इसके लिए बहुआयामी सरकारी समाधानों की आवश्यकता है। इस प्रकार की बहुआयामी सुरक्षा की अवधारणा सार्वभौमिक आदर्शवादी मूल्यों पर आधारित

है। किसी क्षेत्र विशेष के लिए निर्मित नहीं हुई है। सुरक्षा की नई अवधारणा बहुपक्षीय है और जोस्टन⁶ के अनुसार इसके द्वारा कम से कम तीन तरह से राज्यों के उग्र व्यवहार को नियंत्रित किया जा सकता है।

1. आपसी सुरक्षा के सिद्धान्त को अपनाने से यथार्थवादी राजनीति का नियंत्रण होता है जिससे आपसी मतभेद के संदर्भ में सैनिक कार्यवाही की संभावना कम हो सकती है।
2. इस प्रकार का आदर्शवादी विमर्श ऐसे सकारात्मक व्यवहार को बढ़ावा देता है इसके अभाव में संभव नहीं है। यह सहकारी नीतियों को बढ़ाने और बात-चीत से संबंधों को सुधारने पर बल देता है। यह आदर्श मूल्यों पर बल देकर नीति निर्माण तत्वों को बढ़ाने की बात करते हैं इसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के बहुत से विकल्प सीमित कर दिये जाते हैं जिससे यथात् राजनीति के पक्षधर एक पक्षीय कार्यवाही करने की वकालत नहीं कर पाते। इस प्रकार के सहकारी सुरक्षा के सिद्धान्त नौ परिवहन पर भी लागू होते हैं और समुद्र रास्तों की सुरक्षा का एक नया तरीका सामने आता है। गैर परम्परावादी सुरक्षा की धमकी तथा तकनीको के बढ़ते प्रभाव के कारण आदर्शात्मक दृष्टिकोणों के ज्यादा सफल होने की संभावना है। इसलिए चीन को इस प्रकार के शांतिपूर्ण वातावरण को बढ़ाने की आवश्यकता है जो हिंद महासागर सहअस्तित्व को स्वीकार कर सकें।

अमेरिका चीन के द्वारा हिंद महासागर में अपनी उपस्थिति बढ़ाने के प्रयास को रोकने के लिए कई प्रकार के प्रयास कर रहा है। 2005 तक चीन द्वारा मोतियों की माला के अन्तर्गत शामिल नहीं था लेकिन 2006 में राजामोहन⁷ श्रीलंका के दक्षिणी भाग में हम्बनटोटा पोर्ट डेवलेपमेंट प्रोजेक्ट को इसमें शामिल करते हुये मोतियों के हार को विस्तृत किया। ये प्रोजेक्ट चीन के द्वारा बनाया जा रहा है और इसे आर्थिक सहायता भी दी जा रही है। इसका उद्देश्य एक अविकसित हिस्से को विकसित करना था लेकिन तीनों बड़ी शक्तियों के त्रिभुज से यह भी सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया। चीन के द्वारा वाणिज्यिक शक्ति बढ़ाने के प्रयास को अन्ततः सैनिक शक्ति बढ़ाने का प्रयास माना गया है। एक महत्वपूर्ण कारक मोतियों की माला सिद्धान्त को व्यापक स्वीकृति मिलने का यह है कि चीन-अमेरिका के, चीन-भारत के मध्य अविश्वास की भावना बढ़ रही है। इस अविश्वास की भावना से समुचित शांति व संतुलन के प्रयास नहीं किये जा रहे। इसके द्वारा

बहुपक्षीय सहयोग में भी बाधा पहुँच रही है और श्रीलंका के राष्ट्रीय हितों को भी नुकसान हो रहा है। श्रीलंका अपने क्षेत्र के विकास के लिए सभी प्रमुख शक्तियों से संबंध बनाये रखना चाहता है इसलिए वह बहुपक्षीय संबंधों पर बल देता है। 2010 से श्रीलंका में प्रतिवर्ष गेले डायलॉग आरंभ हुआ जिसमें चीन व भारत की निरंतर भागीदारी रही है। अमेरिका द्वारा भी यह स्वीकार किया गया कि पूरे विश्व में अमेरिका अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत आपसी हित एवं आपसी समर्थन के आधार पर दूसरे देशों के साथ संबंध बनाये रखना चाहता है। विकास तभी संभव है जब उसमें सम्मिलित सभी देश एक-दूसरे के प्रति सम्मान की भावना रखें। गेले डायलॉग के अन्तर्गत होने वाले वार्षिक सम्मेलन में निरंतर वार्तालाप से हिंद महासागर को एक शांति क्षेत्र के रूप में विकसित होने में मदद मिली है। कुछ विद्वानों का मानना है कि यथार्थ की राजनीति की दृष्टि से भारत और अमेरिका की साझेदारी चीन पर नियंत्रण कर सकती है। भारत और चीन की शत्रुता उनके भू-भागीय सीमाओं के विवाद के कारण समाप्त नहीं होने वाली और इसलिए भारत अमेरिका के साथ मिलकर चीन की बढ़ती क्षमता को रोक सकता है। अमेरिका के साथी फिलिपींस का चीन के दक्षिणी चीन सागर में जलीय क्षेत्र को लेकर विवाद चल रहा है। इस प्रकार अमेरिका व भारत दोनों के चीन से सुरक्षा संबंधी विवाद हैं जबकि इन दोनों के मध्य में इस प्रकार के विवाद नहीं हैं। इससे भारत व अमेरिका के संबंधों में मधुरता बढ़ जाती है और हिंद महासागर में चीन द्वारा अधिक शक्ति के प्रयोग पर रोक लगाने पर सहमति बन जाती है। शक्ति संबंध बिगड़ने पर तो सैनिक शक्ति का होना आवश्यक है लेकिन सामान्य समय में सामाजिकता ही महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

हम कह सकते हैं कि चूंकि हिंद महासागर में किसी एक राज्य का प्रभुत्व होना कठिन है इसलिए तीनों देशों के संबंध अच्छे रहने पर ही यहाँ पर शक्ति संतुलन बना रह सकता है। अच्छे संबंध स्थापित करने के लिए केवल राजनीतिक संबंध ही काफी नहीं हैं अपितु सामाजिकता के स्तर पर भी प्रयास होने चाहिए। सामाजिकता को बढ़ाने की आवश्यकता है। सबसे कठिन कार्य श्रीलंका का है जो अपनी सीमित क्षमता के साथ इन तीन बड़े राष्ट्रों के साथ अपने राष्ट्रीय हितों को बचाने का प्रयास कर रहा है। उसके हितों की रक्षा के लिए आवश्यक है कि तीनों राष्ट्रों के मध्य एक संतुलन बना रहे।

संदर्भ सूची

1. वालग्रीन, डेविड, चाइना इन द इण्डियन ओशन रीजन : लेसन इन पी आर सी स्ट्रेटजी, कॉम्परेटिव स्ट्रेटजी, 25, 2006, पृ. 57-58
2. उपर्युक्त
3. उपर्युक्त
4. पेहर्सन, क्रिस्टोफर, स्ट्रिंग ऑफ पर्सस : मीटिंग द चैलेंजेस ऑफ चाइनाज राइजिंग पॉवर एक्रॉस द आसियान लिटोरल, जुलाई 2006, डब्लू डब्लू डब्लू . स्ट्रेटजिकस्टडीजइंस्टीट्यूट.आर्मी. मिल/पीडीएफफाईलस/पीयूबी721.पीडीएफ
5. जोन्सटन, अलस्टेयर, सोशलाइजेशन इन इंटरनेशनल इन्सटीयूशन : द आसियान वे एण्ड इंटरनेशनल रिलेशन्स थ्योरी, इन जी जॉन इकेनबरी एण्ड मिशेल मस्टेण्डुनो, ईडीस्स, इंटरनेशन रिलेशन्स थ्योरी एण्ड द एशिया पैसिफिक, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2003 पृ. 109-27
6. उपर्युक्त
7. राजामोहन सी., पॉलिसी ऑफ इंगेजमेंट इन द इण्डियन ओशन, जर्नल ऑफ इण्डियन ओशन स्टडीज वॉल्यूम 14 न. 1, अप्रैल 2006, पृ. 50

मोहन राकेश और कमलेश्वर की कहानियों के प्रभाव स्रोत—अंतर्दर्शी विश्लेषण



कैलाश गहलोत

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, सिरौही (राजस्थान)

शोध सारांश

मोहन राकेश और कमलेश्वर की कहानियों में देश की स्वातन्त्र्योत्तर संक्रमणकालीन परिस्थितियों ने स्वानुभूत अभिव्यक्ति पाई है। तत्कालीन परिस्थितियों में सामान्य व्यक्ति के जीवन की लगभग सभी समस्याएं और विषमताएं दोनों कहानीकारों की कहानियों में निहित हैं। इस दृष्टिकोण से दोनों कहानीकारों की कहानियों के प्रभाव स्रोतों का अंतर्दर्शी विश्लेषण प्रासंगिक है। प्रत्येक रचनाकार पर उनके अपने रिश्तेदारों, मित्रगण, जीवन साथी, साहित्यिक परिवेश, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक गतिविधियों तथा तत्कालीन समग्र परिवेश का प्रभाव रहता है। किसी रचनाकार के एक सफल रचनाकार के रूप में स्थापित होने की प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रभाव स्रोतों का पक्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। ये प्रभाव स्रोत ही लेखक के रचना संसार को निर्मित करते हैं। मोहन राकेश और कमलेश्वर के बीच घनिष्ठ मित्रता थी लेकिन उनके रचना धरातल अपने-अपने हैं। प्रस्तुत आलेख में मोहन राकेश और कमलेश्वर की कहानियों के विविध प्रभाव स्रोतों का अंतर्दर्शी विश्लेषण तुलनात्मक दृष्टिकोण के आधार पर किया गया है। दोनों कहानीकारों के प्रभाव स्रोत कहां एक-से हैं, कहां उनमें भिन्नता है तथा वे स्वयं एक दूसरे को किस तरह प्रभावित करते हैं, उक्त पक्षों का अंतः विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है।

संकेताक्षर : अंतर्दर्शी-सादृश्य संबंध परम्परा, प्रभाव स्रोत, प्रभाव क्षेत्र, लघु मानव और भौतिकतावाद, लेखकीय रचना संसार

मोहन राकेश और कमलेश्वर दोनों नई कहानी के सशक्त हस्ताक्षर हैं। मोहन राकेश उर्फ मदन मोहन गुगलानी का जन्म 8 जनवरी, 1925 ई. को अमृतसर, पंजाब में हुआ। “आधुनिक हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक मोहन राकेश का व्यक्तित्व और जीवन अत्यंत विरोधाभासी, चौंकाने वाला तथा आकर्षक था। जीवन एवं लेखन-दोनों में ठहराव और पुनरावृत्ति से राकेश को सख्त नफरत थी। उन्हें हर पल किसी अभूतपूर्व संवेदन और उत्तेजक अनुभव की तलाश रहती थी। वह एक नितांत असंभव और बेहतर ईमानदार व्यक्ति थे। अनेक दुस्साहसपूर्ण निर्णयों एवं अंतर्विरोधों के कारण वह अपने जीवनकाल में ही एक किंवदंती-सी बन गए थे।”¹ मोहन राकेश सोच और विचार के चेतन (बौद्धिक) स्तर पर जितने आधुनिक और प्रगतिशील थे, संस्कार और व्यक्तिगत जीवन में उतने ही मध्ययुगीन। उनका जीवन अन्तर्विरोधों से भरा हुआ था। कमलेश्वर उर्फ कमलेश्वर सक्सेना का जन्म 6 जनवरी 1932 ई. को उत्तरप्रदेश के मैनपुरी कस्बे में हुआ था। कमलेश्वर का प्रारंभिक जीवन अत्यन्त कठिनाईयों में बीता। कम उम्र में ही अपने पिता

और बड़े भाई सिद्धार्थ को खो देने के कारण असमय ही परिवार की जिम्मेदारियां भी उनके कंधों पर आ पड़ी। कमलेश्वर के अनुसार “एक अमीर कहे जाने वाले घर में गरीब की तरह रहना, खाना खाकर भी भूखा उठना, अकुलाहट भरे दुखों के बीच भी हँस सकना, बच्चा होते हुए भी वयस्कों की तरह निर्णय ले सकना—यह मेरी आदत नहीं, मजबूरी थी।”² समान्तर कहानी आंदोलन के माध्यम से कमलेश्वर ने वर्तमान विषम परिस्थितियों में सामान्य व्यक्ति के जीवन संघर्ष का चित्रण किया है। कमलेश्वर का सम्पूर्ण कहानी साहित्य सामाजिक विसंगतियों, टूटते जीवन मूल्यों, साम्प्रदायिकता की भयावह समस्याओं, राष्ट्रीय एकता के प्रयत्नों, बढ़ते हुए भ्रष्टाचार एवं समाज में अमानवीयता के प्रादुर्भाव आदि अनेक पक्षों को मुखरित करता है।

लेखक के जीवन पर पड़ने वाले विविध प्रभाव लेखकीय जीवन के उतार-चढ़ाव को तय करते हैं। प्रभाव स्रोतों के दृष्टिकोण से दोनों कहानीकारों के साम्य वैषम्य दृष्टव्य है। मोहन राकेश और कमलेश्वर के जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव उनकी ‘माता’ का था। माँ

के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन और आपसी समझ ने लेखकों को जीवन मार्ग पर आगे बढ़ने में बहुत सहायता प्रदान की। राकेश के करीबी मित्र इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं कि “वह माँ का आशिक था, बीवी का नहीं। वह हर औरत में अपनी माँ का चेहरा देखने का आदि हो चुका था, जो उसे पूरी तरह मिल नहीं पाया।”³ राकेश के उनकी माँ से संबंध एवं उनकी आपसी समझ के संदर्भ में अनिता राकेश का कथन है कि “....अम्मा राकेश जी को हमेशा ‘मदन’ कहकर ही पुकारती थी। अम्मा हमारे घर-परिवार की आत्मा थी। बेटे के प्रति उनके व्यवहार में प्यार और सम्मान एक साथ रहता था। वह उन्हें ‘हैड ऑफ दी फैमिली’ मानकर चलती थी। मैं अगर टेरेस पर राकेश जी के साथ बियर और सिगरेट भी पी रही होती तो अम्मा उस तरफ कभी झाँकती तक नहीं थी। जैसे उन्हें कुछ भी पता न हो। राकेश जी के सामने तो वह स्वयं को अनुपस्थित-सा बना लेती थी। उनके सामने कभी कुछ बोलती ही नहीं थी। उनका और राकेश जी का रिश्ता ‘मेड फॉर ईच अदर’ वाला ही था।”⁴ जितना सम्मान राकेश की माँ उन्हें देती थी उतनी ही श्रद्धा माँ के प्रति राकेश के मन में भी थी। “अम्मा के प्रति उनके मन में अगाध प्रेम था और बेटे के प्रति माँ की ऐसी अखण्डता (अटूट विश्वास) कम से कम मैंने तो अभी तक कहीं देखी-सुनी नहीं।”⁵ अपने जीवन पर माँ के प्रभाव के महत्त्व को रेखांकित करते हुए राकेश के संदर्भ में कमलेश्वर कहते हैं कि “जहाँ तक माँ और बेटे का संबंध मैंने देखा है, हालांकि राकेश की माँ मेरे साथ, मेरी माँ के रूप में रही और एक-दो वर्ष नहीं, करीब आठ वर्ष, तो मैंने पाया कि माँ और बेटे का जो संबंध होता है, वो एक साथ की उम्र का संबंध होता है। माँ और बेटे की दोस्ती से बढ़कर कोई दोस्ती नहीं होती। माँ की उम्र चाहे कितनी भी बड़ी हो। उस रूप में मैंने महसूस किया कि राकेश का अपनी माँ के साथ जो संबंध था, इतना मित्रता से भरा हुआ संबंध था, जिसकी कोई मिसाल मिल सकना इस दुनिया में असंभव लगता है।”⁶ अपने मित्र के रूप में माँ को खोने में दर्द को व्यक्त करते हुए कमलेश्वर कहते हैं कि “माँ मेरी माँ नहीं, मेरी दोस्त थी, और एक ही साल में मेरे सारे दोस्त चले गये। पहले राकेश नहीं रहा, उसके तीन दिन बाद माँ नहीं रहीं और सन् 73 का साल खत्म होते-होते दुष्पन्त नहीं रहा। मेरी तो दुनिया ही वीरान हो गई। यही तीन मेरे निकटतम दोस्त थे....।”⁷ माँ के रहते स्वयं को सर्वाधिक सुरक्षित महसूस करने की भावना दोनों कथाकारों में रहीं है।

एक मित्र के रूप में मोहन राकेश और कमलेश्वर एक-दूसरे से बहुत प्रभावित थे। कमलेश्वर के अनुसार “एक मित्र के रूप में, मैं समझता हूँ राकेश से बेहतर दोस्त मिलना बहुत मुश्किल है।”⁸ राकेश और कमलेश्वर की दोस्ती की शुरूआत सहज रूप से

हुई थी। कमलेश्वर कहते हैं कि “सन् 56 में जालंधर स्टेशन के प्लेटफार्म पर राकेश से मेरी पहली मुलाकात हुई थी। मैं तब कश्मीर जा रहा था। उपेन्द्रनाथ अशक के साथ। अपने पास इतना पैसा कहां का कि कश्मीर जाता। राकेश को पता था कि कमलेश्वर भी अशक के साथ आ रहा था। उसने भी मुझे पत्र लिखा था कि मैं जरूर आऊँ और हम मिलकर कुछ वक्त साथ गुजारेंगे। तो राकेश बड़ी गर्मजोशी से जालंधर पर मिला-और जैसा कि कहावत है-हम दोनों एक-दूसरे को देखते ही ‘दोस्त’ हो गए। यह पहली नजर की दोस्ती थी जो अंत तक निभती चली गई..... राकेश की अंतिम सांस तक।”⁹ राकेश के लेखन के संबंध में कमलेश्वर का कथन है कि “.....राकेश की यह खासियत थी कि वह शुरूआत करने में भी विश्वास रखता था और जो भी शुरू करता था, उसे विलक्षणता से व्याप्त कर लेता था। यह उसकी जिंदगी की हकीकत भी थी।..... राकेश में अपनी रचनाओं के लिए अतिरिक्त मोह नहीं था। उन्हें काटना, छांटना, तराशना, संवारना और संतुष्ट न होने पर छोड़ देना यह प्रक्रिया बराबर चलती रही थी।”¹⁰ राकेश के स्वभाव का एक महत्वपूर्ण पक्ष उनकी हंसी था। कमलेश्वर कहते हैं कि हंसी राकेश के जीवन की सबसे बड़ी पूंजी थी। “हंसी राकेश के जीवन की सबसे बड़ी पूंजी और संपदा थी जब वह हंसता था, तब भी हंसता था और जब वह दुखों के चक्रव्यूह में घिर जाता था, तब भी हंसता था। राकेश की उद्दाम हंसी सिंधु नदी की हरहराहट की तरह निर्मल और प्राकृतिक होती थी। वह मूलतः सिंधी था- मदनमोहन गुगलानी, पर उसने पंजाब की पूरी संस्कृति को आत्मसात् किया था।”¹¹

राकेश और कमलेश्वर की मित्रता के संबंध में अनिता राकेश लिखती है कि “राकेश कमलेश्वर, यह दोनों नाम इस तरीके से आपस में गुंथ चुके थे जैसे दूध में पानी। अब दूध और पानी में विवेक करना निरर्थक।”¹² अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में राकेश नाटकों की ओर झुक गये थे और कमलेश्वर सिनेमा में लेखन की ओर। राकेश यदि जीवित रहते तो नाटकों के क्षेत्र में अधिक उत्कृष्ट काम करते और कमलेश्वर को फिल्मों की दुनिया में भटकने नहीं देते। इस बात को स्वयं कमलेश्वर भी स्वीकार करते हैं “....यदि राकेश जीवित होता तो वह मुझे अपनी रचनात्मक शक्ति को, इस चुनौती के लिए बरबाद करने की इजाजत नहीं देता.... वह कहता- अपनी साहित्य की दुनिया में भूखों मरो, पर लौट चलो, क्योंकि आत्मिक और रचनात्मक संतोष वहीं है....।”¹³ एक सच्चे मित्र के नाते कमलेश्वर राकेश की कोई भी बात टाल नहीं पाते। राकेश की दोस्ती और आत्मीयता की भावना को राजेन्द्र यादव ने भी स्वीकार किया है, जिनसे उनकी लम्बे समय तक अनबन बनी

रही, “इसे स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि राकेश के व्यवहार में एक अजीब ढंग की आत्मीयता और ऊष्मा थी और वह बेहद सहजता से आपको यह विश्वास दिला देता था कि आप ही उसके सबसे घनिष्ठ निर्भरणीय और अन्तरंग दोस्त हैं...।”¹⁴ इस संबंध में जवाहर चौधरी का मत है कि “दोस्ती की परिभाषा उसकी अपनी थी- सौ फीसदी देना और सौ फीसदी लेना। इस मामले में वह कभी कंजूस नहीं रहा, और न ही उसने किसी दोस्त की कंजूसी बर्दाश्त की।”¹⁵ राकेश और कमलेश्वर एक-दूसरे के सच्चे हमदम और दोस्त थे। कमलेश्वर के अनुसार “चूंकि राकेश बनावट में रहने का आदी नहीं था, इसलिए वह अधूरी जिंदगी जीने का कायल भी नहीं है। वह पैसे से, मन से, यार-दोस्तों, साथी-संगियों के साथ पूरी जागरूकता और संचेतना के साथ रहने का तलबगार है। वह आदमी की ममता, अपनत्व और लगाव को रोज-रोज नहीं तौलता, न खुद तुलने के लिए तैयार होता है।”¹⁶ राकेश का जाना कमलेश्वर के जीवन की सबसे बड़ी क्षति थी। कमलेश्वर के अनुसार “कुछ भी बीता नहीं है। लोग कहते हैं कि, वह सैतालीस साल का था। दोस्त की कोई उम्र होती है? दोस्त और माँ- ये हमेशा अपनी उम्र के होते हैं। बाकी सबकी उम्रों में फर्क होता है। और जो अपने वक्त की उम्र हासिल कर ले, वह क्या होता है? उसका क्या नाम होता है? एक नाम मोहन राकेश होता है।”¹⁷

राकेश और कमलेश्वर अपने जीवन साथी से भी प्रभावित रहे। राकेश ने तीन विवाह किये थे। उनकी पहली पत्नी का नाम सुशीला दूसरी का पुष्पा और तीसरी पत्नी का नाम अनीता था। राकेश को ताउम्र एक सच्चे जीवन साथी और घर की तलाश रही। राकेश को घर तोड़ने वाला, नौकरियों और पत्नियां बदलने वाला इंसान कहा जाता था, लेकिन उनकी तीसरी पत्नी अनीता ने उसका यह रिकार्ड खराब कर दिया था “...अनीता ने राकेश की व्यक्तिगत जिंदगी का रिकार्ड खराब कर दिया था.... तभी तो राकेश अपने खास अंदाज और लहजे में कहता था- अब तू मेरा घर छोड़कर जाएगी या नहीं?..... दो साल से ज्यादा मैं किसी औरत के साथ नहीं रहा। पहले मैंने सोचा था कि दो-तीन साल बाद तुम चली जाओगी पर अब छह-सात साल हो रहे हैं और तेरे जाने के कोई आसार ही नजर नहीं आ रहे हैं.... यार तूने मेरा रिकार्ड खराब कर दिया....”¹⁸ राकेश के विरोधाभासी व्यक्तित्व के संबंध में अनीता का कथन है कि “बाहर से राकेश जी जितने सीधे और सरल दिखते थे उतने वास्तव में थे नहीं।”¹⁹ जीवन साथी के संदर्भ में कमलेश्वर की स्थिति राकेश के बिल्कुल विपरीत थी। कमलेश्वर का विवाह 24 जून, 1958 ई. को गायत्री के साथ हुआ और यह विवाह स्थायी रहा। गायत्री बहुत जल्द ही यह समझ गई थी कि

उनका विवाह ‘एक लेखक’ के साथ हुआ है। एक पति-पत्नी के रूप में कमलेश्वर और गायत्री की आपसी समझ इस वक्तव्य से स्पष्ट होती है “.....गायत्री, तुम मेरे साथ रहकर कभी परेशान न होना। हो सकता है कि तुम्हारी बहुत-सी इच्छाएं मैं पूरी न कर पाऊं, मैं इलाहाबाद में दादा जी के साथ रहता हूँ मैं उनकी इच्छा के बगैर या बिना पूछे कुछ भी नहीं करना चाहता हूँ। मैं अपने बड़े भाई और भाभी की बहुत ही इज्जत करता हूँ। उसी तरह तुम्हें भी चलना होगा।”²⁰ गायत्री ने जीवन के हर उतार-चढ़ाव में कमलेश्वर का साथ निभाया। अपने वैवाहिक जीवन की इन्हीं परिस्थितियों ने राकेश और कमलेश्वर के लेखकीय जीवन को प्रभावित किया। राकेश की कहानियों में पति-पत्नी के टूटते-बिखरते रिश्तों, उनके आपसी मतभेदों, अहं भाव एवं एक दूसरे को न समझ पाने की बेचैनी ने मार्मिक अभिव्यक्ति पाई है। उक्त विशेषता कमलेश्वर की कहानियों में भी निहित है, लेकिन महत्वपूर्ण अंतर यह है कि राकेश के यहां पति-पत्नी अपना संबंध विच्छेद करने के लिए स्वतंत्र है, जबकि कमलेश्वर अपने पात्रों को यह स्वतंत्रता प्रदान नहीं करते हैं। वे निभाते या ढोते जाने के पक्ष में हैं।

मोहन राकेश और कमलेश्वर दोनों का मानना है कि लेखकीय जीवन कठिन जीवन है। राकेश-“एक लेखक का जीवन बहुत ही कठिन जीवन है।”²¹ कमलेश्वर-“वस्तुतः रचनाकार पाठकों की अदालत के कठघरे में अनवरत खड़े रहने वाला एक अभिशप्त जीव है।”²² एक लेखक का जीवन तात्कालिक समस्त प्रकार की परिस्थितियों से प्रभावित होता रहता है, इसलिए वह जीना कठिन होता है। लेखक विविध मतों और विचारधाराओं से घिरा हुआ रहता है लेकिन किसी भी प्रकार की क्षति से बचते हुए वह अपने लेखन की दिशा को तय करता है। मोहन राकेश के अनुसार “मेरे विचार में प्रत्येक लेखक की अपनी विचारधारा तथा प्रतिबद्धता होती है, मैं इसमें नहीं जाऊंगा कि मेरे साथियों की इस या उस प्रकार की विचारधारा रही है। मैं इतना कहूंगा कि हम एक प्रकार के संघर्ष में लगे हुए हैं- वह संघर्ष जैसा कि मैंने पहले भी कहा था, एक व्यक्तिगत अनुभव से उत्पन्न होता है अर्थात् एक ऐसा संघर्ष जो इस प्रकार की वास्तविकता से काफी हद तक जुड़ा हुआ है। लेकिन जब लोग प्रगतिवाद या फिर मार्क्सिज्म से प्रभावित विचारधारा पर बात करते हैं तो वह एक प्रकार की नारेबाजी लगती है या फिर लेखक का एक प्रकार की नीति का ओढ़ना या फिर किसी विशेष पार्टी के हुक्म पर चलने के बारे में चर्चा करते हैं। इस प्रकार ‘प्रगतिवादी’ लेखक के नाम पर बहुत कुछ बेकार का लिखा गया है।..... हम उन हठधर्मी प्रगतिवादी विचारधारा को नहीं मानते थे, फिर भी हम बुनियादी तौर से ‘प्रगतिशील’ थे। हम में से, बहुत से,

मेरे समेत, अपने को प्रगतिशील मानते थे, क्योंकि हम मार्क्सवादी विचारधारा के इन दार्शनिक पहलुओं से सहमत थे कि किसी भी तरह दुनिया में उत्पन्न हुए वर्ग-भेद को दूर करके एक ऐसी व्यवस्था स्थापित की जाए जिसमें यह वर्ग-भेद व्यक्तिगत विकास में समस्याएं उत्पन्न न करे और इस वर्ग-भेद का पूर्णतया उन्मूलन किया जा सके। ...हमने सोचा था कि एक लेखक को प्रतिबद्ध तो होना चाहिए, लेकिन किसी विशेष परिभाषित विचारधारा से नहीं।.... हमारी विशेष विचारधारा मार्क्सवादी ही थी। हम उसी से जुड़े रहे, लेकिन हम किसी पार्टी विशेष के प्रति जवाबदेह नहीं थे।²³ राकेश के मत में लेखक किसी विचारधारा विशेष के प्रति प्रतिबद्ध नहीं होता है वह अपने वास्तविक यथार्थ के प्रति प्रतिबद्ध होता है और यही यथार्थ उसकी रचनाओं को प्रासंगिक बनाता है। राकेश अपने लेखन में 'सारत्र' और 'कामू' से सामीप्य स्वीकार करते हैं 'मेरे निकट सारत्र और कामू इसलिए 'जैन्सुइन' है, क्योंकि उन्होंने अपने समय और परिवेश से ग्रहण कर, उसे आत्मसात कर अभिव्यक्त किया है।'²⁴ राकेश भी अपने परिवेश के यथार्थ को अभिव्यक्त करना ही लेखक का प्रमुख कर्म मानते हैं।

कमलेश्वर के अनुसार उनकी साहित्यिक यात्रा तब शुरू हुई जब उनका वंश बदल गया था। "मेरी साहित्यिक यात्रा तब से शुरू होती है जब मेरा परिवार बदला था। मैं क्षत-विक्षत जमींदार घराना छोड़कर प्रेमचंद, राहुल, निराला, यशपाल, अमृतलाल नागर के घराने में आ गया था।"²⁵ कमलेश्वर की लेखन यात्रा का प्रारम्भ इन्हीं परिस्थितियों में हुआ। वे इन्हीं रचनाकारों से प्रभावित रहे। विचारधारा के स्तर पर कमलेश्वर भी प्रगतिवादी हैं। वे स्वयं को मार्क्सवादी कहते हैं, लेकिन बदलते परिवेश के संदर्भ में कहते हैं कि "जिस समाज का हमने निर्माण किया है, वह प्रतिस्पर्धा पर आधारित है। हम निजी और सरकारी क्षेत्रों की दोगली अर्थव्यवस्था में जी रहे हैं। इस अर्थव्यवस्था में अपनी जिंदगी जीने के लिए व्यक्ति को- पूँजीपतियों द्वारा तय शर्तों पर - प्रतिस्पर्धा में शामिल होना पड़ता है। मैं मार्क्सवादी हूँ। मैं किसी का प्रतिद्वन्द्वी होने की अपेक्षा उसका पूरक होना पसंद करूँगा।"²⁶ अपने जीवन के उत्तरार्द्ध समय में कमलेश्वर सत्ता के पक्षधर हो गये थे। इस कारण उन्हें अपने साथियों और पाठकों का विरोध भी झेलना पड़ा था। इस संबंध में कमलेश्वर का तर्क था कि ".....पूँजीवादी संस्थान हो या सरकार, कहीं-न-कहीं हमें उसे स्पर्धा में पड़ना ही पड़ता है, तब उन्हीं के दिये विषमतामूलक जीवन-मूल्यों पर जीने की शर्त सुविधा की नहीं जीवित रहने की शर्त बन जाती है..... क्योंकि औसत सम्मानजनक जिंदगी जी सकने के अवसर कितने हैं? लेखक-पत्रकार का क्षेत्र तो बहुत ही

अवसरविहीन है।"²⁷ कमलेश्वर व्यवस्था को वेश्या का कोठा कहते हैं, जहाँ आना जाना विवशता है। वहाँ आते-जाते तो सभी हैं। लेकिन इस बारे में कोई किसी को बताता नहीं है। इन सभी पक्षों के बावजूद एक लेखक के रूप में कमलेश्वर स्वीकार करते हैं कि "लेखक को अपने सत्य का पक्षधर होना चाहिए..... सत्य के आयाम कई हो सकते हैं, पर उसके नैतिक और मानवीय पक्ष पर नजर तो रखनी ही पड़ती है।"²⁸ राकेश और कमलेश्वर का लेखन प्रगतिवादी चिंतन से प्रभावित अवश्य है लेकिन उनकी रचनाओं में कहीं भी किसी विचारधारा के प्रति मोह नहीं है और न ही उनका लेखन किसी विचारधारा विशेष से प्रभावित है। वे प्रेमचंद-परम्परा के समर्थक हैं तथा साहित्य में भारतीयता के पक्षधर हैं।

राकेश ने कुछ समय तक प्राध्यापक के रूप में भी कार्य किया था। उनके उस रूप का प्रभाव उनके शागिर्द रवीन्द्र कालिया ने वर्णित किया है ".....राकेश उन दिनों परेशान थे। पत्नी से। कॉलेज से। शहर से। अध्यक्ष से। बाद में उनके निकट आने पर मैंने पाया कि वे एक बेचैन रूह के परिदे हैं। हमारी क्लासों बियर शाप में लगने लगी। एक-आध गिलास से शुरू करके कुछ ही दिनों में मैं पूरी की पूरी बोतल पीने लगा। बाद में तो ऐसा भी हुआ कि वे क्लास में मेरी प्रतीक्षा करते रहते और मैं बियर शाप में।"²⁹ एक शिक्षक के रूप में राकेश के रूप को 'आदर्श' नहीं कहा जा सकता। इसका कारण उनके जीवन की अस्थिरता और भटकन थी। कमलेश्वर के अनुसार "राकेश का पूरा व्यक्तित्व जैसा मैंने देखा है, वह एक पूरे दायरे में, खूबसूरत संबंधों की दुनिया के निर्माण के लिए एक भटकन थी। वह भटकता हुआ आदमी था। संबंध चाहे पारिवारिक हो, व्यक्तिगत हो, आर्थिक या सामाजिक वह हमेशा सम्माननीय स्तर के लिए लड़ता रहा....।"³⁰ कमलेश्वर राकेश को एक श्रेष्ठ आधुनिक लेखक मानते हैं। उनके अनुसार राकेश की एक भी रचना पलायनवादी नहीं है। वे घोषणा करते हैं कि "....राकेश एक बहुत बड़ा लेखक था और उसने बहुत बड़ी सच्चाईयां अपने वक्त को दी हैं।"³¹ इसी तरह कमलेश्वर के व्यक्तित्व का विश्लेषण राजेन्द्र यादव ने किया है। यादव के अनुसार कमलेश्वर किसी को भी प्रभावित कर सकता है। वे कहते हैं कि "....दुष्यन्त की इतनी बात सच है- कमलेश्वर अव्वल नम्बर का 'झूठा' है। मुँह से जब वह 'झूठ' बोलता है, तो एक अच्छी कम्पनी होता है और कलम से बोलता है तो सफल कहानीकार।"³² यादव स्वीकार करते हैं कि "....कमलेश्वर अपना सच नहीं बोल सकतामगर अपने युग और अपनी पीढ़ी का सच वह जरूर बोल सकता है, क्योंकि उसके पास जबान है और उसे बात करनी भी आती है.....

है कुछ ऐसी ही बात, जो चुप हूँ,
वरना क्या बात कर नहीं आती।^{11,33}

इन सब परिस्थितियों, प्रभावों और परिवेश के परिणामस्वरूप मोहन राकेश और कमलेश्वर के व्यक्तित्व और कृतित्व का निर्माण हुआ। उनके जीवन की विविध परिस्थितियों ने उन्हें अच्छे-बुरे हर दृष्टिकोण से प्रभावित किया लेकिन किसी भी प्रभाव क्षेत्र में वे पूर्ण रूप कभी नहीं बँधे। उनकी यही विशेषता उन्हें सफल रचनाकार बनाती है।

संदर्भ सूची

1. तनेजा, जयदेव (सं.), मेरे साक्षात्कार—मोहन राकेश, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 9
2. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2007, पृ. 6
3. राकेश, अनीता, सतरें और सतरें, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, 2000, पृ. 10
4. तनेजा, जयदेव (सं.), मेरे साक्षात्कार—मोहन राकेश, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 137
5. उपर्युक्त, पृ. 136
6. कमलेश्वर, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 41
7. उपर्युक्त, पृ. 155
8. उपर्युक्त, पृ. 41
9. कमलेश्वर, जो मैंने जिया, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2014 पृ. 27
10. राकेश, मोहन, मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2010, पृ. 477
11. कमलेश्वर, जो मैंने जिया, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2014 पृ. 135
12. राकेश, अनीता, सतरें और सतरें, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, 2000, पृ. 155
13. कमलेश्वर, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 155
14. यादव, राजेन्द्र, अब वे वहाँ नहीं रहते, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2006. पृ. 15
15. कमलेश्वर (सं.), मोहन राकेश के जाने पर दोस्तों की यादें, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 9
16. कमलेश्वर (सं.), मेरा हमदम—मेरा दोस्त, किताबघर प्रकाशन—नई दिल्ली, 1997, पृ. 17
17. उपर्युक्त, पृ. 22
18. राकेश, अनीता, सतरें और सतरें, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, 2000, पृ. 11
19. उपर्युक्त, पृ. 83
20. रूमी, आयार्च सारथी (सं.), कमलेश्वर—नई कहानी के नायक, मैनपुरी का घर—गायत्री कमलेश्वर, मनु प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 21-22
21. राकेश, मोहन, साहित्य और संस्कृति, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2011, पृ. 143
22. कमलेश्वर (सं.), मेरा हमदम—मेरा दोस्त, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पुस्तक के फ्लैप से
23. राकेश, मोहन, साहित्य और संस्कृति, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2011, पृ. 137-138.
24. उपर्युक्त, पृ. 53
25. कमलेश्वर (सं.), गर्दिश के दिन, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2009, पृ. 136
26. कमलेश्वर, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 135
27. उपर्युक्त, पृ. 33
28. उपर्युक्त, पृ. 31
29. कालिया, रवीन्द्र, गालिब छुटी शराब, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 24
30. कमलेश्वर, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 47
31. उपर्युक्त, पृ. 44
32. कमलेश्वर (सं.), मेरा हमदम—मेरा दोस्त, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 34
33. उपर्युक्त, पृ. 40

सविनय अवज्ञा : हेनरी डेविड थोरो एवं महात्मा गाँधी—एक तुलनात्मक अध्ययन



डॉ. रुचि मिश्रा

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान

श्री रतनलाल कँवर लाल पाटनी गर्ल्स कॉलेज, किशनगढ़ (राजस्थान)

शोध सारांश

हेनरी डेविड थोरो एवं महात्मा गाँधी सविनय अवज्ञा के विचारक हैं। दोनों ने इस अवधारणा को विकसित करने में सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक रूप से योगदान दिया है। थोरो ने इसे अन्तःकरण की आवाज के आधार पर अन्यायपूर्ण सरकार या सभा का प्रतिकार करने के रूप में प्रयुक्त किया था। इस रूप में यह पैसिव रेजीस्टेंस या निष्क्रिय प्रतिरोध के समानार्थक प्रतीत होता है और इसलिए दक्षिण अफ्रीका में अश्वेत लोगों की अधिकारों के रक्षार्थ आंदोलन को अंग्रेजी लोगों को समझाने के लिए पैसिव रेजीस्टेंस शब्द का प्रयोग किया, लेकिन आगे चलकर जब गाँधीजी को लगा कि उनके द्वारा चलाये जा रहे आंदोलन का अर्थ पैसिव रेजीस्टेंस शब्द के भाव से पूर्णरूप से व्यक्त नहीं होता इसलिए उन्होंने इसके लिए एक नया शब्द गढ़ा - सत्याग्रह। 'सत्याग्रह' एक सकारात्मक व्यापक बहुआयामी व बहुदिशायी विश्व की सफलतम प्रासंगिक रचनात्मक पद्धति है। सविनय अवज्ञा इस पद्धति का एक साधन है। सविनय अवज्ञा में अनैतिक कानूनों व अनैतिक सरकार के कानूनों की अवज्ञा या नकारने का भाव निहित है। यह बहुमत से यह अपील करता है कि वह अन्यायपूर्ण सरकार के विरुद्ध अपनी नीतियों में बदलाव करने का दबाव अपनाये और ये दबाव तब ज्यादा बेहतर ढंग से बनता है जब सरकार के किसी कानून की अवज्ञा की जाती है। जैसे थोरो ने कर चुकाने के कानून की अवज्ञा की और गाँधी ने नमक नहीं बनाने के कानून की अवज्ञा की और जनमानस को उद्वेलित किया।

संकेताक्षर : सविनय अवज्ञा, अन्तःकरण, अहिंसा, कानून, न्याय

हेनरी डेविड थोरो के शास्त्रीय निबंध 'रेजीस्टेंस टू सivil गर्वमेंट' में यह प्रस्थापना है कि जो विचार मानव अन्तःकरण के विरुद्ध हो उसका प्रतिरोध किया जाना चाहिए। उसके इसी विचार ने 20वीं सदी के चिन्तकों और सुधारकों को प्रभावित किया। थोरो के विचार गांधी के नैतिक राजनैतिक लेखों से मिलते जुलते हैं क्योंकि दोनों ने ही व्यक्तिगत अन्तःकरण और वैयक्तिकता के विकास के लिए आवश्यक तत्वों पर बल दिया।¹ दोनों लेखक न केवल इसलिए जाने जाते हैं कि उन्होंने व्यक्ति को कर्तव्य और सिद्धान्तमयी जीवन जीने पर बल दिया बल्कि उन्होंने अन्यायपूर्ण सत्ता का प्रतिरोध करने के अधिकार पर भी बल दिया। हालांकि थोरो के इस विचार में हिंसा का अंश निहित है जबकि गांधी ने इस विचार का प्रयोग राजनीतिक सत्ता के प्रति प्रतिरोध और विद्रोह करते हुए व्यक्तिगत स्वःकष्ट सहने और अहिंसक रूप से प्रतिरोध करने पर बल दिया जिसमें हिंसा की अंश मात्र भी सम्भावना नहीं होती है।²

थोरो के निबन्ध व्यापक रूप से व्यक्तिगत अन्तःकरण के विचार के चारों ओर केन्द्रित है। क्योंकि वैयक्तिक अन्तःकरण का विचार थोरो के राजनैतिक चिन्तन का प्रमुख केन्द्रीय विचार है। थोरो प्रायः बहुमत आधारित सरकार के कार्यों के प्रति अविश्वास प्रदर्शित करता है। थोरो इस बात का समर्थन करता है कि बहुसंख्यक ज्यादातर सत्ता को अपने हित में प्रयुक्त करते हैं तथा वे ही ज्यादातर सत्ता तक पहुँच बनाये रखते हैं और वह इसलिए नहीं कि यह उनका अधिकार है। वे शारीरिक रूप से मजबूत होते हैं उन्होंने आगे कहा कि बहुमतीय शासन में सभी वर्गों को न्याय प्राप्त नहीं हो सकता है। तात्त्विक रूप से वे बहुसंख्यक सरकार के कार्यों के प्रति अविश्वास जताते हैं और अन्तःकरणीय सर्वोच्चता में विश्वास की ओर बढ़ते हैं और इसकी ओर उन्होंने सरकार को भी चलने का दबाव बनाने का प्रयास किया। आरम्भिक वर्षों में उन्होंने कहा कि क्या बहुसंख्यक सरकार में बहुसंख्यकों को सही या गलत का निर्णय करने का अधिकार हो या अन्तःकरण को?³ थोरो इस बात

का समर्थन करता है कि बहुसंख्यक सरकार की बजाय व्यक्तिगत अन्तःकरण नैतिक रूप से ज्यादा सर्वोच्च है। इस प्रकार थोरो का सम्पूर्ण राजनैतिक दर्शन इस विचार के चारों ओर संकेन्द्रित है कि अन्तःकरण सबसे ज्यादा विश्वसनीय और उपयोगी है। किसी भी राजनैतिक निर्णय लेने और करवाने के आधार के रूप में।⁴

महात्मा गांधी ने अपने विविध लेखों में थोरो के उक्त विचारों के समान ही विचार व्यक्त किए हैं। थोरो के व्यक्ति के अन्तःकरण का विचार और उसके प्रभाव गांधी के सम्पूर्ण जीवन पर छाए रहे। गांधी भी बहुमत आधारित शासन के प्रति अविश्वास जताते थे। व्यक्तिगत अन्तःकरण पर आधारित नैतिक दृष्टि में विश्वास करते थे। बहुमत के प्रति उनका अविश्वास इस विश्वास से सृजित हुआ कि बहुमत आधारित शासन बिना अन्तःकरण और अल्पसंख्यकों के प्रति सम्मान से विहीन होता है। ये सब करते हुए बहुसंख्यक शासन हिंसा को बढ़ावा देता है और अल्पसंख्यक के किसी भी विचार, मत या भावना का असम्मान करता है।⁵ इस प्रकार बहुसंख्यक शासन के प्रति गांधी की दृष्टि ये थी, कि बहुसंख्यक, अल्पसंख्यकों के प्रति न केवल असद्व्यवहारपूर्ण होते हैं बल्कि वे हिंसा पर टिके रहते हैं और इसी विश्वास का परिणाम है कि गांधीजी ने अहिंसक राज्य के आदर्श पर बल दिया और उन्होंने तात्त्विक रूप से राज्य की बहुमत आधारित धारणा को नकार दिया।

थोरो के समान गांधी का ये भी विश्वास था कि अन्तःकरणीय जीवन तात्त्विक रूप से सिद्धान्तमयी जीवन जीने को बढ़ाएगा। आध्यात्मिक व नैतिक उत्थान की प्रक्रिया के क्रम में उन्होंने व्यक्तिवाद की महत्ता पर बल दिया।

गांधी के लिए व्यक्तिवाद से तात्पर्य है कि राज्य की बजाय अन्तःकरण को उच्च प्राथमिकता देना और समाज के सक्रिय सदस्य के रूप में बने रहना ताकि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक प्रतिबन्धों को जोड़ते हुए, व्यक्ति कानून व्यवस्था के दायरे में रहते हुए समाज के नीतिशास्त्र को प्रभावित करने में सक्षम हो सकेगा। व्यक्तिवाद के प्रति गांधी की दृष्टि कुछ हद तक थोरो से अलग थी। थोरो ने 'वाल्डेन' में तर्क दिया कि यदि एक मनुष्य अपने साथियों के साथ अपने सुर को बनाये नहीं रखता है तो शायद यह इसलिए कि वह भिन्न वादन की आवाज सुनता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि थोरो के व्यक्तिवादी विचार में सम्भाव्य रूप से, पूर्ण रूप से समाज को नकारा गया है वहीं गांधी के चिन्तन में व्यक्ति को समाज से पृथक् नहीं किया गया है बल्कि उसे समाज का एक नैतिक रूप से उत्तरदायी सदस्य बने रहने पर बल दिया गया है।⁶

थोरो ने अपने निबन्ध में यह मत व्यक्त किया है कि सिद्धान्तों के आधार पर की गई कार्यवाहियों में ही नागरिक अवज्ञा के आरम्भिक बीज अंकुरित होते हैं और बाद में उसके तर्क समाज में गहन महत्व को दिखाने के रूप में फैलते हैं। उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया कि विचारधारा तात्त्विक रूप से व्यवहारिक अनुप्रयोग में रूपान्तरित होनी चाहिए। जैसा कि थोरो का आरम्भ में बहुसंख्यक शासन के ऊपर व्यक्तिगत अन्तःकरण की सर्वोच्चता में विश्वास था। उन्होंने आगे चलकर यह कहा कि यदि व्यक्ति के नैतिक अन्तःकरणीय विश्वासों का राज्य के विश्वासों और व्यवहारों के साथ संघर्ष हो तब एक व्यक्ति का यह दायित्व बनता है कि वह समाज के द्वारा जारी अन्यायपूर्ण कृत्यों से अपने आपको अलग कर ले। उन्होंने लिखा है कि व्यक्ति राज्य के द्वारा किए जा रहे सभी अन्यायपूर्ण कृत्यों के उन्मूलन के दायित्व को वहन करने में असक्षम होता है लेकिन व्यक्ति को कम से कम इतना तो करना चाहिए कि वह राज्य के साथ अपना व्यावहारिक अनुसमर्थन वापिस ले ले। उन्होंने आगे लिखा कि व्यक्ति को राज्य के साथ न केवल अपनी निष्ठा से नकारना चाहिए बल्कि व्यक्तिगत और सम्पत्तिगत दोनों ही प्रकार के अनुसमर्थनों से अलग कर लेना चाहिए। थोरो के लिए अन्तःकरणशील व्यक्ति अमानवीय समाज का अनुसमर्थन करने में असक्षम होगा।⁷

राज्य के प्रति निष्ठा के नकारने सम्बन्धी इस मामले में गांधी के विचार थोरो से अलग है। इस दार्शनिक वैश्विक दृष्टि में गांधी का राज्य के प्रति अविश्वास अन्तर्निहित है। उनका मत है कि राज्य व्यक्तियों की अमानवीय संरचना है जो संकेन्द्रित और संगठित रूप में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। व्यक्ति के पास आत्मा होती है जबकि राज्य आत्मविहीन मशीन है इसे कभी भी हिंसा से अलग नहीं किया जा सकता है क्योंकि हिंसा पर ही इसका अस्तित्व आधारित होता है। थोरो के समान गांधी का कहना है कि राज्य जो कि आत्मविहीन मशीन के रूप में विद्यमान है वह नैतिक और उचित संस्था के रूप में अस्तित्व बनाए रखने में असक्षम है।⁸ इस मामले में थोरो के समान गांधी का विश्वास है कि नैतिक रूप से सचेत व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह भ्रष्ट सत्ता का प्रतिरोध करे। एक अच्छा मनुष्य प्रशासन के अशुभ तन्त्र का प्रतिरोध करेगा, अशुभ राज्य के कानूनों की अवज्ञा करेगा क्योंकि यह उसका कर्तव्य है। चिन्तन के इस तन्त्र में थोरो और गांधी दोनों सचेतन व्यक्ति के दायित्व के रूप में प्रतिरोध के रूप पर बल देते हैं।

सामान्य रूप में दोनों लेखक इस बात पर सहमत होंगे कि नैतिक हिंसक तरीका तथा शारीरिक और आध्यात्मिक आत्मसात व्यक्ति अन्यायपूर्ण राज्य से यदि अपने आपको अलग कर लेगा तो यह

सविनय अवज्ञा का आदर्श रूप होगा। थोरो का विश्वास है कि कार्यवाही का यह रूप अन्य लोगों की चेतना को तात्त्विक रूप से प्रभावित करेगा और अन्तिम रूप से उन्हें समाज से अलग होने का मार्ग प्रशस्त करेगा। हालांकि गांधीजी थोरो की इस धारणा के प्रति पूर्णतया आलिंगनबद्ध नहीं थे और उन्होंने ऐसा महसूस किया कि ऐसी कार्यवाहियाँ प्रतिरोध के सीमित रूप में होती हैं।⁹ 1931 में उन्होंने एक लिखित निबन्ध में थोरो पर बहस करते हुए कहा कि थोरो शायद अहिंसा का पूर्णतया पुरोधा नहीं था, सम्भाव्य रूप से भी थोरो कर नहीं चुकाने सम्बन्धी कानूनों तक ही प्रतिरोध को जीवित किए हुए! सविनय अवज्ञा का पद जिस रूप में 1919 में व्यवहार में प्रयुक्त हुआ उस रूप में इसे कानून की किसी भी संविधायी और अनैतिक शाखा के विरुद्ध इसका प्रयोग किया जा सकता है। यह सभ्य रूप में कानून के बाहर अहिंसक तरीके से प्रतिरोध के महत्व को बतलाता है।¹⁰ तात्त्विक रूप से गांधीजी महसूस करते थे कि उन्होंने थोरो के सविनय अवज्ञा के विचार को विस्तृत किया था। उन्होंने यह भी महसूस किया कि व्यक्तिगत अन्तःकरण अन्तिम रूप से जनता के अन्तःकरण को प्रभावित करते हुए राज्य के विरुद्ध हिंसक विद्रोह को बढ़ा सकता था। उन्होंने यह भी महसूस किया कि इस प्रकार की कार्यवाहियाँ विवेक की अपील करती हैं।

गांधी ने महसूस किया कि एक व्यक्ति की तर्कबुद्धि व्यक्ति के अन्तःकरण को कभी-कभी अप्रभावित रखती है क्योंकि विवेक के प्रति की गई अपील इस बात का जवाब नहीं है कि कहाँ दुराग्रह लम्बे काल से बने हुए हैं। इस प्रकार समाज से अलग रखने के थोरो के विचार को गांधी ने हिंसक प्रतिरोध का कारण बने बिना स्वीकार किया।¹¹ गांधी का विश्वास था कि कोई भी प्रतिरोधक स्वःपीड़ा की प्रक्रिया के सहारे अन्यायपूर्ण राज्य में अन्य व्यक्तियों को भी सुधार सकता है। 1932 में उन्होंने लिखा कि स्वःपीड़ा मानव प्राणियों का कानून है। हृदय में अन्तःप्रवेशन स्वःपीड़ा से ही उत्पन्न होता है। यह व्यक्ति की आन्तरिक समझ को विकसित करता है।

गाँधी ने महसूस किया कि स्वःपीड़ा व्यक्ति को अवज्ञा के अहिंसक रूप की ओर ले जाएगी, जो विवेक की बजाय उनकी भावनाओं के द्वारा समाज की मनोवृत्ति या दृष्टिकोण को बदलेगा।¹² इस व्यवस्था में गांधी ने सविनय अवज्ञा के एक ऐसे रूप पर बल दिया जो विशेष संस्थाओं के अनैतिक कानूनों की अवज्ञा नहीं करेगा। उनका विश्वास था कि वह व्यक्ति जो बिना हिंसा के गैर पीड़ा में कार्य करेगा वह सविनय अवज्ञा के आदर्श रूप का व्यवहार में प्रयोग करेगा। प्रतिरोधक की पीड़ा के द्वारा समाज के व्यक्ति

राज्य में कानूनों के अन्याय को महसूस करेंगे और इस प्रकार गैर अराजकीय तरीके से सुधार का कार्य करेंगे।¹³

गांधी और थोरो दर्शन में व्यक्ति के बीच सम्बन्धों तथा व्यक्ति और राज्य के बीच सम्बन्धों की तुलना की जाती है। इस सम्बन्ध में दोनों व्यक्तिगत रूप से मुक्त चिन्तन की वकालत करते हैं और बहुमत आधारित शासकीय राज्य में विश्वास की बजाय व्यक्तिगत अन्तःकरण की महत्ता पर बल देते हैं। दोनों का विश्वास है कि अन्तःकरणशील व्यक्ति केवल राज्य में विकास कर सकते हैं बशर्ते कि राज्य उनके मामले में कम से कम हस्तक्षेप करे। आदर्श राज्य के प्रति गांधी की दृष्टि थी कि आदर्श राज्य वह होगा जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक होगा आदर्श राज्य में राजनीतिक शक्ति नहीं होती है क्योंकि जहाँ राजनैतिक शक्ति होती है, वहाँ आदर्श राज्य नहीं होता है। इस प्रकार उनका विश्वास बहुमत की बजाय सीमित राज्य में ज्यादा था।¹⁴ यहाँ वे थोरो के उस विचार के करीब हैं कि वह सरकार सर्वोत्तम होती है जो सबसे कम शासन करती है। हालांकि दोनों में थोड़ा मतभेद है। जहाँ तक थोरो की बात है वह न केवल व्यक्तिगत अन्तःकरण का समर्थन सत्ता के उच्चतम परीक्षण के रूप में करते हैं बल्कि वह यह भी विश्वास करते थे कि यह व्यक्ति के आचरण में प्रकट होगा जो अन्य लोगों के अन्तःकरण को जगाएगा।

सचेतता का यह रूप राज्य में अराजकता को बढ़ा सकता था और एक अन्यायपूर्ण सत्ता के प्रतिरोध के हिंसक रूप को जन्म दे सकता था। थोरो प्रतिरोध में हिंसा को नकारते नहीं हैं। हालांकि गांधी विश्वास करते थे कि एक व्यक्ति द्वारा अपने अन्तःकरण की आवाज का अनुसरण करना सामाजिक मान्यता पर निर्भर नहीं करता। उन्होंने प्रतिरोध का एक ऐसा रूप ईजाद किया जो हिंसा और अराजकता को बढ़ावा नहीं देगा। जहाँ थोरो ने साधन और साध्य पर विचार विमर्श किया वहीं गांधीजी ने साधन पर सबसे ज्यादा बल दिया। जहाँ थोरो ने सत्ता के विरुद्ध व्यक्ति को विद्रोह करने के अधिकार पर बल दिया वहीं गांधीजी अन्यायपूर्ण सत्ता के सुधार और कानून व्यवस्था के रख रखाव के लिए व्यक्तियों के कर्तव्यों पर बल दिया। इस प्रकार एक राजनैतिक व्यवस्था में गांधी थोरो के विचारों को अहिंसक रूप से प्रयुक्त करने पर बल देते हैं।¹⁵

हेनरी डेविड थोरो न्याय के पुरोधा थे। उन्होंने न्याय को सविनय अवज्ञा के रूप में देखा। थोरो स्वतन्त्रता के लिए लड़ाई से भयभीत नहीं हुए। वे निरन्तर दासों जो कि ज्यादातर अश्वेत लोग थे, के श्वेतों के द्वारा शोषण का प्रतिरोध करने के लिए और उनकी स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर अहिंसक प्रतिरोध करते रहे,¹⁶ और आखिर में वे इसमें सफल भी हुए। उन्हीं के पद चिन्हों पर मार्टिन

लूथर किंग जूनियर भी चले। मार्टिन लूथर किंग के 1965 के भाषण से प्रभावित होकर अमेरिका के पहले अश्वेत राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा ने अमेरिकी समाज में बदलाव की नयी बयार चलाई है।

थोरो व्यक्तियों के अधिकारों के लिए लड़े थे। वे नागरिक अवज्ञा के आधुनिक संकल्पना के जनक हैं, जिसको आगे चलकर सफलतापूर्वक महात्मा गांधी ने प्रयुक्त किया और उसके आगे मार्टिन लूथर किंग ने प्रयुक्त किया। सिविल डिसओबिडियन्स के अन्तिम अनुच्छेद में थोरो ने कहा है कि- कोई भी राज्य मुक्त और प्रबोधन राज्य नहीं बन सकेगा जब तक कि वह इस तथ्य को मान्यता नहीं देता कि व्यक्ति सर्वोच्च और स्वतन्त्र शक्ति के रूप में होते हैं, उन्हीं से सत्ता अपनी शक्ति प्राप्त करती है और उसके अनुसार ही उसके साथ हम व्यवहार करते हैं।¹⁷

थोरो की न्याय की भावना का सर्वोत्तम उदाहरण यह है कि जब उन्होंने मतदान कर के विरुद्ध प्रतिरोध किया था तब सिविल डिसओबिडियन्स में उन्होंने बताया था कि उन्होंने कैसे मतदान कर चुकाने से मना किया क्योंकि वे मैक्सिकन अमेरिकन युद्ध के विरोधी थे। थोरो ने कहा वे वर्तमान मैक्सिकन युद्ध के इस बात के गवाह हैं कि कुछ लोग अपने हितों की आपूर्ति के लिए सरकार को एक साधन के रूप में प्रयुक्त कर रहे हैं और इस कार्य के लिए उन्हें लोगों का कोई अनुसमर्थन नहीं मिलेगा इसी बात पर उन्हें गिरफ्तार किया गया और जेल में डाल दिया गया। हालांकि वे कर वहन क्षमता रखते थे लेकिन उन्होंने महसूस किया कि एक व्यक्ति का इसको समर्थन उनके विश्वास को बढ़ा देगा। रॉल्फ वाल्डो इमर्सन नामक कवि इस दौरान उनसे जेल में मिलने आए और उन्होंने कहा कि थोरो जेल में क्या कर रहे हैं, वे कर क्यों नहीं चुका देते। थोरो ने जवाब दिया कि क्या आप यूद्ध के विरोधी हैं ? इमर्सन ने जवाब दिया कि - हाँ। थोरो ने इमर्सन से पूछा कि आप बाहर क्या कर रहे हो ? थोरो का न्याय का मत अन्याय के बारे में उक्त अभिकथनों में देखा जा सकता है। यदि कोई सरकार आपको दूसरों के अन्याय का माध्यम बनाए तो मैं कहूँगा कि कानून तोड़ दो। आपको मशीन की तरह जीवन नहीं जीना चाहिए किसी भी कीमत पर आपको गलत की निन्दा करने और सही का अनुसरण करने के मार्ग पर चलना चाहिए।¹⁸

थोरो अल्पसंख्यकों के अधिकारों की आवाज और मतों के प्रति ज्यादा लगाव रखते थे। वे अपनी सरकार से प्रश्न करते हैं कि वह क्यों नहीं अपने बुद्धिमान अल्पसंख्यकों के विचारों का अनुगमन करती है। थोरो का विश्वास था कि वाक् अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता

सभी अधिकारों में सबसे महत्वपूर्ण और पवित्र है और इसलिए इसे किसी भी कीमत पर नहीं त्यागना चाहिए। हालांकि गांधीजी अधिकार से पहले कर्तव्य पर ज्यादा बल देते थे क्योंकि गांधीजी का मानना था कि प्रत्येक मनुष्य अपने कर्तव्यों की अनुपालना करता रहेगा तो उससे स्वतः ही अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित हो जाएगी।¹⁹

विरोध के सम्बन्ध में थोरो का 'सविनय अवज्ञा' एवं महात्मा गांधी का ऐतिहासिक 'दाण्डी मार्च' इतिहास की, समय की महत्वपूर्ण देन है। इन दोनों ही महान विद्वानों के विचारों में बहुत सी समानताएँ हैं, बहुत से अन्तर व असमानताएँ हैं। यह एक बहुत महत्वपूर्ण तथ्य है कि गांधी के विचारों पर थोरो का बहुत गहरा प्रभाव था, जिसे हम उनकी ऐतिहासिक 'दाण्डी यात्रा' में अनुभव कर सकते हैं। जब हम इन दोनों के विचारों का, इनके चिन्तन का अध्ययन करते हैं तो बहुत सी जुड़ाव इनके विचारों में देखने को मिलते हैं।

सबसे पहली समानता जो इन दोनों के विचारों में हमको देखने को मिलती है कि दोनों ने ही सविनय अवज्ञा के विचार का प्रयोग विरोध के लिए किया। थोरो पोल टैक्स की बात करता है या वह टैक्स (कर) जो सम्पत्ति की बजाय लोगों पर लगाया जाता है जिसका भुगतान करने के लिए थोरो ने इन्कार किया, जिसके कारण थोरो को गिरफ्तार किया गया और कुछ समय थोरो ने जेल में बिताया। थोरो ने एक लम्बा समय ऐसे अन्याय के सम्बन्ध में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए बिताया जब किसी से किसी का भुगतान लिया जाता है जबकि वह व्यक्ति उसका हिस्सा भी नहीं होता है। दूसरी तरफ गांधीजी ने नमक पर एकाधिकार पर अपने विचार अभिव्यक्त किए। दोनों के ही विचार एवं कार्य गलत और अन्यायपूर्ण कानून के विरुद्ध प्रतिक्रिया है और वह अन्याय जो ऐसे लोगों के द्वारा किया जाता है जिनके पास महत्वपूर्ण शक्तियाँ हैं।

किन्तु इन दोनों के विचारों में एक महत्वपूर्ण अन्तर है, जिस रूप में ये लिखी गयी है। थोरो बहुत व्यक्तिगत बात करता है वह स्वयं के गतिविधि कार्य एवं राय की बात करता है। उस समय की बात जब थोरो ने पोल टैक्स का विरोध किया। विरोध के समय थोरो के साथ जो कुछ घटित हुआ।²⁰ दूसरी तरफ गांधीजी प्रत्यक्षतः पाठकों से उन पद्धतियों की बात करते हैं कि, किस प्रकार से परिवर्तन लाया जाए और किस प्रकार से गलतियों को सुधारा जाए, जो गांधी के समय में हो रही थी। विचारकों की मान्यता है कि दोनों का यह अन्तर गांधी को अधिक प्रभावशाली बनाता है, थोरो की तुलना में, किन्तु जिस प्रकार से वह करते हैं उससे ऐसा नहीं लगता।

जबकि कभी-कभी गांधी के पाठक यह अनुभव करते हैं कि यह उनका ही विकल्प है कि वे उसी तरीके से ही विरोध करें। नमक एकाधिकार का या उसकी राय से सहमत हो जाए।²¹ यद्यपि थोरो के सविनय अवज्ञा में गांधी की ऐतिहासिक 'दाण्डी मार्च' में अन्तर भी है एवम् समानता भी है। यह ऐसे कार्य हैं जो नागरिकों को यह बताते हैं कि किसी भी संगठन के द्वारा यदि कुछ गलत एवम् अन्याय किया जाए तो उसका विरोध किस प्रकार करना चाहिए। दोनों ही विचारक विरोध करने के अपने अपने तरीके बतलाते हैं। दोनों में समानता अनुभव करना बहुत आसान है क्योंकि गांधी गहनतम रूप से थोरो के कार्यों से प्रभावित थे और यह भी एक विचित्र बात है कि सविनय अवज्ञा का प्रयोग गांधी ने अपने कार्यों में किया था। ये दोनों ही कार्य एक लम्बे समय तक सदैव महत्वपूर्ण रहेंगे क्योंकि दोनों में ही विरोध के तरीकों का वर्णन किया गया है। थोरो एवं गांधी के विचारों की समानता का एक अन्य उदाहरण यह भी है कि गांधी की मान्यता थी कि जब सब लोगों का जन्म समान रूप से होता है तो एक सभ्य समाज में दास प्रथा का अस्तित्व क्यों होना चाहिए ? एवम् थोरो भी गांधी के इस विचार से सहमत थे। गांधी का यह भी विचार था कि भारतीय ईश्वर की सन्तान है जैसे सब हैं।

गांधी एक बहुत बहादुर व्यक्ति थे और उनकी मान्यता थी कि आपको सम्मान साहस से मिलेगा। वह जानते थे कि जिन कानूनों का निर्माण अंग्रेजों के द्वारा किया जा रहा है वह पूर्णतः अन्यायपूर्ण है और वह उन्हें बदलना चाहते थे। इसी प्रकार थोरो का भी समान दर्शन था कि अन्यायी कानून का जन्म ही तोड़ने के लिए हुआ है। यद्यपि गांधी ने ब्रिटिश सरकार का विरोध करने के लिए जनता को प्रेरित किया किन्तु गांधी ने इस बात पर भी बल दिया कि विरोध पूर्णतः अहिंसक होना चाहिए। थोरो ने कुछ समय वैकेशन भी लिया, जिसमें कि वह कुछ कामों को ढंग से कर सके। जैसे विश्राम के समय को बढ़ाना, अपने काम के समय की तुलना में। दूसरा जिसकी निश्चित रूप से प्रशंसा की जाती है उस अमानवीय प्रभाव से बचना जो थोरो के समय में समाज पर पड़ रहा था, जो औद्योगिक क्रान्ति थी। उसकी मान्यता थी कि एक व्यक्ति अपना पूर्ण शुद्धिकरण प्रकृति के माध्यम से कर सकता है। इस विषय में गांधी और थोरो के विचार समान थे। गांधी का भी कहना था कि आप अपने जीवन को सरल बनाइये, बिल्कुल उसी प्रकार जैसे थोरो ने कहा था 'सिम्पलिसिटी', 'सिम्पलिसिटी', 'सिम्पलिसिटी'। गांधी अपने वस्त्र स्वयं बुनकर पहनते थे और इस बात में वह गर्व महसूस करते थे कि वह अपने वस्त्र स्वयं बुनकर पहनते हैं इसकी बजाय कि किसी दूसरे राष्ट्र से बनकर आए।²²

थोरो एक व्यक्ति के रूप में बहुत प्रभावशाली विचारक है। प्रकृति के सम्बन्ध में थोरो का दर्शन, लेखन एवं विचार गांधी पर विशेष रूप से गहरा प्रभाव डालते हैं। थोरो के सविनय अवज्ञा के विचार ने महात्मा गांधी को, रूस के उपन्यासकार लियो टालस्टॉय को एवम् अनेकों आधुनिक नेताओं को गहनतम रूप से प्रभावित किया।

महान विचारक मार्टिन लूथर किंग के शब्दों में वास्तविक शान्ति का अर्थ केवल तनाव का या संघर्ष का न होना ही नहीं है इसका सही अर्थ है न्याय का होना।²³ कुछ विद्वानों का कहना है कि गांधी 'सविनय अवज्ञा' के विचार में अपने ही राष्ट्र के विचारकों से प्रभावित थे और अब हम यह जानते हैं कि गांधी ने साउथ अफ्रीका के कानूनों का विरोध किया। जब एक वर्ष पहले उन्होंने हेनरी डेविड थोरो के प्रसिद्ध लेख 'सिविल डिसओबिडियन्स' का अध्ययन किया, किन्तु इस विषय के सम्बन्ध में कोई भी सन्देह नहीं होना चाहिए कि गांधी के अहिंसा के विचार एवम् असहयोग के विचार पर भी थोरो का बहुत अधिक प्रभाव था और थोरो के कार्यों ने ही गांधी के उपर्युक्त विचारों को एक बौद्धिक प्रारूप प्रदान किया। हेनरी डेविड थोरो के समक्ष जब अन्यायी कानून आए तो थोरो का विचार था कि जनता या तो उनका पालन करे या उनका उल्लंघन करे। 1850 के 'फ्यूजिटिव स्लेव लॉ' के सम्बन्ध में थोरो ने उल्लंघन करने का चुनाव किया। जॉन ब्राउन के वाइलेण्ट एक्ट का समर्थन करते हुए, थोरो ने उन कानूनों को अहिंसात्मक प्रतिरोध के साथ तोड़ा जैसा गांधी एवम् मार्टिन लूथर किंग ने किया था। थोरो ने जब पॉल टैक्स देने के लिए इन्कार किया तो इस अपराध के लिए उसे एक रात के लिए जेल में भी जाना पड़ा, किन्तु गांधीजी को कानूनों के उल्लंघन के लिए अनेकों बार बहुत लम्बे समय के लिए भी जेल में रहना पड़ा।

सविनय अवज्ञा के सम्बन्ध में गांधी का कहना था कि मैं अधिक से अधिक पैनल्टी देने को तैयार हूँ जो मुझ पर लगायी जा सकती है यदि मैंने कानून का उल्लंघन किया तो,²⁴ गांधी के तरीके नैतिक एवं राजनैतिक है। कभी-कभी गांधी के न्यायाधीशों ने यह अनुभव किया कि उन्होंने एक अपराध के लिए गांधी पर आरोप लगाया किन्तु थोरो की मान्यता है कि थोरो एक रात के जेल प्रवास को राज्य ने मूर्खता से देखा। गांधी की मान्यता थी कि आप अपने विरोधी का हृदय परिवर्तन करो अपने कार्य के न्यायिक आधार को बतलाते हुए। गांधी कहते हैं, अहिंसा का तात्पर्य अपने विरोधी को हराना या अपमानित करना नहीं होता, अपितु उनसे मित्रता करना एवम् आपसी समझ को बढ़ाना होता है। थोरो ने अपनी पुस्तक 'वाल्डेन' में हिन्दू धर्म ग्रन्थों का हवाला दिया कि गांधी एवम् किंग के राजनैतिक विचारों में बहुत अधिक आध्यात्मिक

शक्ति थी। अहिंसात्मक प्रतिरोध ऐसे शासकों के विरुद्ध जिन्होंने जनता का शोषण किया ऐसे कार्यकाल का 20वीं शताब्दी के अन्त में एक लम्बा लेखा जोखा है। जैसे बॉल्टिक स्टेट्स, यूक्रेयन एवम् फिलिपिन्स का पूर्वार्द्ध। यहाँ हजारों लोगों ने थोरो को उचित बतलाया। ऐसे समय में जब सम्पूर्ण जन समुदाय ने राजशक्ति व स्वामिभक्ति से इन्कार कर दिया एवम् समस्त पदाधिकारियों ने राज्य के पदों से त्याग पत्र दे दिया तब क्रान्ति को पूर्ण रूप प्राप्त हुआ।²⁵

अपने 'सविनय अवज्ञा' के विचार में गांधी अधिक उचित प्रतीत होते हैं। जब गांधी अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे तो वे किसी बहुत छोटे टैक्स का विरोध नहीं कर रहे थे अपितु वे इतिहास बदलना चाहते थे और कुछ ऐसा अच्छा करना चाहते थे जिससे लोगों को और अधिक अच्छे तरीके से ट्रीट किया जाए। न तो थोरो और न ही गांधी कानून से ऊपर थे। एक महत्वपूर्ण अन्तर गांधी और थोरो में जो है, वो यह है कि गांधी ने कभी अपने कार्यों के परिणामों के बारे में शिकायत नहीं की क्योंकि वह जानते थे कि कानूनी आधार पर वह गलत ही कर रहे हैं लेकिन दूसरी तरफ थोरो यह महसूस करते थे कि वे कानून से ऊपर हैं। थोरो अपने आपको शहीद सिद्ध करना चाहते थे जब वह एक रात के लिए जेल गये, जबकि यह उनका स्वयं का अपराध था।

संदर्भ सूची

- थोरो, हेनरी डेविड, लेटर टू आर.डब्ल्यू. इमर्सन, 23 फरवरी, 1848
- एसु, निबन्ध, सिविल डिसओबिडियन्स इन थोरो एण्ड गांधी, पृ. 1
- उपर्युक्त, पृ. 2
- उपर्युक्त, पृ. 3
- अय्यर, ए.जे., मॉरल एण्ड पॉलिटिकल फिलॉसोफी ऑफ महात्मा गांधी, ओ.यू.पी., 1973, पृ. 142
- एसु, निबन्ध, सिविल डिसओबिडियन्स इन थोरो एण्ड गांधी, पृ. 11
- उपर्युक्त, पृ. 12
- अय्यर, ए.जे., मॉरल एण्ड पॉलिटिकल फिलॉसोफी ऑफ महात्मा गांधी, ओ.यू.पी., 1973, पृ. 254
- उपर्युक्त, पृ. 257
- उपर्युक्त, पृ. 268
- उपर्युक्त, पृ. 257
- उपर्युक्त, पृ. 289
- उपर्युक्त, पृ. 287
- उपर्युक्त, पृ. 287
- उपर्युक्त, पृ. 254
- उपर्युक्त, पृ. 268
- एसु, निबन्ध, सिविल डिसओबिडियन्स इन थोरो एण्ड गांधी, पृ. 21
- थोरो, हेनरी डेविड, सिविल डिसओबिडियन्स, हॉवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1849 पृ. 10
- थोरो, हेनरी डेविड, वाल्डेन एण्ड अदर राइटिंग सिविल डिसओबिडियन्स, वेन्टम, न्यूयार्क, 1984, पृ. 104
- थोरो, हेनरी डेविड, सिविल डिसओबिडियन्स अमेरिकन लिटरेचर, कॉम्प, जेफोरी विलहेल्म, कोलम्बस: मैक्ग्राहिल, 2009, पृ. 222-227
- गाँधी, महात्मा, ऑन दा ऐव ऑफ दी हिस्टोरिक दाण्डी मार्च, अमेरिकन लिटरेचर, कॉम्प जेफोरी विलहेल्म, कोलम्बस: मैक्ग्राहिल, 2009, पृ. 229-230
- भावना 16, सुलेखा.कॉम, कमेन्ट्स ऑन थोरो टू गांधी, 2006-09, पृ. 1-4
- गिर, निक, श्री प्रिंसिपल ऑफ सिविल डिसओबिडियन्स थोरो, गांधी और किंग, इडाहो यूनिवर्सिटी, लेवीस्टोन मॉर्निंग ट्रिब्यून, जनवरी 15, 2006
- गिर, निक, दा वरच्यू ऑफ नॉन वायलेन्स: फ्रॉम गौतमा टू गांधी, पुलग्रेव प्रेस, 2000, पृ. 34
- एकरमैन, पीटर एण्ड जेक डूवॉल, ए फार्स मोर पॉवरफूल: ए सेन्चूरी ऑफ नॉन वॉयलेन्ट कॉन्फ्लिक्ट, पुलग्रेव प्रेस, 2000 पृ. 38

कालिदास के नाटकों में वस्त्र-विन्यास

सुमन जांगिड़

प्रवक्ता, टेक्सटाईल डिजाईन विभाग

राजकीय महिला पोलिटेक्निक महाविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

डॉ. अर्चना श्रीवास्तव

विभागाध्यक्ष, नाट्य विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)



शोध सारांश

कालिदास संस्कृत भाषा के सबसे महान कवि और नाट्यकार थे। वे विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में से एक थे। कालिदास अपनी अलंकार युक्त सुंदर, सरल और मधुर भाषा के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। कवि की अप्रतिम प्रतिभा मानव जीवन के सभी व्यापक क्षेत्रों का संस्पृत करती है। कालिदास ने अपने नाटकों में भारत के समस्त मौसमों को और अवसरों को ध्यान में रखकर पुरुष और स्त्रियों के विविध प्रकार के वस्त्रों का वर्णन किया है। किस प्रकार के व्यक्ति को कैसी पोशाक पहनना चाहिए यह निश्चित था अतएवं ज्यों ही कोई पात्र रंगमंच पर आता था प्रेक्षकों को तुरन्त ज्ञात हो जाता था कि वह शोकाकुल, प्रेमकृष्ण या व्रतधारी है। लोग अपने वेष पर विशेष ध्यान देते थे और शुद्ध तथा मनोज्ञ होने के लिए वस्त्रों को धारण करते थे। सफेद, लाल, नीला, केसरिया और काला आदि बहुत प्रकार के रंगों का प्रयोग वस्त्रों में करते थे। रंगों के अलावा गर्मी और सर्दी के मौसम के अनुकूल विविध प्रकार के नमूनों के कपड़े बनाये जाते थे। आज के समय में वेशभूषा की कसौटी उसका चटकीलापन न होकर दर्शक की चर्क्षुन्द्रिय पर पड़ने वाला प्रभाव है। नाटक के वेशभूषा सम्बन्धी अभिलाषित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वेशभूषा का चयन पात्र की व्यक्तिगत रूचि पर न होकर सामूहिकता के परिपेक्ष्य में निर्मित होता है एवं सारे पात्रों की वेशभूषाओं के चयन में विशिष्ट शैली संतुलन और सिद्धांत का परिपालन किया जाता है इस कारण रंगमंच में वस्त्र-विन्यास का ज्ञान अति आवश्यक है। अतः कालिदास के नाटकों में वस्त्र-विन्यास को दर्शना ही इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

संकेताक्षर : वस्त्र, बल्कल, रेशम, ऊन, वेशभूषा

भारत में गर्मी बहुत तेज होती है इस कारण मलमल का पतला कपड़ा सूर्य की धूप में अनुकूल होता था इसकारण ऐसे वस्त्रों का प्रयोग गर्मी में लिया जाता था। शीतकाल में स्वभावतया भारी ऊनी वस्त्र प्रिय था, रेशमी कपड़ा बहुत प्रिय होता था। रात और दिन के भिन्न-भिन्न परिधानों का भी हमें एक आलेश मिलता है उस समय में विलास-प्रिय भारतवासी अपने दिन में पहने जाने वाले वस्त्र को रात्रि में सोते समय प्रयोग नहीं करते थे हमें कालिदास के नाटकों में रेशम (कौशेयक) और ऊन (पत्रोर्ण) दोनों का उल्लेख मिलता है। “हंस के चिन्हों वाले रेशमी वस्त्र बनते और इसका एक प्रकार चीनांशुक चीन से आता था। ऐसे सुक्ष्म बनावट के कपड़ों के नमूने भी थे जो अनायास ही सांस लगने से उड़ने लगते थे। कदाचित प्रसिद्ध भारतीय मलमल का प्रयोग किया जाता था।

कालिदास के नाटकों से हमें वस्त्र निर्माण में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न रेशों बारे में पता चलता है। वस्त्रों के निर्माण में वृक्षों की

छाल से बने (बाल्क) वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था जो कि तीन प्रकार के होते थे बल्कल, क्षी और दुकूल (दुगूल)। फाल (सूती) वस्त्र तीन प्रकार के थे कापसि, बादर और अबर आदि एवं इसके अलावा कोरज या कृमिकोराज (रेशमी) वस्त्रों का प्रयोग भी किया जाता था जो कौशय, अंशुक, पट्ट, नेत्र और चीनांशुक के नाम से जाने जाते थे।

1. बल्कल वस्त्र-बल्कल वस्त्र वृक्ष की छाल से मिलने वाले रेशों से बने होते थे। जिन्हें वर्तमान में लिनन के नाम से जाना जाता है। इनका प्रयोग वनवासी मुनि लोग किया करते थे। आश्रम में स्थित तपस्वी, मुनिकन्याएं इनको जोड़ा के रूप में पहनती थीं और इसे शरीर से लपेटना भी एक कला थी जिसे मुनिकन्याएं ही जानती थीं।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में जब हस्तिनापुर-नरेश दुष्यन्त कण्व मुनि के आश्रम में प्रवेश करते हैं। तब तपस्वियों के बल्कामवस्त्रों के

अग्रभाग से टपकती हुई जल की रेखाओं से चिन्हित मार्ग को देखकर ही दुष्यन्त को आभास होता है कि यह तपोवन की सीमा है। “तोयाधार पथाश्च बल्कल शिखा निष्पन्द रेखाक्लिताः”

नरेश दुष्यन्त ने तन्वी शकुन्तला को बल्कल-वेश में ही देखा था वह राजकुमारियों से भी अधिक सुन्दर लग रही थी।

—इयमधिकमनोज्ञा बल्कोलनापि तन्वी

इसका प्रमाण विक्रमोवर्षीय के एक प्रसंग से भी पता चलता है जब पुरुवंश के राजा का शाप के कारण सुर्वाशी से वियोग होता है तब विदूषक राजा को कहता है कि यह (पुत्रप्राप्ति रूप) सुख भी, कष्ट से अनुगत होकर आया। अब तो मैं सोचता हूँ कि आप भी बल्कल धारण करके तपोवन चले जाइए। ‘साम्प्रतं तर्कयानि तत्रभवता बल्कलं ग्रहीत्वा तपोवनं गन्तव्यसमिति।’

2. कौशेयब—कृमिकोशज रेशमी वस्त्रों को कौशेय वसन कहा जाता था कौशेय शहतूत को खाकर कोश बनाने वाले कीड़ों के रेशम से बने वस्त्र का नाम था कृमियों के कोशों से उत्पन्न होने के कारण ही रेशमी वस्त्रों को कौशेय कहा जाता है महाकवि कालिदास ने कौशेय वस्त्र को उच्च श्रेणी का एवं उच्च सम्भ्यता को दर्शाने वाला बताया है। इसका प्रयोग विवाह-समारोह में किया जाता था।

मालविकाग्निमित्र में देवी मालविका जयसेने को लिए जयसेने को रेशमी जोड़े को लाने के लिए कहती है। कौशेय वस्त्र को बहुमूल्य बताया गया है। तभी मालविकाग्निमित्र में राजा मालविका को दासी रूप में देखकर कहता है कि मानो बहुमूल्य रेशमी वस्त्र स्नानकालिक वस्त्र के कार्य में लाया जाता है।

“स्नानीय वस्त्रक्रियया पत्रोर्ण वोपयुज्यते”

3. क्षौम—क्षौम वस्त्र क्षुमा नामक घास थी आलसी के पौधे के रेशों से बनाया जाता था चीनी भाषा में छु-म शब्द घासतन्तु-निर्मित वस्त्रों का वाचक थी यह घास भारतवर्ष के पूर्वी भागों (असम-बंगाल में होती थी जहाँ इसे कौखुर कहा जाता था)

अभिज्ञान शाकुन्तल में क्षौम वस्त्र को मांगलिक वधू-वेश के लिए वृक्षों द्वारा प्रदत्त उपहार कहा गया है। जो चन्द्रमा के समान शुभ होता है।

4. दुकूल—दुकूल भी पौधों की छाल के रेशों से ही बनता था। ग्रंथ निशीय के अनुसार दुकूल नामक वृक्ष की छाल को लेकर पानी के साथ ओखली में कूटा जाता था। जब उसके रेशे अलग हो जाते तो रेशों को कातकर दुकूल वस्त्र का निर्माण किया जाता था। दुकूल क्षौम वस्त्र की तुलना में अधिक विरल, कोमल और निर्मल-स्वच्छ वस्त्र होता था जिस पर हंस चक्रवाक आदि चित्रित किये जाते थे।

दुकूल वस्त्र का प्रयोग विवाह आदि शुभ मांगलिक कार्यों में किया जाता था। मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय नाटक में बहुत जगह दुकूल शब्द का प्रयोग किया गया है। दुकूल वस्त्र को सिर पर धारण किया जाता था इस कारण इसका विशिष्ट महत्व है।

5. अंशुक—अंशुक रेशमी वस्त्र का नाम है जो दुकूल की तुलना में झीना होता है मुख्यतः यह दो प्रकार का होता है—भारतीय अंशुक और चीन से आयातित चीनांशुक। अंशुक रेशमी वस्त्र है जिसे विविध रंगों में रंगा जाता था विविध रंगों के अंशुक वस्त्रों के उत्तरीयों का प्रचलन अधिक था।

6. पत्रोर्ण—महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र (5/12) में पत्रोर्ण का उल्लेख बहुमूल्य रेशमी वस्त्र के रूप में ही किया है मालविका जैसी राजकुमारी से दासी का काम लेना कवि ने ऐसा ही बताया है जैसे कोई पत्रोर्ण वस्त्र से अंगोछे का कार्य ले—“स्नानीय-वस्त्र क्रियया पत्रोर्ण वो पयुज्यते।”

7. ऊर्णा वस्त्र—वैदिक आर्य भेड़ों की ऊर्णावती कहते थे भेड़ का संस्कृत नाम है अवि। अतः वृहदारण्य कोपनिषद् (2/3/6) में उन को ‘आविक’ कहा गया है। ऊर्णा वस्त्र यानी ऊनी वस्त्रों का प्रयोग सामान्यतः सर्दी के समय किया जाता था मालविकाग्निमित्र में इस वस्त्र का उल्लेख किया गया है—“धारिणी जयसेन ना माध्यमेन ऊणविस्त्राणि आनाच्च मालविकां परिधाययाजचकार, ततोन्तपमपि तर्गन धारयितुं प्रेख्यामास। सतस्मात् पूर्व मालविकया सह दासी जनोचितो व्यवहारो क्रियत् पर सा खलूचकुलीनत्वात् महिषी पदयोग्या आसीत्”

नाटककार ने अपने नाटकों में विधि प्रकार की वेशभूषा का उल्लेख किया है जो विभिन्न वर्गों, स्त्री एवं पुरुष के विविध रूपों को दर्शाते हैं।

1. राजसी वेशभूषा—राजा लोग सिर के ऊपर राजमुकुट धारण करते थे। राजाओं को बैठने के लिए सिंहासन होते थे

“ततः करिष्यानि भवन्तमात्मनः शिखामणिं बाल निवेन्दुमीश्वरः (विक्रमो वशीयम अंक 4/67)

रेशमी धोती सितारे अंके हुए दुपट्टे, हंसदुकुल वे अक्सर पहनते थे। आभूषण एवं धनुष को धारण करते थे। राजा दुकुल और रेशमी वस्त्रों को धारण करते थे वे धोती एवं दुपट्टा पहनते थे।

2. वैवाहिक वेशभूषा—कालिदास ने अपने नाटकों में वैवाहिक-दृश्यों का वर्णन बहुत सुन्दर ढंग से किया है। नाटकों के बहुत से सदस्य शृंगार प्रिय हैं और सजना संखरना एवं सुन्दर वस्त्र पहनना पसंद करते थे। इसकारण इनका वस्त्रों के प्रति आकर्षण स्वाभाविक रूप से नजर आता है। विवाह के समय पर सिर पर

रेशम से बनी पगड़ी को बांधा जाता था। स्त्रियाँ चुस्त रेशमी कपड़े पहनती थीं एवं आभूषणों से युक्त श्रृंगार करती थीं।

इसमें राजा को मालविका विवाह वेश में बहुत सुंदर लगती है और वो विदूषक को कहते हैं कि यह-चुस्त रेशमी कपड़े पहने और गहनों से लदी मालविका मुझे ऐसी मालूमपड़ रही है जैसे पाले के अवसर में उज्ज्वलनक्षत्रों से युक्त उदीयमान ज्योत्सना से अलङ्कृत चैत्र की रात्रि हो। ”

शकुन्तला के प्रस्थान के समय उसकी सखियाँ शकुन्तला का श्रृंगार करती है। और उसे वस्त्र एवं आभूषणों से सजाती हैं इस प्रकार स्पष्ट हैं कि वृक्षों का प्रयोग वस्त्र एवं आभूषणों के लिए किया जाता था और ससुराल प्रस्थान के समय रेशमी जोड़ा पहनाया जाता था। और विवाह के समय पर स्त्री को उसके पीहर वाले वस्त्र एवं आभूषण प्रदान करते हैं।

3. तपस्वियों की वेशभूषा—आश्रमवासी कुमारियाँ मुनियों की तरह ही बल्कल पहनती थी तपस्वियों तथा तपस्विनियों के परिधानों की भिन्नता का हमें कोई संकेत नहीं मिलता है यद्यपि हम उनके वेश पार्थक्य का अनुमान कर सकते हैं।

शकुन्तला बल्कल पहनती है जिसमें उसके कन्धे के पास गाँठ दी गयी है। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त ने स्पष्ट किया है कि तपोवन में तपस्वी बल्कल वस्त्र पहनते हैं। तपोवन के समीप पहुंचने पर वे सूत से कहते हैं कि सरोवरों को जाने वाले मार्ग पर मुनिजनों के बल्कलों के अग्रभाग से टपकने वाले जल की रेखाओं से चिह्नित दिखाई दे रहे हैं।

शकुन्तला अपनी सखी अनुसूया को कहती है कि प्रियंवदा के द्वारा बहुत कसकर बांधे हुए बल्कल को वृक्ष की शाखाओं में फंसा हुआ सा महसूस कर रही हूँ। दुष्यन्त विदूषक को कहते हैं कि कुछ ही पग आगे चलकर वह तन्वी (शकुन्तला) यह कहकर रूक गई कि मेरा पैर कुश के अङ्कुर से बिंध गया है और वृक्षों की शाखाओं में न फंसे हुए भी बल्कल को छुड़ाने के बहाने से मेरी ही ओर मुँह किए रही।

प्रथम अंक में शकुन्तला के द्वारा अनुसूया को कहे गये शब्दों से भी यही प्रतीत होता है कि शकुन्तला ने बल्कल की साड़ी पहनी हुई थी।

“अरी अनुसूया, नई कुशा की नोंक मेरे पैर में पड़ गई और कुरबक की डाल में मेरी साड़ी का पल्ला उलझ गया है। तनिक रूको इतने में से छुड़ा लूं।

4. वियोगिनी की वेशभूषा—प्रतिभाओं से सम्पन्न नाट्यकार ने मिलन के पश्चात स्त्री को अपनी अवस्था का बिल्कुल भी ध्यान

नहीं रहता है और वह मालिन वस्त्रों को ही धारण किये हुए रहती है। अभिज्ञान-शाकुन्तलम में राजा के वियोग में शकुन्तला की दशा का विवरण करते हुए राजा दुष्यन्त कहते हैं कि दो मलिन कपड़े पहने हुए एक व्रत का पालन करने से शुष्क मुख वाली, एक मात्र वेणी धारण किये हुए, पवित्र स्वभाव वाली यह शकुन्तला मुझ निर्दयी पति के लिए बहुत दिनों से विरहव्रत का पालन कर रही है।

5. अभिसारिका वेशभूषा—स्त्रियाँ श्रृंगार प्रिय होती है जिसका मुख्य उद्देश्य पुरुष को आकर्षित करना होता है “किसी संकेत-स्थल पर प्रिय से रमण करने के लिए बन-सँवरकर जाने वाली कायांत नायिका को अभिसारिका कहा जाता है उनका विशिष्ट वेष होता है।” विक्रमोवशीर्य के तृतीय अंक में उर्वशी और चित्रलेखा आकाशमार्ग से अभिसारिकावेश में प्रवेश करती है उर्वशी स्वयं को देखकर अपनी सखी को कहती है कि “सखी चित्रलेखा। मोतियों के आभूषणों से विभूषित: नीले दुपट्टे से युक्त मेरा यह अभिसारिका वेश क्या तुम्हें अच्छा लगता है?

“अपि रोचते तयं अल्पाभरण भूपितो

नीलांशुक परिग्रहोऽभिसारिका वेशः॥”

5. व्रतनियमवता की वेशभूषा—नाटक में स्त्रियों के द्वारा व्रत एवं उपवास को किया जाता है व्रत के समय में स्त्रियों शांत चित्र और पवित्र विचारों का आचरण करती है। वे श्वेत आंचल को धारण करती है। विक्रमोवशीर्य के तृतीय अंक में राजा महारानी के बारे में विदूषक को कहते हैं कि श्वेत आंचल को धारण किये हैं, आभूषण के रूप में मंगलसूत्र तथा कुमकुम अलक्तक आदि ही शोभित हो रहे हैं। पवित्र दूब के प्ररोहों द्वारा इसने जल इत्यादि डालकर अपने केशों का अभिषेक कर लिया है अतः प्रतीत होता है कि व्रत के बहाने से इसने अपनी गर्ववृत्ति अथतिमान का त्याग कर दिया है और परिधान आदि से तो यह मुझ पर प्रसन्न लग रही है।

6. द्वारपाल की वेशभूषा—कालिदास के तीनों नाटकों में द्वारपाल को स्थल दिया गया है। द्वारपाल की वेशभूषा का वर्णन स्पष्ट रूप से नहीं किया गया है सम्भवतया कालिदास ने द्वारपाल की वेशभूषा को सामान्य जन की वेशभूषा की तरह ही माना है जो चार किनारों वाला मध्य-पिंडली तक लम्बा कुरता, वी की शक्ल का गला तथा लम्बी आस्तीनें और चूड़ीदार शैली में पायजामा पहने होता है और उसके हाथ में सुरक्षा हेतु एक बेंत की छड़ी होती है जिसका वर्णन कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम में पंचम अंक में किया है

7. आखेट की वेशभूषा—अभिज्ञान शाकुन्तलम में मृग को दृश्या गया है राजा दुष्यन्त अपने मनोविनोद के लिए शिकार खेलते हैं तब कण्व के आश्रम में पहुंच जाते और आश्रम वासियों को किसी

प्रकार का कोई कष्ट नहीं तो वे तपोवन में आखेट के वस्त्रों और आभूषण को त्याग कर सीधे-सादे वेश में तपोवन में प्रदेश करते हैं। यहां पर दुष्यन्त ने मृगयावेश पहन रखी है यह स्पष्ट नहीं होता है परन्तु द्वितीय अंक में राजा दुष्यन्त परिजनों को देखकर कहते हैं आज सब भी इस मृगया के वेश को उतारदों रैवतक। तुम भी अपने काम पर जाओ। इस प्रकार स्पष्ट है कि मृगया वेश अर्थात् शिकार के समय पहने जाने वाले वस्त्र दूसरे वस्त्रों से भिन्न होते थे।

8. दस्यु वेशभूषा—मालविकाग्निमित्र में दस्यु दृश्य को दिखलाया गया है जब परित्राजिका राजा को मालविका के बारे में बताती है कि ये राजकुमारी थीं और किस प्रकार उन्हें दासी के रूप में खुद को परिवर्तित करना पड़ा। वह बताती है कि भाई के बन्दी हो जाने पर मुझे और मालविका को लेकर आपसे सम्बन्ध की इच्छा से विदिशा आने वाले यात्रि दल के साथ हो लिये उसके बाद तूणीरपट्ट द्वारा दोनों बाहुभव्यों को कसे, पैर तक लटकते हुए मयूरपुच्छों से अलंकृत, धनुर्धर, सामने आने वालों के लिए कालस्वरूप और गरजता हुआ दस्युसैन्य प्रकट हुआ।

निष्कर्ष

आधुनिक युग में भारत में परिधान-पद्धति पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट झलकता है किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि भारत में परम्परागत धोती-कुर्ता और साड़ी-चोली के भव्य और गरिमामय परिधान का स्थान कोई भी नहीं ले सकता है। अब भारत में परम्परागत वेशभूषा

को अपनाने का आकर्षण बनने लगे हैं। भारत में खादी के द्वारा पारम्परिक वस्त्रों के अनेक विधियों से बनाया जाता है और साथ ही इन वस्त्रों को विश्व में बहुत अधिक पसंद भी किया जाता है अतः नाटकों के वस्त्र विन्यास में नई दिशा प्राप्त हुई और कालिदास के नाटकों को अपनी अलग पहचान बनाने में भी सहायता मिली।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शास्त्री, कलानाथ, रूपश्रृंगार, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1994
2. उपाध्याय, भगवतशरण, कालिदास का भारत, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, 1963
3. चन्द्र, मोती, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, भारती भण्डार, प्रयाग, 2007
4. अल्काजी, रोशन, हमीदुल्ला, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
5. मिश्र, रामचन्द्र, मालविकाग्निमित्रम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 2013
6. मालवीय, सुधाकर, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2011
7. मिश्र, नरेश, कालिदासनाटकेषु सामाजिक जीवनम्, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, 1990
8. मिश्र, विन्धेश्वरीप्रसाद, विक्रमोवर्षायम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2013

भारत के उत्तरपूर्वी राज्यों में अलगाववाद : समस्याएं व समाधान



श्रीमति नीतू गुप्ता

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, दौसा (राजस्थान)

शोध सारांश

नव स्वतंत्र देशों में उत्पन्न आंतरिक समस्याओं ने इन देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं को सदैव प्रभावित किया है। भारत की विशालता व बहुलता ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में अलगाववाद, नक्सलवाद, आंतकवाद जैसी भयानक समस्याओं को उत्पन्न किया है। विशेषकर उत्तरपूर्वी राज्यों की सांस्कृतिक विभिन्नता व भौगोलिक विशिष्टता ने इन राज्यों में अलगाववाद के रूप में ऐसी समस्या को उत्पन्न किया है कि ये क्षेत्र वर्तमान समय तक भी भारतीय मुख्यधारा का हिस्सा बनने में उदासीन अनुभव करते हैं। लोकतांत्रिक संस्कृति के अन्तर्गत दृष्टिगत विविधताएं राजनीतिक स्वायत्तता की इच्छाओं को प्रेरित करती हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् उत्तरपूर्वी क्षेत्र को भारतीय संघ में सम्मिलित किये जाने की प्रक्रिया को इसी संदर्भ में समझा जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रधानतः इस तथ्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया जायेगा कि 21 वीं शताब्दी के इस तकनीकी युग में भी भारत के उत्तरपूर्वी क्षेत्र में व्याप्त अलगाववाद के कारण व उनका वर्तमान संदर्भ में सर्वसम्मत समाधान क्या होना चाहिए।

संकेताक्षर : भौगोलिक विशिष्टता, अलगाववाद, राजनीतिक एकीकरण, संघीय व्यवस्था, षष्ठ अनुसूची

भारत एक महाद्वीपीय राजनीतिक व्यवस्था है। यूरोप के तीस से भी अधिक सम्प्रभु राष्ट्र भारत के आकार में समाहित हो सकते हैं। पूर्व सोवियत संघ को छोड़कर कोई भी प्रादेशिक प्रभुसत्ता इतनी व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक, नस्लीय विविधताओं के साथ राजनीतिक एकीकरण में संलीन नहीं हुई है, जितना कि भारत।¹ भारतीय संविधान के निर्माण की प्रक्रिया में स्वतंत्रता उपरांत की अव्यवस्था से उत्पन्न परिस्थितियों को दूर करने के साथ ही इस तथ्य पर भी विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता थी कि विविधताओं से परिपूर्ण इस राष्ट्र में किस प्रकार की संघात्मक व्यवस्था की स्थापना की जाये जिससे सम्पूर्ण भारत में संविधान की क्रियान्विति में विरोध के विषयों का समाधान किया जा सके। संविधान के द्वारा जिस संघात्मक व्यवस्था के निरूपण की कल्पना संविधान निर्माताओं के द्वारा की गई थी, उसके समक्ष वृहद् चुनौती के रूप में यह समस्या थी कि विभिन्न रियासतों को भारतीय संघ में किस प्रकार समाहित किया जाये तथा इन रियासतों के प्रमुखों की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को किस प्रकार पूर्ण किया जाये। इस सन्दर्भ में भारतीय संघ के एकीकरण के प्रयासों में सरदार पटेल के द्वारा किये गये प्रयास सर्वविदित हैं किन्तु इस एकीकरण की

प्रक्रिया में कतिपय क्षेत्रों की स्थानीय आवश्यकता व परिवेश इतने उपेक्षित रहे कि तत्कालीन समय में उत्पन्न असंतोष 70 वर्षों के सांविधानिक विकास व लोकतांत्रिक सरकारों के द्वारा भी पूर्ण नहीं किया जा सका है। स्वतंत्रता के पश्चात् उत्तरपूर्वी क्षेत्र को भारतीय संघ में सम्मिलित किये जाने की प्रक्रिया को इसी संदर्भ में समझा जा सकता है। भौगोलिक, ऐतिहासिक, प्रजातीय और भाषायी आधार पर उत्तरपूर्व के राज्य शेष भारत से जिस स्तर की विविधता रखते हैं, उस विविधता से यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि उन्हें भारत संघ में सम्मिलित होना चाहिये या नहीं।²

पूर्वोत्तर क्षेत्र का ऐतिहासिक परिदृश्य व राज्य निर्माण की प्रक्रिया

भारत का उत्तरपूर्वी क्षेत्र ब्रिटिशकालीन भारत से पूर्व रहस्यमयी और अनजान इतिहास का साक्षी रहा है। संचार साधनों के अभाव, विशालकाय नदियों, घने जंगल, दूर तक फैले हुए पर्वतीय क्षेत्रों के कारण प्राचीन और मध्यकालीन शासकों के प्रभाव क्षेत्र से यह अछूता ही रहा है। भारत के अन्य क्षेत्रों से शासकीय व सामाजिक सम्बन्धों के अभाव के कारण ब्रिटिश सरकार के द्वारा भी इस क्षेत्र पर बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया गया। ऐतिहासिक रूप से असम क्षेत्र को प्रारंभिक पहचान 'अहोम शासकों' के द्वारा

प्रदान की गई। अहोम शासकों के द्वारा तेरहवीं शताब्दी में अपने साम्राज्य की स्थापना असम में की गई।³ संभवतः पर्वतीय क्षेत्रों तक अहोम शासकों की पहुंच के अभाव ने पर्वतीय व मैदानी क्षेत्रों की प्रजातियों के मध्य अविश्वास व संघर्ष को उत्पन्न किया।

ब्रिटिश भारत में असम का इतिहास वर्ष 1838 से प्रारम्भ माना जा सकता है। ब्रिटिश सरकार उत्तरपूर्व में सुरक्षित सीमा क्षेत्र को स्थापित करने के लिए यह आवश्यक मानती थी कि प्रजातीय क्षेत्रों में हस्तक्षेप किया जाये जिससे चीन के अनावश्यक हस्तक्षेप से इस क्षेत्र को बचाया जा सके। चीन प्रारंभ से ही इस क्षेत्र को हथियाना चाहता था।⁴ 1839 से 1873 तक के वर्षों में पूर्वोत्तर भारत बंगाल प्रांत का ही भाग माना जाता था। त्रिपुरा और मणिपुर रियासतें भी असम का ही हिस्सा मानी जाती थीं। 1873 में फोर्ट विलियम के द्वारा इस क्षेत्र में पर्वतीय व मैदानी भागों में विभाजन रेखा स्थापित करने के लिए 'आंतरिक सीमा नियमन कानून' पारित किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य पर्वतीय व मैदानी क्षेत्रों में विभाजन स्थापित करना था।⁵ इस कानून के द्वारा निर्धारित किया गया कि बगैर अनुज्ञा पत्र के सीमा रेखा को लांघना आर्थिक दण्ड की कार्यवाही के लिए उत्तरदायी होगा।⁶

ब्रिटिश सरकार के समक्ष सबसे विकट समस्या यह निर्धारित करना था कि अर्द्ध विकसित जनजातीय क्षेत्रों में प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप कैसा होना चाहिए। प्रशासनिक व्यवस्था के संचालन हेतु भारतीय शासन अधिनियम, 1935 के द्वारा पूर्वोत्तर क्षेत्र को Excluded Area और Partially excluded Area में विभाजित किया गया।⁷ जिसमें excluded Area आदिवासी जनजातीय लोगों को व Partially excluded Area में आदिवासी व गैर आदिवासी दोनों प्रकार की जनसंख्या को सम्मिलित किया गया। इस विभाजन के कारकों में मुख्य तर्क औपनिवेशिक शासकों के द्वारा यह दिया गया कि राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक आधार पर क्षेत्र पर इतना पिछड़ा हुआ है कि विकास का कोई सार्वभौमिक नियम इन क्षेत्रों के लिए लागू नहीं किया जा सकता। राजनीतिक जनजाग्रति की धीमी गति के लिए ब्रिटिश शासकों की तुष्टिकरण की नीति को मुख्य रूप से उत्तरदायी माना जा सकता है।⁸ भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण विभिन्न प्रजातीय समूह प्राचीन काल से आपसी संघर्ष में उलझे रहे। उनके संघर्षरत रहने की स्थिति के कारण कभी भी राजनीतिक व सामाजिक स्थायित्व का प्रयास नहीं किया गया। ब्रिटिश सरकार का व्यवहार पूर्वांचल के आदिवासी बहुल क्षेत्रों के लिए सदैव उपेक्षापूर्ण ही बना रहा। विभिन्न जनजातीय समूहों के आपसी संघर्षों में समस्या के

समाधान करने का कोई प्रयास ब्रिटिश सरकार के द्वारा नहीं किया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि इस क्षेत्र के निवासी देश की मुख्यधारा से सदैव उदासीन ही बने रहे।

स्वतंत्र भारत का प्रारम्भ प्रत्येक भारतवासी के लिए नये अनुभव का साक्षी रहा। विभाजन से उत्पन्न अव्यवस्थाओं के मध्य संविधान निर्माताओं के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती सम्पूर्ण भारत के एकीकरण के रूप में हुई। हिन्दू, मुस्लिम समुदायों ने स्वतंत्रता के अनुभव को अलग स्वरूप में लिया, किन्तु सबसे अधिक असमंजस की स्थिति पूर्वांचल के उन जनजातीय क्षेत्रों के लिये थी जो यह सुनिश्चित करने में पूर्णतया असक्षम व शंकित थे कि भारतीय संघ का भाग बनने में उनकी क्षेत्रीय व सांस्कृतिक पहचान की सुरक्षा संभव हो सकेगी।⁹

ब्रिटिश शासन काल में उत्तरपूर्वी क्षेत्र असम प्रांत से ही जाना जाता था। तत्कालीन समय में असम प्रांत में मैदानी क्षेत्रों, पुराने असम प्रांत के क्षेत्रों, पर्वतीय जिलों, उत्तर पूर्वी सीमान्त क्षेत्र व मणिपुर व त्रिपुरा की रियासतों को, जिनका विलय 1949 में भारतीय संघ में हुआ, को सम्मिलित किया गया। उत्तरपूर्वी क्षेत्र का राजनीतिक इतिहास स्वतंत्रता के पश्चात पूर्णतया संघर्ष, तनाव, अनिर्णय व विवाद के रूप में ही रहा कि भारत सरकार, विभिन्न जनजातियों, मैदानी व पर्वतीय क्षेत्रों के मध्य पारस्परिक संघर्ष की स्थिति बनी रही। भारत की स्वतंत्रता के मध्य की तैयारियों में मिजो व नागा जनजाति भारत संघ में सम्मिलित किये जाने को लेकर शंकित ही बने रहे। ब्रिटिश सरकार के पक्षपातपूर्ण व्यवहार व अपनी राजनीतिक पहचान को जीवित बनाये रखने के लिए इन जनजातीय क्षेत्रों में नयी राजनीतिक विचारधारा का संचार हुआ जिनमें इनका दबाव इस तथ्य पर रहा कि स्थानीय पहचान व सांस्कृतिक परिवेश को संरक्षित रखने का यह आधार हो सकता है कि भारतीय व्यवस्था के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष किया जाये।¹⁰

संघ निर्माण की प्रक्रिया में विभिन्न क्षेत्रों के जनजातीय व प्रजातीय समूहों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने की चुनौती संविधान निर्माताओं के समक्ष भयावह रूप में उपस्थित थी। उत्तरपूर्वी क्षेत्रों में शासन के सुचारू संचालन व संघ की सुदृढ़ता के लिए आवश्यक था कि संविधान में कतिपय विशेष संवैधानिक प्रावधान इस क्षेत्र के लिए किये जाये।¹¹ पर्वतीय, मैदानी, विभिन्न प्रजातियों, जनजातीय क्षेत्रों की मांगों को संतुष्ट करने के लिए संविधान निर्मात्री सभा के द्वारा जी. बारदोलोई समिति के सदस्यों ने उत्तरपूर्व की आंतरिक स्थितियों व आवश्यकताओं को समझने के लिए सम्पूर्ण क्षेत्रों का गहन दौरा किया। इसमें यह निष्कर्ष निकाला गया कि आर्थिक व राजनीतिक रूप में यह क्षेत्र पूर्णतया

अविकसित है व विभिन्न जनजातीय व प्रजातियाँ आधुनिक शासन व राजनीति की कला से पूर्णतया अनभिज्ञ है किन्तु संघ में सम्मिलित होने की प्रक्रिया में पारम्परिक रीति-रिवाजों को बनाये रखने के लिए स्वायत्तता को आवश्यक मानते हैं। मिजो व नागा जनजाति संघ में सम्मिलित होने के लिए सबसे अधिक आशांकित थे किन्तु उन्हें इस तथ्य की पूर्णतया जानकारी थी कि आर्थिक विकास के लिए उनके पास सुदृढ़ संसाधनों का अभाव है।

अंततः राज्य निर्माण की प्रक्रिया में संविधान की षष्ठ अनुसूची में असम राज्य के लिए विशेष प्रावधान किया गया और यह प्रयास किया गया कि पर्वतीय, मैदानी विभिन्न प्रजातीय समूहों और जनजातियों की अपेक्षाओं और स्वायत्तताओं को संविधान के माध्यम से सुनिश्चित किया जाये। अनुसूची षष्ठ को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया जिसमें भाग 'अ' में असम के पर्वतीय जिला खासी, जंतिया, पूर्वी लुहासी, नागा को सम्मिलित किया जबकि भाग 'ब' में बालीबारा, सदिया, तिराप, अबोर व नागा जनजातीय क्षेत्र तुसांग को सम्मिलित किया गया। पर्वतीय जिलों में जिला परिषदों का गठन किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य जनजातीय लोगों को मुख्यधारा से जोड़ना और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं से उनको अवगत कराना था।¹²

बारदोलोई उपसमिति के द्वारा यह भी प्रस्तावित किया गया कि क्षेत्रीय जनता के सामाजिक कानूनों को कतिपय सुधारों के साथ उनकी स्वायत्तता को सुनिश्चित करने के लिए लागू करने का अधिकार होना चाहिये।¹³ संविधान निर्मात्री सभा के द्वारा इस प्रकार के संवैधानिक प्रावधानों का प्रयत्न किया गया जिससे पर्वतीय क्षेत्रों की स्वायत्तता को भी संरक्षित किया जा सके और राष्ट्रीय एकता के लिए भी यह चुनौती सिद्ध न हो। 15 अगस्त, 1947 को सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया में Excluded और Partially Excluded Area का प्रशासनिक उत्तरदायित्व असम राज्य की सरकार को दिया गया जो भारत सरकार के अधीन कार्यरत थी। यद्यपि भारतीय संविधान के माध्यम से यह प्रयास किया गया कि ब्रिटिश सरकार की दोषपूर्ण अलगाववादी व्यवहार से इस क्षेत्र को मुक्त किया जाये।

उत्तरपूर्वी राज्यों में अलगाववाद का परिदृश्य

भारत का उत्तरपूर्वी क्षेत्र आठ राज्यों असम, नागालैण्ड, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, मेघालय, त्रिपुरा और सिक्किम के संयुक्त रूप से जाना जाता है। भारतीय क्षेत्र से इसकी सीमा मात्र 20 कि.मी. लम्बी एक रेखा से मिलती है जिसे 'सिलीगुड़ी कॉरिडोर' के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र की विचित्रता है कि इसकी 99 प्रतिशत सीमा अन्तर्राष्ट्रीय है जिसमें बांग्लादेश,

चीन, भूटान, म्यांमार प्रमुख हैं।¹⁴ भारत के पूर्वोत्तर के राज्यों की स्थितियों में जटिलतायें इस क्षेत्र को उग्रवाद की शरणस्थली बनाने में सहायता कर रही हैं। मैकमोहन रेखा पूर्वोत्तर भारत को तिब्बत से अलग करती है और यह क्षेत्र शेष भारत से उत्तरी बंगाल स्थित जिस सिलीगुड़ी गलियारे से जुड़ा हुआ है उस गलियारे की चौड़ाई पूर्व में 33 कि.मी और पश्चिम में मात्र 21 कि.मी है। ब्रह्मपुत्र नदी और हिमालय के दोनों ओर तराई का क्षेत्र है जहां प्राकृतिक संसाधनों की भरमार है।¹⁵ 2011 के जनसंख्या के आंकड़ों के अनुसार कुल जनसंख्या 45,77,21,188 व क्षेत्रफल 8 प्रतिशत ही इस क्षेत्र में आते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय दबाव व इस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति ने क्षेत्र के निवासियों में इस भावना का प्रसार किया है कि भारत के अन्य क्षेत्रों में लोकतंत्र समृद्धिशाली है जबकि भारतीय सरकारों के द्वारा इस क्षेत्र के निवासियों के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया गया है। 21 वीं शताब्दी के इस तकनीकी युग में भी भारत के ये राज्य आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक रूप से भारतीय व्यवस्था की मुख्यधारा से उदासीन बने हुए हैं।

क्षेत्रीयता, राष्ट्रीयता की भावना की विलोमार्थी है जिसका एकमात्र उद्देश्य होता है संकीर्ण क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति। किसी संघ में राजनीतिक स्वायत्तता की इच्छा को क्षेत्रीय दलों एवं समूहों के गठन द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है जिससे क्षेत्रीय विकास के लिए केन्द्र के साथ सार्थक सौदेबाजी की जा सके। इस प्रकार भारत में क्षेत्रीय समूहों की उत्पत्ति के पीछे भू-राजनीतिक तर्क कार्य करता है। किन्तु भारतीय संदर्भों में क्षेत्रीयता की भावना के चरम स्वरूप ने व्यवस्था को विखण्डन तक पहुँचाने का कार्य किया क्योंकि अतिवादी स्वरूप में क्षेत्रीयता राष्ट्रीयता की भावना की विलोमार्थी है। भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में यह ऐसी धारणा है जो भाषा, धर्म, क्षेत्र जाति आदि पर आधारित है जो राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग को क्षत-विक्षत करते हुए विखण्डन और पृथक्तावादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती है। प्राकृतिक संसाधनों का असमान वितरण, रोजगार के अवसरों का अभाव, सांस्कृतिक पहचान का अभाव, राजनीतिक पहचान का संकट, सामाजिक परिवेश का देश के अन्य भागों से गैर -जुड़ाव कुछ प्रमुख कारण हैं जिन्होंने इस क्षेत्र को भारत से पृथक्ता अनुभव करने में योगदान दिया है।¹⁶ पूर्वोत्तर का अलग-थलग पड़ जाना इस क्षेत्र की सामाजिक संरचना और देश के अन्य भागों की तुलना में क्षेत्र का आर्थिक रूप से पिछड़ा होना जैसे अनेक विषयों ने एक जटिल स्थिति उत्पन्न कर दी है।

उग्रवादी संगठनों की उत्पत्ति के कारण

उग्रवादी या अलगाववादी आंदोलन मुख्यतः किसी प्रतिबद्ध विचारधारा पर आधारित ऐसे संगठनों का संघर्ष है जो किसी धर्म, सम्प्रदाय, जातिगत मुद्दों पर जनता का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करते हैं और अपनी मांगों को पूर्ण करने के लिए सशस्त्र संघर्ष को अपनाते हैं। उत्तरपूर्व के अधिकांश अलगाववादी संगठनों को अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त है जो गुरिल्ला युद्ध में प्रशिक्षित हैं और उनके कार्य करने का तरीका उच्च स्तर के अधिकारी, सेना और आम जनता को अपना निशाना बनाना होता है।¹⁷ उग्रवाद के भौगोलिक कारणों की पड़ताल की जाये तो इनमें जनसंख्या घनत्व के कारण ढाँचागत विकास और शहरीकरण में बाधाएँ, शहरी जनसंख्या बहुत कम होना और किसानों की जनसंख्या की अधिकता के कारण उद्योगों और पूँजी निवेश की समस्या प्रमुख हैं। उग्रवादी समस्या के मूल में इस क्षेत्र की विशेष सामाजिक व राजनीतिक स्थितियों का हाथ है।¹⁸ पूर्वोत्तर के जितने भी उग्रवादी संगठन हैं इसकी स्थापना इस उद्देश्य से की जाती है कि वे स्थानीय जनता का हित करेंगे किन्तु धीरे-धीरे ये समस्या का कारण बन जाते हैं और वर्तमान में स्थिति यह है कि ये जहाँ जहाँ ये संगठन पनपे, वहीं से उतनी सीमा को ये नये राज्य में तब्दील करने की कवायद में असंवैधानिक ताकतों और अराष्ट्रवादी विचारधारा के साथ हाथ मिला रहे हैं।¹⁹

1950 के दशक से प्रारंभ हुआ नागा आंदोलन विश्व के सबसे पुराने भूमिगत आन्दोलनों में से एक है जिसका पूर्ण समाधान अब तक नहीं हुआ है। एशियाई देशों की आम समस्या द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात यही रही है कि अलगाववादी भूमिगत आन्दोलन इन देशों की आंतरिक सुरक्षा व शांति के लिए सबसे बड़ी चुनौती के रूप में विद्यमान रहे हैं। भारत इस प्रकार के आन्दोलनों का सबसे पीड़ित देश रहा है। वर्तमान में उत्तरपूर्व के प्रत्येक राज्य संघर्ष की राजनीति में उलझे हुए है। यद्यपि अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम व सिक्किम को कुछ सीमा तक स्थिर राज्यों के रूप में जाना जा सकता है। पूर्वोत्तर के राज्यों में राजनीति पर तीन मुद्दे हावी हैं - स्वायत्तता की मांग, अलगाववादी आन्दोलन व बाहरी लोगों का विरोध। स्वायत्तता की मांग से निपटना सरल था क्योंकि संविधान में विविधताओं का समाहार संघ में करने के लिए प्रावधान पहले से विद्यमान थे लेकिन जब कुछ समूहों ने पृथक् देश बनाने की मांग की और वह भी किसी क्षणिक आवेश में नहीं अपितु सिद्धांतगत तैयारी के साथ, तो इस मांग से निपटना कठिन हो गया। उत्तरपूर्व में अलगाववादी व स्वायत्तता की मांग के आंदोलनों के लिए कतिपय ऐतिहासिक व समकालीन कारण विद्यमान रहे हैं जिन्होंने

इस क्षेत्र को अशांत बनाये रखने में अपना योगदान दिया है। संघर्ष के कारणों को मुख्यतः निम्न बिन्दुओं में विभजित किया जा सकता है।

- (i) ऐतिहासिक कारण - ब्रिटिश सरकार का प्रशासनिक संचालन में उपेक्षापूर्ण व उदासीन व्यवहार
- (ii) केन्द्र व राज्य सरकारों में अधिकार क्षेत्र को लेकर संघर्ष
- (iii) स्थानीय प्रजातियों, जनजातियों, व अन्य क्षेत्रों के प्रवासी निवासियों के मध्य संघर्ष
- (iv) भौगोलिक कारक जिसमें भारत की मुख्यधारा से क्षेत्र का अल्प जुड़ाव
- (v) आर्थिक रूप से अविकसित क्षेत्र
- (vi) पर्यावरणीय कारक
- (vii) AFSPA की उपस्थिति
- (viii) अन्तर्राष्ट्रीय कारक जिसमें पड़ोसी देश चीन, म्यांमार, भूटान व बांग्लादेश का अनावश्यक हस्तक्षेप

पूर्वोत्तर में अलगाववादी आन्दोलनों का प्रारंभ स्वतंत्रता पूर्व की घटना के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें नागा प्रतिरोध के सबसे पहले संकेत तब मिले थे जब 1918 में 'नगा क्लब' का गठन किया गया था। 1946 में 'नगा नेशनल काउंसिल' का गठन 'अंगामी फिजो' के नेतृत्व में हुआ और 14 अगस्त, 1947 को नागालैण्ड में 'सम्प्रभु नगा राज्य' की स्थापना को लक्ष्य घोषित किया।²¹ 1952 के प्रथम आम चुनावों का इस संगठन के द्वारा बहिष्कार किया गया। पचास के दशक में नागालैण्ड और मणिपुर अलगाववादी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन गये और यह सशस्त्र संघर्ष अस्सी के दशक तक असम, त्रिपुरा, मिजोरम तक भी फैल गया। उत्तरपूर्वी क्षेत्रों के जनजातीय भागों में सरकार का प्रयास इस संदर्भ में व्यापक रहा है कि उसकी स्थानीय मांगों व स्वायत्तता को सुरक्षित बनाये रखा जाये किन्तु इनका असंतोष सशस्त्र संघर्ष के रूप में अपने चरम पर पहुँच चुका है और यही कारण है कि यहाँ पर अनेक उग्रवादी संगठन जिनमें NSCN, PLAR, PLA, UNLF, PREPAK, KCP, ULFA, NLFT, ATTFF सक्रिय हैं जो घातक हथियारों से सुसज्जत हैं और जिनके द्वारा भूमिगत सरकारों का गठन किया गया है। इनके सशस्त्र लड़ाइयों गुरिल्ला युद्ध में प्रशिक्षित हैं जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण प्राप्त है। इनमें से प्रत्येक का यह प्रयास रहा है भारतीय संघ से किस प्रकार स्वायत्त व सम्प्रभु होकर अपनी शक्ति का प्रसार किया जाये। अलगाववादी विचारधारा के प्रसार में राजनीतिक कारणों का विश्लेषण किया जाना आवश्यक है जिसने इस क्षेत्र में उग्रवाद को मजबूत आधार प्रदान किया है।

राज्यों के स्तर पर निर्मित क्षेत्रीय दलों के निर्माण ने राजनीतिक अस्थिरता का ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया कि जनमानस में इस विश्वास को सुदृढ़ता मिली कि भारतीय संघ विघटन के कगार पर है और क्षेत्र का राजनीतिक व सामाजिक विकास भारतीय संघ से स्वतंत्र होने में ही संभव है। स्वतंत्र राज्यों के निर्माण की प्रक्रिया के पश्चात इन राज्यों में यह अपेक्षा की गई थी कि सम्पूर्ण शांति स्थापना के साथ ही आर्थिक व राजनीतिक स्थिरता की स्थापना संभव हो सकेगी। किन्तु राजनीतिक विश्लेषकों की अपेक्षाओं के विपरीत नवीन प्रवृत्ति का संघर्ष इन क्षेत्रों में प्रारम्भ हो गया जिसे टी.के. भट्टाचार्या ने माना कि इनका आन्दोलन कभी सशस्त्र संघर्ष में परिवर्तित हो जाता है और कभी पृथक्करण की मांग पर आकर टिक जाता है और कभी यह संघर्ष संघ से स्वायत्तता पर केन्द्रित हो जाता है।²²

पूर्वोत्तर राज्यों में संघर्ष का स्वरूप

पूर्वोत्तर का प्रत्येक राज्य उग्रवादी और अलगाववादी घटनाओं से प्रभावित है जिसमें असम त्रिपुरा, मणिपुर और नागालैण्ड के संदर्भ में यह माना जा सकता है कि लघु स्तरीय युद्ध की स्थिति इन क्षेत्रों में सदैव बनी रहती है। इन संघर्षों में मृत्यु दर का औसत 100 से 1000 प्रति वर्ष माना जाता है। पूर्वोत्तर राज्यों में विभिन्न पक्षों के मध्य सशस्त्र संघर्ष दिन-प्रतिदिन होने वाली घटनाओं में सम्मिलित किया जा सकता है। अलगाववादी घटनाओं की उत्पत्ति व उनके विस्तार में कार्य करने वाले अनेक कारक हैं किन्तु यह तथ्य पूर्णतया सुनिश्चित है कि जैसे कोई परतंत्र पैदा नहीं होता वैसे ही कोई उग्रवादी या अलगाववादी के रूप में भी पैदा नहीं होता।²³ मुख्यधारा से उपेक्षा व उदासीनता का भाव पूर्वोत्तर के राज्यों में उग्रवादी घटनाओं का मुख्य कारक है जिसकी संवेदनशीलता को इसी तथ्य से आंका जा सकता है कि विभिन्न प्रजातियों, जनजातियों, समूहों, प्रवासी लोगों, सरकार के मध्य आपसी संघर्ष का बहुपक्षीय स्वरूप पूर्वोत्तर में विद्यमान है।

नागालैण्ड—पूर्वोत्तर में संघर्ष का प्रारंभ सर्वप्रथम नागालैण्ड से माना जा सकता है जहां 1946 में अंगामी फिजो के नेतृत्व में नगा नेशनल काउंसिल का गठन हुआ। 14 अगस्त, 1947 को नागालैण्ड में सम्प्रभु राज्य की स्थापना को लक्ष्य घोषित किया। 1952 के प्रथम आम चुनावों के बहिष्कार के पश्चात भारतीय मुख्यधारा से क्षेत्र के विलगाव के संकेत इस संगठन के द्वारा दिये गये। 16वें राज्य के रूप में 1 दिसम्बर, 1963 को गठन के पूर्व नागालैण्ड क्षेत्र की पहाड़ियां राजनीतिक रूप से असम का भाग थीं। नागालैण्ड में 11 जिले हैं जिनमें 16 जनजातियां रहती हैं। एक दूसरे से अलग इन जनजातियों में कई स्वायत्तशासी प्रशासनिक

इकाइयां भी हैं। नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नागालैण्ड इसाक मुइवा (NSCN-IM) नागालैण्ड का प्रमुख अलगाववादी संगठन है जिसकी मांग एक वृहद नंगालिम राज्य बनाने की रही है। इनका संघर्ष इस मांग पर केन्द्रित है कि असम, मणिपुर, अरुणाचल के नगा बहुल जिलों और म्यांमार का कुछ भाग मिलाकर एक वृहद नंगालिम राज्य बने। नागालैण्ड का क्षेत्रफल 165979 किमी और जनसंख्या केवल 25 लाख है। इन क्षेत्रों को मिलाने पर यह क्षेत्रफल 1 लाख 20 हजार वर्ग किमी हो जायेगा। उत्तरपूर्वी क्षेत्रों का भीषण उग्रवादी घटनाओं का प्रारंभ नागालैण्ड से ही माना जाता है जिसमें 1980 के दशक की शुरुआत में दमन और सहस्थापना के मिश्रित प्रयासों से कुछ सीमा तक नियंत्रण भी पा लिया गया। 14 जून 2001 को भारत सरकार और NSCN-IM के बीच एक संघर्ष विराम समझौते पर हस्ताक्षर किये गये जिसे नागालैण्ड में व्यापक स्वीकृति और समर्थन प्राप्त हुआ।

मणिपुर नागालैण्ड के समीप मणिपुर में उग्रवाद के पनपने का सबसे मजबूत कारण उसका म्यांमार की सीमा से सटे होना है। पूर्वोत्तर में सबसे अधिक सक्रिय उग्रवादी गिरोह इसी राज्य में हैं। मणिपुर लगभग 2 हजार वर्षों तक एक स्वाधीन राज्य रहा है। 1947 में अंग्रेजों की वापसी के पश्चात यह स्वतंत्र हो गया और इसके तत्कालीन शासक बोधचन्द ने 1949 में इसका भारत में विलय करवा दिया। मणिपुर के लोगों का यह तर्क रहा है कि उनके राज्य से जबरन विलय के समझौते पर हस्ताक्षर कराये गये थे। भारतीय संघ में विलय की प्रक्रिया से उत्पन्न असंतोष ने विभिन्न उग्रवादी संगठनों की उत्पत्ति में सहयोग दिया और 1960 के दशक में मणिपुर सबसे अशांत क्षेत्र बन गया। 21 जनवरी, 1972 को मणिपुर को स्वतंत्र राज्य का स्तर प्रदान किया गया। किन्तु इस प्रयास ने भी मणिपुर में स्थायी शांति स्थापित नहीं की और 1980 में इसे अशांत क्षेत्र घोषित करके आपसा लागू किया गया।²⁴ 1964 में UNLF के रूप प्रथम उग्रवादी संगठन स्थापित हुआ और इसके पश्चात PLA, Peoples Revolutionary Party of Kangleipak (RREPAK) NSCN-IM.NSCN(k) का निर्माण हुआ। संघर्ष का स्वरूप मणिपुर में इस संदर्भ में बहुपक्षीय है वर्चस्व स्थापित करने के लिए ये उग्रवादी संगठन न केवल भारतीय सेना के साथ युद्ध की स्थिति में उसके हुए अपितु आपसी संघर्ष भी इन संगठनों की कार्यवाही का तरीका है। मणिपुर की जनता के मध्य इस विश्वास को स्थापित करने में सफल रहे हैं कि मणिपुर और भारत दो अलग पक्ष हैं और जनता के हित उसी स्थिति में सुरक्षित रह सकते हैं जबकि सरकार का विरोध किया जाये और इन संगठनों का समर्थन किया जाये। संघर्ष की इस राजनीति का

परिणाम यह रहा है कि 2015 के आंकड़ों के अनुसार 10000 लोगों को जान गंवानी पड़ी है। स्वायत्तता और स्वतंत्रता के लिए किये जाने वाले इस संघर्ष में उग्रवादी संगठन अपना हित साधने में सफल हुए क्योंकि अंततः प्रत्येक सशस्त्र संघर्ष का परिणाम आम जनता को ही भुगतना पड़ता है।

त्रिपुरा—1950 के दशक में प्रारंभ हुए नागालैण्ड के अलगाववादी आंदोलन के प्रभाव ने त्रिपुरा को भी प्रभावित किया तथा उसको बढ़ाने में भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक परिवेश ने अपना योगदान दिया। तत्कालीन राजनीतिक व प्रशासनिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार और ढांचागत सुविधाओं के अभाव ने प्रजातीय लोगों में अलगाव व उदासीनता के भाग को उत्पन्न किया। विभिन्न उग्रवादी संगठनों जिनमें त्रिपुरा उपजाति जुबा समिति (TUJS), त्रिपुरा नेशनल वॉलेंटियर्स(TNV), राष्ट्रीय नेशनल लिबरेशन फ्रंट (NLFT) प्रमुख हैं। इनका संघर्ष इस विरोध पर आधारित था कि त्रिपुरा का भारतीय संघ में विलय नहीं होना चाहिए। सरकार द्वारा युद्ध विराम और शांति वार्ता करने तथा विद्रोहियों का समर्पण के लिए उत्साहित करने के साथ रक्षा बलों की कोशिशों से पिछले कुछ वर्षों से वातावरण बदल रहा है। त्रिपुरा से AFSPA को हटाया जा चुका है।

असम—असम में आतंकवाद की समस्या की शुरुआत असमी लोगों के पहचान के संकट के साथ तब शुरू हुई, जब भारत विभाजन के समय तब के पूर्वी पाकिस्तान से भारी संख्या में शरणार्थियों ने असम की ओर पलायन करना शुरू कर दिया। इस समस्या ने पूरे उत्तरपूर्व के जनसांख्यिकीय आंकड़ों को बदलकर रख दिया। जुलाई 1979 में ऑल असम स्टूडेंट यूनियन (AASU) और ऑल असम गण संग्राम परिषद (AAGSP) के नेतृत्व में आंदोलन की शुरुआत हुई। इन आंदोलनकारियों की मांग थी कि असम में रह रहे सभी बाहरी लोगों को बाहर किया जाये और इन बाहरी लोगों की परिभाषा तय करते हुए 1951 के बाद आये सभी लोगों को इस श्रेणी में सम्मिलित करने की वकालत की। सरकार 1971 के बाद आये लोगों को ही बाहरी मानने पर अपनी सहमति दे रही थी। अपनी मांगों को पूर्ण नहीं होने पर ही इनके द्वारा हिंसात्मक रास्ता अपना लिया गया। इस अशांति के बीच 7 अप्रैल, 1979 को युनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम (ULFA) अस्तित्व में आया। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य असम को बाहरी लोगों से मुक्ति दिलाना और एक स्वतंत्र असम की स्थापना करना था। राज्य पुलिस और सेना सहित अन्य सुरक्षा बलों को, अर्द्ध न्यायिक शक्तियों से लैस करने के बाद दूषित हुए लोकतांत्रिक वातावरण ने आम असमवासियों में पृथक्तावाद तथा असमी

युवाओं में विशेषकर सशस्त्र पृथक्तावाद को बढ़ावा देने में उत्प्रेरक का काम किया। 6 अप्रैल, 1980 को सशस्त्र सेना विशेषाधिकार अधिनियम, 1958 (AFSPA) लागू कर दिया जो आगे चलकर व्यापक विवाद का कारण बना।²⁵

असम की दूसरी प्रमुख समस्या बोडो अलगाववाद था। बोडो जनजाति असम की सबसे पुरानी जनजाति के रूप में जानी जाती है। बोडो असम पर अपना अधिकार मानते हैं और इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए अपने लिए कुछ विशेषाधिकारों की मांग करने लगे जिससे बहुसंख्यक असमिया जनसंख्या के बीच अपनी संस्कृति और जाति पहचान की रक्षा की जा सके। 1989 में बोडो सिक्थोरिटी फोर्स नाम के उग्रवादी संगठन की स्थापना कर डाली जो आगे चलकर नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैण्ड के नाम से जाना जाने लगा। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य एक स्वतंत्र बोडोलैण्ड की स्थापना करना था। कई वर्षों तक आतंकवादी गतिविधियां संचालित करने के बाद आखिर में 20 फरवरी, 1993 में केन्द्र सरकार, असम सरकार और बोडो नेताओं ने असम की सीमाओं के भीतर ही एक स्वायत्तशासी बोडोलैण्ड परिषद की स्थापना समझौते पर हस्ताक्षर किये और 2003 में समझौते के अस्तित्व में आते ही सालों से चल रहा बोडो आंदोलन अपनी परिणति को पहुंच गया।²⁶

पूर्वोत्तर राज्यों की समस्या समाधान हेतु सुझाव

उत्तरपूर्व का सम्पूर्ण राजनीतिक इतिहास पारस्परिक संशय, राजनीतिक अस्थिरता, प्रजातीय विजातीयता और आपसी संघर्ष का रहा है जिसमें जनता के लिए यह निर्धारित करना कष्टप्रद रहा है कि राजनीति का स्वरूप कैसा होना चाहिए क्योंकि जनता द्वारा चुनी हुई सरकारें व उग्रवादी संगठन के द्वारा संचालित गतिविधियों में से कौन सा रास्ता उन्हें अपनाना चाहिए यह उनके लिए दुविधापूर्ण रहा है। युद्धरत उग्रवादी संगठनों के समक्ष विचारधारा का अभाव है कि अंततः उनका उद्देश्य क्या है और उसे कैसे पूर्ण किया जा सकता है स्वायत्तता व स्वतंत्रता कि लिए चलाये जाने वाले विरोध आन्दोलनों में जनसमर्थन व दिशाहीनता के कारण यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में कमी आई है किन्तु इस सुधार के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति को इतना श्रेय नहीं जाता जितना जनशक्ति के व्यवहार में आये हुए परिवर्तन को जाता है। क्योंकि उग्रवादी घटनाओं की सबसे अधिक पीड़ा सामान्यजन को ही भुगतनी पड़ती है।

उत्तर पूर्व के अलगाववादी व हिंसक घटनाओं को जड़ से समाप्त किये जाने के लिए बहुपक्षीय प्रयासों की आवश्यकता है जिसमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी स्तरों पर सुधार और

विकास कार्यक्रम चलाये जाने की आवश्यकता है। चुनावों में जनता की भागीदारी यह अभिव्यक्त करती है कि सरकार के द्वारा किये गये सकारात्मक प्रयासों व आश्वासनों पर जनता को विश्वास है। उत्तरपूर्व राज्यों में जनता ने उदासीनता व अलगाव के भाव को छोड़कर उग्रवादी संगठनों के विरुद्ध विरोध आन्दोलन भी चलाये हैं जिसका परिणाम है कि पिछले कुछ वर्षों से त्रिपुरा, नगालैण्ड, असम में शांति स्थापित हुई है किन्तु यहां पर सरकारों का भी यह प्रयास होना चाहिए कि जनता की आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करके विकास की ओर उनका झुकाव उत्पन्न किया जाये। उत्तरपूर्वी राज्यों में प्राकृतिक संसाधनों की अपार उपलब्धता न केवल स्थानीय रोजगार को बढ़ावा दे सकती है वरन् देश के अन्य भागों की मांगों को भी पूर्ण करने में सक्षम है। अरुणाचल प्रदेश और असम की नदियों पर अगर पनबिजली परियोजनाएं लगाई जायें तो वहां से देश के आधे हिस्से को बिजली की आपूर्ति की जा सकती है।

आर्थिक विकास लोकतांत्रिक व्यवस्था की सुदृढ़ता की प्रथम सीढ़ी है। इस संदर्भ में इस क्षेत्र में आधारभूत ढांचे का विकास किया जाना सरकार की प्राथमिकता होना चाहिए। आर्थिक आधार पर पिछड़ा होने के कारण युवाओं के लिए रोजगार के अवसरों का अभाव है जिससे आजीविका कमाने के लिए नवयुवक उग्रवादी संगठनों की ओर आकर्षित हो जाते हैं। आर्थिक विकास लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सुदृढ़ता की प्रथम सीढ़ी है। इस संदर्भ में इस क्षेत्र में आधारभूत ढांचे का विकास किया जाना सरकार की प्राथमिकता होना चाहिए जिससे आम जनता का विश्वास सरकारों के स्थान पर उग्रवादी संगठनों पर केन्द्रित हो जाता है क्योंकि इनके द्वारा जनता की आर्थिक आवश्यकतायें पूर्ण की जाती हैं। क्षेत्र के विकास हेतु सरकारों के द्वारा विशेष आर्थिक पैकेज की घोषणा की जाती रही है लेकिन प्रशासनिक भ्रष्टाचार व राजनीतिक अस्थिरता ने राहत पैकेज को उन क्षेत्रों तक पहुंचने ही नहीं दिया जहां के लिए ये जारी किये जाते हैं। केन्द्रीय स्तर पर सरकारी व गैर सरकारी नौकरियों में उत्तर पूर्वी क्षेत्र के युवाओं को अवसरों में प्राथमिकता दिये जाने की आवश्यकता है जिससे क्षेत्रीय स्तर से हटकर युवाओं का अखिल भारतीय विचार को विकसित किया जा सके।

राजनीतिक स्तर पर सुधार हेतु सरकारों का प्रयास तभी सार्थक हो सकता है जबकि स्थानीय जनता में सरकार यह विश्वास बनाने में सक्षम हो कि उग्रवादी संगठन ही उनके पिछड़ेपन और हिंसक घटनाओं के लिये पूर्णतया उत्तरदायी हैं। केन्द्रीय मंत्रिमंडल व अन्य राजनीतिक संगठनों में क्षेत्र के प्रतिनिधित्व को प्राथमिकता दिये जाने की आवश्यकता है। सरकारों के द्वारा की जाने वाली

शांति वार्ताओं में जनता को अपनी राय दिये जाने व उसकी आवश्यकताओं को समझने की आवश्यकता है। उत्तरपूर्व की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा का विस्तार बहुत अधिक होने के कारण यह क्षेत्र सामरिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण है अधिकांश उग्रवादी घटनायें सीमापार के प्रशिक्षित लड़ाकों के द्वारा ही की जाती हैं। इस संदर्भ में चीन, भूटान, म्यांमार से शांति समझौते किये जाने की आवश्यकता है क्योंकि जबतक सीमायें सुरक्षित नहीं होगी तब तक क्षेत्र में आंतरिक शांति स्थापित नहीं हो सकती है। सरकारों के द्वारा सेना और उग्रवादी संगठन दोनों के समक्ष इस संदेश को सख्त रूप में पहुंचाये जाने की आवश्यकता है कि आम जनता के विरुद्ध की गई अनावश्यक हिंसा को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं किया जायेगा क्योंकि अंततः लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में जनता के मानवाधिकार सर्वप्रमुख होने चाहिए।

पूर्वोत्तर क्षेत्र की सम्पन्न सांस्कृतिक विरासत का प्रसार भारत के अन्य क्षेत्रों में विभिन्न सांस्कृतिक समारोह आयोजित करके किया जा सकता है जिससे पूर्वोत्तर की जनता को देश की मुख्यधारा से जोड़ा जा सकेगा साथ ही पूर्वोत्तर से उदासीन शेष भारत के लोग वहां की सांस्कृतिक विरासत से भी परिचित होंगे। पूर्वोत्तर क्षेत्र के नवयुवकों में उपेक्षा से भरे अंसतोष को समाप्त करने के लिए आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रयास एक साथ किये जाने चाहिए। उन्हें यह समझाना आवश्यक है कि उग्रवाद किसी समस्या का समाधान नहीं है और जो लोग उन्हें भड़का रहे हैं वे लोग अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए ऐसा कर रहे हैं। युवा वर्ग को जागरूक बनाकर ही इस व्यापक समस्या का निदान किया जा सकता है। सरकार को इसके लिए विकास कार्यों में भी तेजी जानी होगी जिससे बेराजगार युवकों को विद्रोही गुमराह न कर सकें तभी पूर्वोत्तर राज्य वास्तव में भारत के अभिन्न राज्य के रूप में रहकर राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए चुनौती बनी अलगाववादी गतिविधियों को जड़ से उखाड़ कर शान्ति व्यवस्था स्थापित कर सकेगा।

संदर्भ सूची

- 1 राजाराम, कल्पना, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, स्पैक्ट्रम बुक्स प्रा.लि. नई दिल्ली, 2004, पृ. 63
- 2 सिंह, प्रो.भवानी, शेखावत, विभूति सिंह एवं सिंह, अराधना, द पॉलिटिक्स ऑफ ट्राइबल होमलैण्ड इंडिपेन्डेंस एण्ड न्यू टेन्शन्स मिजोरम, गौतम बुक कम्पनी, जयपुर, पृ. 73
- 3 देवी, लक्ष्मी अहोम-ट्राइबल रिलेशन्स, गुवाहाटी, 1975, पृ. 15-16
- 4 सिंह, चन्द्रिका, नॉर्थ ईस्ट इण्डिया पॉलिटिक्स एण्ड इनसरजेन्सी ब्रिटिश ऑक्यूपेशन ऑफ फ्रंटियर ट्राइब्स, मानस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2003, पृ. 103

- 5 हिस्ट्री ऑफ नार्थ ईस्ट इंडिया :- न्यू ट्रेवल्स सर्विस कॉम
- 6 हिस्ट्री ऑफ नार्थ ईस्ट इंडिया :- न्यू ट्रेवल्स सर्विस कॉम
- 7 हजारिका, संजय द नार्थ ईस्टर्न चैलेन्जेस: द हिन्दू 9 जून 2014
- 8 हिस्ट्री ऑफ नार्थ ईस्ट इंडिया :- न्यू ट्रेवल्स सर्विस. कॉम
- 9 मिजोरम दा पॉलिटिक्स ऑफ ट्राइबल होमलैण्ड पेज न. 76
- 10 सिंह, चन्द्रिका, पूर्वोक्त, पृ. 163
- 11 सिंह, चन्द्रिका कॉन्स्टीट्यूशन असेम्बली एण्ड नार्थ ईस्ट इण्डिया पृ. 168
- 12 उपर्युक्त, पृ. 182
- 13 कॉन्स्टीट्यूशन असेम्बली डिबेट वाल्यूम VII NO 1 परिशिष्ट सी रिपोर्ट ऑफ द सब-कमिटी ऑन द नार्थ ईस्टर्न फ्रंटियर असम, ट्राइबल एण्ड एक्सक्लूडेड एरिया, पार्ट III (देहली 1948) पृ. 132-133
- 14 बॉल, हेनरिक-कॉन्फ्लिक्ट्स इन नार्थ ईस्ट इण्डिया, इश्यूज, कॉजेज एण्ड कर्न्सन <https://in.boell.org/28-2-2009>
- 15 नवभारत टाइम्स, 9 अक्टूबर, 2014
- 16 बॉल, हेनरिक कॉन्फ्लिक्ट्स इन नार्थ ईस्ट इण्डिया, इश्यूज, कॉजेज एण्ड कर्न्सन
- 17 कॉजेज ऑफ इंसरजेन्सी एण्ड ईट्स ईम्पैक्ट ऑन द सिक्कूरिटी शोधगंगा पीडीएफ
- 18 नवभारत टाइम्स, 9 अक्टूबर, 2014
- 19 गुप्ता, गुलशन कुमार पूर्वोत्तर की समस्या का उपचार-शिक्षा और रोजगार, नवभारत टाइम्स, 29 अप्रैल, 2014
- 20 नार्थ ईस्ट इण्डिया इंसरजेन्सी एण्ड अदर इश्यूज <https://www.clearias.com>
- 21 उपर्युक्त
- 22 उपर्युक्त
- 23 देका, हरिहर इनसरजेन्सी इन नार्थ ईस्ट इण्डिया-फैक्ट्स बिहाइंड इट:
- 24 सहानी, अजय सर्वे ऑफ कॉन्फ्लिक्ट्स एण्ड रिसोल्यूशनस इन इण्डियास नार्थ ईस्ट-
- 25 <https://www.hindihaat.com>
- 26 उपर्युक्त
- 27 भारत में आतंकवाद का इतिहास पीडीएफ नेट.शोधगंगा. इनफिलबनेट.एसी.इन

भगवद् गीता में मोक्ष की अवधारणा

आशा मीणा

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग

राजकीय कमला मोदी महिला महाविद्यालय, नीमकाथाना, सीकर (राजस्थान)



शोध सारांश

भगवद् गीता एक प्रकार का ईश्वरीय ग्रन्थ है। जिसके अन्तर्गत उपनिषद्ओं का ब्रह्मवाद तथा प्राचीन सांख्य के प्रकृति-पुरुषवाद का समावेश है। विद्वान इससे मानव धर्म का ग्रन्थ कहते हैं। विद्वानों ने इसे प्रस्थान त्रयी कहा है अर्थात् भारतीय दर्शन का प्रारम्भ या शुरूआत, इसके अन्तर्गत उपनिषद् ब्रह्मसूत्र एवं गीता रखे गये हैं। भारतीय दर्शन का आधार अपरोक्षानुभूति के अनुसार चलने वाला तर्क है और उसका लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना है। गीता में कर्मवाद एवं सन्यास तथा भोगवाद एवं वैराग्यवाद के बीच सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। पराभक्ति, पर ज्ञान और निष्काम कर्म वस्तुतः एक हैं क्योंकि तीनों का प्रयोजनार्थ एक ही है अर्थात्-निर्विकल्प अपरोक्ष अनुभूति। गीता कर्म के सन्दर्भ में बिलकुल नये विचार प्रस्तुत करती है अधिकतर भारतीय दार्शनिक तन्त्र कर्म पुद्गलों से छुटकारे को ही मोक्ष की अवस्था के रूप में देखते हैं। गीता का कर्म सम्बन्धी विचार कहता है कि कर्म स्वयं बन्धन का कारण नहीं होता, बंधन मन की आसक्ति के कारण होता है। इस बन्धन से छुटकारे का उपाय कर्म से मुक्ति नहीं है बल्कि उस वासना से मुक्ति होनी चाहिये जिससे हमारे कार्य परिचालित होते हैं। मोक्ष पराशान्ति है, उत्तम सुख है जो ईश्वर के समागम से प्राप्त होता है, मोक्ष ब्रह्मा में डूब जाना, ब्रह्मा हो जाना है। यहाँ कोई कृत्य शेष नहीं रहता।

संकेताक्षर : पुद्गल, निर्विकल्प, अपरोक्षानुभूति, पराशान्ति

भगवद् गीता भगवान कृष्ण द्वारा कुरूक्षेत्र युद्ध में दिया गया उपदेश है। इसके रचयिता व्यास हैं। भगवद् गीता एक प्रकार का ईश्वरीय ग्रन्थ है। जिसके अन्तर्गत उपनिषद्ओं का ब्रह्मवाद तथा प्राचीन सांख्य के प्रकृति-पुरुषवाद का समावेश है। 8 वीं शताब्दी के आस-पास शंकराचार्य ने भगवद्गीता पर भाष्य लिखा था उसके बाद इसको एक प्रमाणिक ग्रन्थ का दर्जा प्राप्त हुआ, तथा इसकी भक्ति का प्रभाव फैलने लगा। गीता का मुख्य विषय नीति है किन्तु अल्पतः दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन भी हुआ है। विद्वान इससे मानव धर्म का ग्रन्थ कहते हैं। विद्वानों ने इसे प्रस्थान त्रयी कहा है अर्थात् भारतीय दर्शन का प्रारम्भ या शुरूआत, इसके अन्तर्गत उपनिषद् ब्रह्मसूत्र एवं गीता रखे गये हैं। इसके सन्दर्भ में कहा गया है कि “यह गोपलनन्दन श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को बछड़ा बनाकर उपनिषद् रूपी गायों से दुहा गया अमृतमय दूध है। जिसे सुधिजन पीते हैं।”¹

गीता के अन्तर्गत हम कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का अद्भुत समन्वय पाते हैं। गीता का दार्शनिक महत्त्व उसके कर्म के चिन्तन में है।

भगवद् गीता के रचना काल के समय अवैदिक दर्शनों में सन्यास की प्रवृत्ति अधिक हो रही थी तथा संसार को छोड़ना सत्य की प्राप्ति के लिये अनिवार्य माना जाता था। वैदिक परम्परा के यज्ञ केन्द्रित कर्मकाण्ड के लिये अरुचि बढ़ रही थी। गीता में खुलकर स्वर्ग देने वाली कर्म केन्द्रित यज्ञों और बलियों की निन्दा की है। गीता कर्म के सन्दर्भ में बिलकुल नये विचार प्रस्तुत करती है जिसके अनुसार संसार से पलायन कर के, कर्म से पलायन करने से क्या मोक्ष प्राप्त होगा ? क्या कर्म मोक्ष में बाधक है ? अधिकतर भारतीय दार्शनिक तन्त्र कर्म पुद्गलो से छुटकारे को ही मोक्ष की अवस्था के रूप में देखते हैं।

गीता का कर्म सम्बन्धी विचार कहता है कि कर्म स्वयं बन्धन का कारण नहीं होता, बंधन मन की आसक्ति के कारण होता है। मन में वासना जन्म लेती है और उस वासना से जब मनुष्य का कर्म परिचालित होता है तब वह काम, क्रोध, दम्भ, लोभ आदि से ग्रस्त होने से बन्धन में बन्ध जाता है। इस बन्धन से छुटकारे का उपाय कर्म से मुक्ति नहीं है बल्कि उस वासना से मुक्ति होनी

चाहिये जिससे हमारे कार्य परिचालित होते हैं। यदि मन इस वासना प्रवृत्ति को छोड़कर कर्म करे तो वह बन्धन का कारण नहीं बनेगा।² इसी को गीता में निष्काम कर्म कहा गया है। श्रीमती एनीबेसेन्ट के अनुसार गीता साधक को सन्यास के उस निम्न स्तर से जहाँ पदार्थों तथा कर्मों का त्याग किया जाता है निष्काम कर्मयोग के उस उच्च स्तर पर ले जाती है जहाँ कामना और आसक्ति का त्याग किया जाता है और जहाँ योगी समाधिस्थ होते हुये भी शरीर और मन से लोककल्याण के लिये कार्य करते हैं। अतः जीव मुक्ति स्वीकारते हैं। मनुष्य क्षण मात्र भी निष्क्रिय नहीं रह सकता। प्रकृति के परिणाम सत्त्व, रज और तम उसको कर्म करने के लिये विवश करते हैं।³ अतः कर्म करने से हम बच नहीं सकते अतः इन्हें न करने का असफल प्रयास करने से अच्छा है इन्हें हम करें। गीता कर्मयोग को कर्म सन्यास से श्रेष्ठ मानती है। मोक्ष का साधन कर्म सन्यास नहीं है, बल्कि लोक-कल्याण के लिये किये जाने वाला निष्काम कर्म है। अनासक्त भाव से कर्म का आचरण करने से व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त करता है। 'कर्म में आसक्त अज्ञानी जिस प्रकार कर्म करता है, वैसे ही अनासक्त हुआ ज्ञानी भी लोक संग्रह को चाहता हुआ कर्म करे। इस प्रकार हम देखते हैं गीता में कर्मवाद एवं सन्यास तथा भोगवाद एवं वैराग्यवाद के बीच सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है।

गीता का उपदेश मनुष्य को अपने अनुसार कर्म करने की प्रेरणा देता है। युद्ध क्षेत्र में कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि उसे अपने 'स्वभाव' और स्वधर्म का पालन करते हुये ही कर्म करना चाहिये क्योंकि यही उसका धर्म है। 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वही करो। यहाँ अर्जुन का उत्तर होता है "आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है, अतः मैं जैसा आपने कहा, वही करूँगा।"

संसार में हर तरह के व्यक्ति पाये जाते हैं। कुछ व्यक्ति स्वभाव से कर्मठ होते हैं, कुछ ज्ञानानुरागी, तो कुछ भक्तिभावी होते हैं। गीता ने इन सबको अपने स्वभाव, वर्ण आश्रम धर्म के अनुसार निष्काम भाव से कर्म कर मुक्त होने का उपदेश दिया है। गीता में तीन प्रकार के मार्ग या योग बताएँ हैं—ज्ञानियों के लिये ज्ञान योग, कर्मठ व्यक्तियों के लिये कर्मयोग तथा भक्तियों के लिये भक्तियोग। गीता में योग शब्द का प्रयोग ईश्वर से युक्त होने के अर्थ में लिया है। यहाँ योग का अर्थ है मिलन अर्थात् परमात्मा से मिलना जबकि पतंजलि ने इसका प्रयोग चित्त वृत्तियों के निरोध के रूप में किया है। इस प्रकार कर्म-मार्ग द्वारा ईश्वर से युक्त होना कर्म योग है, भक्ति मार्ग द्वारा ईश्वर से मिलन भक्ति योग है, और ज्ञान मार्ग से ईश्वर से युक्त होना ज्ञान योग कहलाता है। इस प्रकार स्पष्ट है गीता ईश्वर के प्रत्यय की प्राप्ति को चरम शुभ के रूप में देखती है।

गीता ईश्वर, प्रकृति, पुरुष और ब्रह्म आदी तत्त्वमीमांसीय प्रत्ययों को स्वीकारती है।

गीता के अनुसार सत्त वही है जो त्रिकाल बाधित हो, अर्थात् जो भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में सदा नित्य एवं अपरिवर्तित रहे। यही गीता का प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्त है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।⁴

सत् के लिये प्रयुक्त लक्षण शुद्ध आत्म तत्त्व या ब्रह्म का है और यही सत् है। गीता में आत्म तत्त्व को नित्य, अविनाशी, सर्वगत, अचल, अविकार्य आदि नामों से संज्ञित किया है। आत्मा नश्वर शरीर के साथ नष्ट नहीं होता। व्यक्ति जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को उतारकर नये वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़ कर नये शरीर को धारण करती है।

गीता ब्रह्म के दो रूप सगुण एवं निर्गुण को मानती है व यह भी मानती है कि ये दोनों एक ही अभिन्न तत्त्व की अभिव्यक्ति है। ब्रह्म जगत की उत्पत्ति, लय, निमित्त एवं उपादान कारण है, वह शुद्ध चैतन्य एवं अखण्ड आनन्द है। जिस प्रकार सुत्र में मणि-गण पिरोये रहते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म में समस्त विश्व अनुस्यूत है। यह विश्वात्मा होते हुये भी विश्व में सीमित नहीं है, वह विश्वातीत भी है, यह उसका अनुत्तम प्रभाव है।⁵ गीता की तत्त्व मीमांसा परमेश्वर की दो प्रकृतियों, अपरा और परा का वर्णन करती है। अपरा प्रकृति के अन्तर्गत समस्त जड़ प्रकृति एवं भौतिक पदार्थों का समावेश हो जाता है। इसको क्षेत्र और क्षर पुरुष नाम से सांज्ञित किया गया है।⁶ परा प्रकृति के अन्दर चैतन्य जीवों का समावेश किया है। इन्हें क्षेत्रज्ञ या अक्षर पुरुष कहा गया है। श्री अरविन्द के अनुसार क्षर पुरुष परिवर्तनशील जगत् में व्याप्त विश्वात्मा है और अक्षर पुरुष कूटस्थ और विश्वातीत आत्मा है।⁷ श्री धर के अनुसार क्षर पुरुष जड़-वर्ग है और अक्षर पुरुष चेतन वर्ग (जीवात्माओं) समूह है। रामानुज मानते हैं कि क्षर पुरुष शरीरों और जड़ प्रकृति से बन्धे हुए जीवात्माओं का समूह है तथा अक्षर पुरुष संसार के बन्धन से मुक्त विदेह आत्माओं का समूह है।

शंकराचार्य ने क्षर पुरुष को समग्र परिवर्तनशील जगत माना है और अक्षर पुरुष को ईश्वर की माया शक्ति माना है। उपरोक्त व्याख्याओं से स्पष्ट होता है कि क्षर पुरुष और अक्षर पुरुष क्रमशः उपनिषदों के क्षर ब्रह्म और अक्षर ब्रह्म के समतुल्य हैं। गीता ईश्वर को सर्वोच्च सत्ता मानती है। ईश्वर अनन्त ब्रह्म का आधार है अतः उसका कद ब्रह्म से भी ऊँचा है। वह अनन्त शाश्वत एवं कूटस्थ है। सर्वश, सर्वशक्तिमान पुराण पुरुष है। ईश्वर व्यवहार की दृष्टि से

सत नहीं है और परमार्थ की दृष्टि से असत् नहीं है। ईश्वर जगत में व्याप्त है। किन्तु गीता विश्वेश्वरवाद का उपदेश नहीं देती बल्कि मध्यविश्ववाद की समर्थक है जिसके अनुसार ईश्वर जगत से भिन्न है किन्तु जगत ईश्वराश्रित है। मृत जीवों के अन्दर शाश्वत और अमृत तत्व के रूप में वह रहता है।

योग-ध्यान मार्ग साधना का मार्ग है जो ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों में उपादेय है। गीता में योग शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और योग में ध्यान, ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय है। योग में दुःख से आत्यंतिक वियोग और अखंड आनन्द से आत्यन्तिक संयोग होता है। गीता के अनुसार योग धारणा-ध्यान समाधि है (ध्यान योग), योग स्थित प्रज्ञ की द्वन्द्वतीत ब्राह्मी स्थिति है (ज्ञानयोग), योग निष्काम कर्म है, कर्म कौशल अर्थात् कामना रहित कर्म है (कर्म योग) और योग भक्ति द्वारा भगवत-तत्त्व सम्यक ज्ञान है (भक्ति योग) योगी द्वन्द्वतीत है। वह ठण्ड-गर्म, सुख-दुःख से विचलित नहीं होता है, ज्ञान-विज्ञान तृप्तात्मा है, समदृष्टि और समबुद्धि है जैसे वायु रहित वातावरण में दीपक की लो स्थिर रहती है उसी प्रकार योगी का चित स्थिर रहता है। गीता कहती है जो दुःख के संयोग से सर्वथा रहित है, वही योग है। गीता ने ईश्वर से संयुक्त होने के लिये चार मार्ग प्रस्तुत किये हैं-ज्ञान योग, कर्म योग तथा भक्ति योग।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सु.तदु.ते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥⁸

(1) **ज्ञान योग**—भारतीय दर्शन का व्यावर्तक लक्षण है कि वह सत्य के साक्षात्कार की बात करता है, और योग साधनाओं द्वारा मोक्ष प्राप्ति की। अब क्योंकि भारतीय दर्शन की मान्यता है कि सत् विचार का विषय ना होकर साक्षात्कार का विषय है। परम सत् को भी अनुभव के द्वारा जाना जाता है बुद्धि के द्वारा नहीं।⁹ अतः गीता उपदेश देती है कि योगी का लक्ष्य अपरोक्षानुभूति द्वारा आत्म साक्षात्कार है, जो ज्ञान बिना सम्भव नहीं। भगवान अपने भक्तों पर कृपा करके ज्ञान योग प्रदान करते हैं, जिससे वे उन्हें पा सके। गीता के अनुसार श्रद्धा के बाद ज्ञान उदय होता है और श्रद्धा का अर्थ है जो सब में ईश्वर को और ईश्वर में सबको देखता है। यह अनेक में एक का दार्शनिक ज्ञान है। वह शत्रु और मित्र को, पापी और पुण्यात्मा को समान देखता है, क्योंकि ईश्वर इन सबके अन्दर है। इस तरह की दृष्टि प्राप्त होने के बाद ही ज्ञान उदय होता है।

बिना ज्ञान के योग शारीरिक और मानसिक व्यायाम के अतिरिक्त कुछ नहीं। ज्ञान अज्ञान और संशय को हटा देता है। इन्द्रियों को उनके 'आहार' से अर्थात् विषयोपभोग से बलात् कुछ देर के लिये

रोकने से विषय कुछ समय के लिये निवृत्त हो जाते हैं, किन्तु फिर भी विषयोपभोग की लालसा मन में बनी रहती है, यह भोगेच्छा आत्म ज्ञान से ही निवृत्त हो सकती है। आत्म संयम, इन्द्रिय निग्रह, मनोनिग्रह और बुद्धि निग्रह से समस्त इच्छाएँ समाप्त होती हैं। भोग की समस्त इच्छा के शांत होने पर, विषय विरक्त इन्द्रियाँ जब आत्मा के वशीभूत हो, राग द्वेष से शून्य होकर उचित विषयों के भोग में लग जाती हैं तब मन विपत्ति और सम्पत्ति तथा सुख-दुःख में पूर्णतया सम रहकर जीवन के सर्वोच्च साध्य ईश्वर में रम जाता है, तब मुमुक्षु की प्रज्ञा स्थिर हो जाती है।¹⁰ ईश्वरीय ज्ञान से पवित्र कोई चीज नहीं है इसके होने के पश्चात् ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म हो जाता है। गीता में कहा है—**यो माँ पश्यति सर्वत्र सर्वच माही पश्यति।**

(2) **कर्म योग**—गीता में कर्म और ज्ञान के मध्य कोई विरोध नहीं है क्योंकि निष्काम कर्म करना किसी ज्ञानी के ही बस में होता है। किसी देहधारी जीव के लिये यह असंभव है कि वह काम नहीं करे, क्योंकि प्रकृति के तीन विकार सत्व, रज, तम ये तीनों की वजह से प्रत्येक प्राणी कर्म करने को विवश होता है। संसार कर्म से बधा है। नैष्कर्म्य का प्रत्यय सन्यास का प्रत्यय नहीं है।

संसार का त्याग कर्म का त्याग नहीं है क्यों कि कर्मों से नहीं बचा जा सकता है। इसलिये सवाल कर्म को छोड़ने का नहीं है पर यह है कि कर्म कैसे किया जाये। इस समस्या के निवारण हेतु गीता ने कर्म के सम्बन्ध में नये विचार प्रस्तुत किये।¹¹

इसके अनुसार सन्यास का अर्थ है कामना का त्याग क्योंकि हमारे सारे कर्म हम वासनाओं के वशीभूत होकर करते हैं और धीरे-धीरे कर्म से रचे हुये जगत में ऐसे बन्ध जाते हैं जैसे भोजन के लालच में मछली जाल में फँसती है। अतः कर्म के बन्धन से छुटने का उपाय कर्म को छोड़ना नहीं है बल्कि उस वासना को छोड़ना है जिससे कर्म परिचालित होते हैं।

निष्काम शब्द के अर्थ से भी स्पष्ट है कि बिना कामना, बिना फल की इच्छा के किया गया कर्म। गीता में लिखा है कि 'सन्यास' का अर्थ कर्म का त्याग नहीं है, किन्तु कामना का त्याग है। त्याग का अर्थ कर्म त्याग नहीं, अपितु कर्म फल का त्याग है।

तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, कर्म-फल में तुम्हारा कोई अधिकार नहीं, अतः तुम कर्म-फल की कामना या फलासक्ति मत कर और नहीं तुम्हारी प्रवृत्ति कर्म न करने में हो। गीता के निष्काम कर्म के खिलाफ कुछ मनोवैज्ञानिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। वह यह है कि इच्छा होने पर ही मनुष्य किसी कर्म में प्रवृत्त होता है और कर्म प्रवृत्ति के पश्चात् ज्ञान का उदय होता है। अतः बिना

इच्छा या प्रयोजन के तो मनुष्य को कर्म की प्रेरणा ही प्राप्त नहीं होगी क्योंकि इच्छा ही कर्म की पूर्व अपेक्षा है। वरना तो मनुष्य के सामने यह समस्या उत्पन्न हो जायेगी की वह कौनसा कर्म करे ? इसके समाधान हेतु इनका मानना है कि गीता का निष्काम कर्म ज्ञानी के लिये है। व्यक्ति को अपने वर्ण धर्म एवं स्वभावानुसार निष्काम कर्म करना चाहिये। इस प्रकार गीता वर्णाश्रम धर्म में भी विश्वास करती है। निष्काम कर्म भी ज्ञानी ही कर सकता है ये वाक्य गीता द्वारा कर्म और ज्ञान के मध्य सांमजस्य स्थापना का परिचायक है। प्रथम साधक को अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनी चाहिये।¹² भगवत्प्रीति के लिए भगवद्दर्पण बुद्धि से कर्म करने से आध्यात्मिक उन्नति होती है और कर्मों द्वारा बन्धन नहीं होता, जिस प्रकार पथ पत्र जल में लिप्त नहीं होता है। सिद्ध पुरुष निष्काम कर्म द्वारा जीवन मुक्त अवस्था में अपने समस्त कर्मों का प्रयोजन लोक संग्रह एवं लोक कल्याण मानते है। सिद्ध पुरुष के लिये कोई निषेध नहीं, कोई कृत्य नहीं, वह लोक कल्याण के कार्य करता नहीं अपितु उसके कार्यों से स्वतः लोक कल्याण होता है यही गीता का लोक संग्रह का भाव है। भगवान् स्वयं कहते है उनके लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं है, फिर भी उनके द्वारा कर्म सम्पादन हो रहा है, अन्यथा समस्त लोको का उच्छेद हो जाये।

(3) भक्ति योग—गीता में स्वयं कृष्ण ने कहा है

‘अहम् त्वाम् सर्व पापेभ्यः मोक्षायिव्यामि मा शुचः।’¹³

जो अपने को ईश्वर पर छोड़ देते है, अपने को पूरी तरह से ईश्वर को अर्पित कर देते हैं और उसकी शरण में जाते है वे सत्व, रज, तम से निर्मित माया के सागर को पार कर लेते है। वे गुणातीत हो जाते है। नैसर्गिक प्रवृत्तियों और इच्छाओं को जीत लेते है और गुणातीत पूर्णता प्राप्त कर लेते है।

भगवद्गीता का सार भक्ति ही है, भक्ति गीता का स्रदय है। प्रपत्ति (पूर्ण समर्पण) और शरणागति भक्ति के आवश्यक अंग है। गीता के उपदेश का प्रारम्भ ही प्रपत्ति या शरणागति से होता है। गीता में नवम अध्याय में भक्ति को ‘राज विद्या’ और राजयोग बताकर शरणागति की महिमा प्रतिष्ठित की गई है। जो ईश्वर की शरण में जाते है और जरा-मरण से छूटने का अनवरत प्रत्यन करते हैं। वे स्वयं परब्रह्म हो जाते है। 1 पुण्यात्माओं की तो बात ही क्या, पापी तक ईश्वर की शरण में जाकर जीवन के परमध्यय को प्राप्त करते है। प्रपत्ति और शरणागति का आधार ईश्वरीय कृपा है जो कि भक्ति का आधारभूत सिद्धान्त है। इसके अनुसार ईश्वरीय कृपा से ही उसका दर्शन होता है ना की वेदों के अध्ययन, यज्ञों के अनुष्ठान, दान कर्मकाण्ड और तप से ईश्वर की विभूति के दर्शन

नहीं हो सकते अनन्य भक्ति ही एक मात्र मार्ग है। ईश्वरीय ज्ञान एवं दर्शन हेतु भगवान् श्री कृष्ण 18वे अध्याय के अन्त में कहते है कि—‘हे अर्जुन अब तु मेरे सर्वाधिक गोपनीय परम रहस्यमय इस वचन को सुन कि तु सब कुछ छोड़कर मेरी अनन्य शरण में आजा, तु निश्चय ही मुझे प्राप्त होगा।’¹⁴

पराभक्ति, पर ज्ञान और निष्काम कर्म वस्तुतः एक हैं क्योंकि तीनों का प्रयोजनार्थ एक ही है अर्थात्—निर्विकल्प अपरोक्ष-अनुभूति। इनके मध्य का भेद व्यवहारिक है क्योंकि अपनी चरम अवस्था में ये एक ही अपरोक्षानुभूति का संकेत करते है।

गीता में प्रयुक्त श्लोकों से भक्ति का महत्व स्पष्ट होता है -

1. मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।¹⁵
2. कल्याण कर्म करने वाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।¹⁶
3. पापी और दुराचारी भी मेरा यदि निश्चल मन से भजन करे उसे साधु ही मानना चाहिए क्योंकि वह शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है।¹⁷
4. इस अनित्य और सुख रहित लोक में मेरा भजन करना चाहिये।¹⁸
5. हे अर्जुन तु मुझमें ही निरन्तर मन लगा, मेरा भजन कर, मुझे अर्पण करके कर्मों द्वारा मेरा यजन कर, मुझे ही प्रणाम कर तु मेरी अनन्य शरण में आजा और अपनी आत्मा को मुझमें प्रतिष्ठित कर दे, तु मुझे ही प्राप्त होगा।¹⁹
6. मुझमें मन लगाने वाले भक्तों का मैं शीघ्र ही संसार सागर से उद्धार करता हूँ।²⁰
7. अर्थात्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी इन चार प्रकार के भक्तों में ज्ञानी सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि उसकी मुझमें अनन्य भक्ति होती है, अतः उसे मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और मुझे वह अत्यन्त प्रिय है।²¹

इस प्रकार स्पष्ट है गीता में भक्ति का सर्वाधिक महत्व है और इसे बहुत बार काव्य में कहा गया है। मोक्ष पराशान्ति है, उत्तम सुख है जो ईश्वर के समागम से प्राप्त होता है, मोक्ष ब्रह्मा में डूब जाना, ब्रह्मा हो जाना है। यहाँ कोई कृत्य शेष नहीं रहता। यहाँ ईश्वर मनुष्य के अंश-अंश में व्याप्त हो जाता है, ईश्वर से अविच्छेद संयोग हो जाता है।⁶

निष्कर्ष

गीता कि दृष्टि, मोक्ष प्राप्ति में सहयोगी सभी साधनों एवं मार्गों को अपने अन्दर समाहित करती है। मोक्ष क्योंकि आत्मा का होता है और आत्मा ज्ञाता कर्ता एवं भोक्ता है। आत्मा के इस त्रियामी

स्वाभाव के आधार पर गीता, मोक्ष के लिये तीन मार्ग प्रस्तुत करती है—ज्ञान, कर्म और भक्ति। समस्त धर्म एवं दर्शन मोक्ष प्राप्ति हेतु ज्ञान, विवेकख्याति या प्रज्ञा कि उपादेयिता स्वीकार करते हैं। गीता का प्रयास है समस्त कि मुक्ति। अतः गीता कर्मठ एवं सरल व्यक्तियों की मुक्ति हेतु कर्म एवं भक्ति का मार्ग प्रस्तुत करती है। गीता में स्थितप्रज्ञ कि स्थिति महायान बोद्ध सम्प्रदाय के बोधिसत्व के समकक्ष प्रतीत होती है।

कर्म के विचार को गीता ने नये आयाम प्रदान किये हैं। कर्म यदि कामना रहित है, तब मोक्ष का साधन हो जाता है। कर्म करना अनिवार्य है। मनुष्य एक छण भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता है। व्यक्ति और कर्म के मध्य एक तीसरा आयाम है विचार का, अर्थात् मनुष्य के कर्म प्रथमतः उसके विचारो के रूप में नियोजित होते हैं। जहां वह अपनी इच्छा शक्ति से संकल्प लेता है। किसी विशेष कर्म में प्रवर्त होता है। जिसके मूल में विशेष फल कि इच्छा होती है। गीता कहती है कि फल भी हमारे वश में नहीं हैं—‘कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भुमा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।’

गीता के अतिरिक्त मीमांसा दर्शन ने भी कर्मजन्य मोक्ष कि स्थिति को स्वीकार किया है किन्तु शंकराचार्य कर्म आधारित मोक्ष को स्वीकार नहीं करते हैं। शंकराचार्य कहते हैं ‘ज्ञान में क्रिया की गन्ध मात्र भी नहीं है। क्योंकि मोक्ष का आधार कर्म पुद्गलों से मुक्ति है। अतः शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष ज्ञानजन्य ही हो सकता है। कुमारिल श्लोक वार्तिक में विरोधी वक्तव्य प्रस्तुत करते हैं—‘ज्ञान जन्य मोक्ष नहीं हो सकता है।’ गीता यहां समाधान प्रस्तुत करती है। ज्ञान क्रिया का पूर्वगामी है, तथा कोई कार्य स्वतंत्र संकल्प और इच्छा शक्ति रहित नहीं होता है। अतः यदि वह निष्काम भाव या साक्षी भाव से किया जाए तो कर्म फल का सर्जन नहीं होता। क्योंकि फल का सीधा सम्बन्ध कामना से है।

गीता ने कर्म के अतिरिक्त भक्ति को भी मोक्ष का माध्यम या मार्ग माना है। भक्ति शब्द कि उत्पत्ति ईश्वर के प्रत्यय पर आधारित है। यह मोक्ष प्राप्ति का तीसरा आयाम है। ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण एवं निष्ठा के माध्यम से भी व्यक्ति मोक्ष रूपी परम पद प्राप्त कर

सकता है। भक्ति का आधार है समर्पण और समर्पण का अर्थ है, अहंकार का नाश। सभी भारतीय दर्शन यह स्वीकारते हैं कि अहंकार मोक्ष के मार्ग कि सबसे बड़ी बाधा है। अतः स्पष्ट है सरल भावना युक्त व्यक्ति भक्ति के माध्यम से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। श्री कृष्ण यहां तक कहते हैं कि यदि शुद्ध चांडाल पापी व्यक्ति भी मेरी शरण में आ जाये और अपने समस्त कार्यों को मुझमे समर्पित कर दे तब वह भी मुक्ति को प्राप्त होगा।

सन्दर्भ सूची

1. तिलक, बाल गंगाधर, गीता रहस्य, पृ. 21, 22
2. भगवद्गीता, द्वितीय अध्याय, श्लोक 47, पृ. 92
3. भगवद्गीता, तीसरा अध्याय, श्लोक 5, पृ. 114
4. भगवद्गीता, द्वितीय अध्याय, श्लोक 16, पृ. 66
5. भगवद्गीता द्वितीय अध्याय, श्लोक 22, पृ. 72
6. भगवद्गीता, सातवाँ अध्याय, श्लोक 7, पृ. 246
7. एसेज ऑन गीता, दूसरी माला, पृ. 218
8. भगवद्गीता, द्वितीय अध्याय, श्लोक 50, पृ. 94
9. भगवद्गीता, नवें अध्याय, श्लोक 6, पृ. 303
10. भगवद्गीता, द्वितीय अध्याय, श्लोक 59, पृ. 101
11. भगवद्गीता, अठारहवाँ अध्याय, श्लोक 11, पृ. 511
12. भगवद्गीता, पांचवा अध्याय, श्लोक 10, पृ. 117
13. भगवद्गीता, नवें अध्याय, श्लोक 34, पृ. 327
14. भगवद्गीता, अठारहवाँ अध्याय, श्लोक 64, पृ. 552
15. भगवद्गीता, नवें अध्याय, श्लोक 31, पृ. 325
16. भगवद्गीता, नवें अध्याय, श्लोक 30, पृ. 324
17. भगवद्गीता, नवें अध्याय, श्लोक 32, पृ. 326
18. भगवद्गीता, नवें अध्याय, श्लोक 33, पृ. 327
19. भगवद्गीता, छठा अध्याय, श्लोक 40, पृ. 231
20. भगवद्गीता, बारहवाँ अध्याय, श्लोक 7, पृ. 404
21. भगवद्गीता, सोलहवाँ अध्याय, श्लोक 17, पृ. 498

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं पंचायती राज : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास यात्रा



डॉ. मनोज कुमार शर्मा

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग

राजकीय शाकम्भर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, साँभर लेक, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

ग्रामीण विकास एवं स्थानीय प्रशासन के संदर्भ में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अर्थात् पंचायती राज का विशेष महत्व है जिसके माध्यम से सहयोग, उत्तरदायित्व, स्वावलम्बन, सहभागिता आदि गुणों का विकास संभव है। पंचायती राज में प्रजातंत्र की आत्मा निहित होती है। भारत में इसका इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितनी कि हमारी सभ्यता। पंचायती राज व्यवस्था भारतीय शासन व्यवस्था का अद्भुत अभिलक्षण है। सामाजिक समस्याओं एवं अन्य न्यायिक विषयों में यह एक निष्पक्ष व आदर्श प्रणाली रही है। इसी परिप्रेक्ष्य में पंच-परमेश्वर की धारणा का प्रादुर्भाव हुआ। हमारे देश में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सजीव स्वरूप पंचायती राज व्यवस्था के रूप में स्वतंत्रता के बाद स्पष्टतः प्रकट हुआ, परन्तु इसका इतिहास वैदिक काल से पूर्व का है। जन-जन की शासन की गतिविधियों में सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित करने के दृष्टिकोण से स्वतंत्रता के पश्चात पंचायती राज व्यवस्था का 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में उद्घोष किया गया। तदुपरांत 73 वें संवैधानिक संशोधन, 1993 द्वारा इसे विधिक संस्तर प्रदान किया गया। भारत में यह व्यवस्था समग्र विकास का महत्वपूर्ण अभियंत्र रहा है। प्रस्तुत शोधपत्र पंचायती राज व्यवस्था के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, वर्तमान एवं भविष्य की विकास यात्रा के विश्लेषण पर केन्द्रित है।

संकेताक्षर : स्थानीय शासन, ग्रामसभा, जनपद पंचायत, नौकरशाही, वैचारिक अधिष्ठान, सहभागिता, स्वावलम्बन

लोकतंत्र मानव गरिमा, स्वातन्त्र्य, समानता एवं राजनीतिक निर्णयों में सहभागिता के कारण शासन व्यवस्था का सर्वोत्तम स्वरूप माना जाता है। वहीं जन सहभागिता के साथ निम्न स्तर तक विकेन्द्रीकरण की भावना का साकार स्वरूप पंचायती राज व्यवस्था में प्रस्थापित है। पंचायती राज एवं लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण भारतीय शासन व्यवस्था का अद्भुत लक्षण है। व्यवस्था के अंतिम छोर तक कार्य करने वाली यह पद्धति स्वायत्त शासन का सजीव स्वरूप है।

पंचायती राज लोककल्याणकारी राज्य का आधारभूत स्तम्भ है। इसके माध्यम से सत्ता का विकेन्द्रीकरण सहज होता है। ये जहाँ स्थानीय स्तर पर नागरिकों को राजनीतिक प्रशिक्षण प्रदान करती हैं, वहीं उनको राज्य एवं राष्ट्रीय राजनीति में सहभागिता के अवसर सुनिश्चित करती है।

पंचायती राज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास यात्रा—हमारे देश में पंचायती राज व्यवस्था का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितनी हमारी सभ्यता। ऐतिहासिक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वैदिक

काल में भी पंचायती राज व्यवस्था कार्यरत थी, जो ग्रामीणों के दैनिक कार्यों के साथ-साथ प्रशासनिक, सामाजिक एवं अन्य न्यायिक विषयों में निष्पक्ष प्रणाली के रूप में मार्गदर्शन करती थी। ग्राम का मुखिया “ग्रामिणी” पंचायत का प्रमुख होता था। बौद्ध एवं मौर्य युग में कार्यरत ग्रामपरिषदों का मूल दायित्व भूमिकर, लगान एवं शांति व सुरक्षा व्यवस्था स्थापित करना था। चाणक्य ने भी अपनी रचना “अर्थशास्त्र” में ग्राम को राजनीतिक इकाई के रूप में प्रस्थापित कर ग्रामिक एवं ग्राम पंचायतों की मुख्य भूमिका की व्याख्या की है। कुछ इसी प्रकार का उल्लेख राजा हर्षवर्द्धन के शिलालेखों में मिलता है।¹ वहीं 10 वीं शताब्दी से पूर्व, चुनाव प्रणाली पर आधारित, पंचायती राज का पूर्ण अस्तित्व दक्षिण भारत में भी देखने को मिलता है, जिसमें शासन एवं न्यायिक प्रक्रिया का दायित्व एक महासभा पर होता था।

वैदिक काल में पंचायती राज—5000 से 3500 ई.पू. तक पंचायत राज व्यवस्था के अन्तर्गत तीन अधिकारी—पुरोहित, सेनापति एवं ग्रामिणी होते थे, जिनमें ग्रामिणी ग्राम पंचायत का मुखिया होता

था। वह आर्थिक, सामाजिक व सैनिक व्यवस्था के प्रबंधन के साथ-साथ राजस्व संग्रहण व सुरक्षा के दायित्व का निर्वहन भी करता था।

महाकाव्य काल—1500 से 1000 ई.पू. में राज्य को प्रशासनिक दृष्टिकोण से विभिन्न इकाईयों क्रमशः ग्राम से प्रारंभ होकर दशग्राम, विंशतिग्राम, शतग्राम, सहस्रग्राम और अंतिम रूप में राज्य तक विभाजित होता था। इसी परिपेक्ष्य में इसके प्रशासक ग्रामिक, विंशतीय, शतग्रामी, अधिपति और सर्वोच्च रूप में राजा होता था।² रामायण युग में भी सभा एवं समितियों का उल्लेख मिलता है। श्रीरामचरितमानस में इस व्यवस्था के उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलते हैं।

“जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।

सो नृप अवसि नरक अधिकारी।”

उक्त दोहा राजा के प्रजा कल्याण संबंधी धर्माचरण को प्रकट करता है। वहीं महाभारत के शांतिपर्व, मनु की कृति “मनुस्मृति” एवं कौटिल्य के “अर्थशास्त्र” में स्थानीय शासन की इकाई ग्राम की महत्ता को इंगित किया गया है।

बौद्ध काल में पंचायती राज—इस काल की (600-400 ई.पू.) शासन व्यवस्था में पूरे जनपद की इकाई ग्राम थी। ग्रामसभा द्वारा निर्वाचित प्रशासक—“ग्रामयोजक” अपने क्षेत्र के सभी प्रकरणों मुख्यतः अभियोगों का निस्तारण, मद्यपान, जुआ, पशु-हिंसा जैसी दूषित प्रवृत्तियों का निषेध करने के कार्य होते थे। फिर भी वह स्वेच्छाचारी नहीं बन सकता था क्योंकि उसके विरुद्ध राजा के पास अपील कर अनुशासनात्मक कार्यवाही अमल में लायी जा सकती थी। ग्रामयोजक आर्थिक क्षेत्र-कृषि एवं व्यापारिक गतिविधियों को भी नियंत्रित करता था। स्पष्ट है कि “इस काल में ग्राम एक स्वावलंबी प्रजातांत्रिक इकाई थी।”³

मौर्यकाल में पंचायती राज—321 से 305 ई.पू. के मध्य के काल का सुव्यवस्थित राजप्रबंधन का उल्लेख चाणक्य के ग्रंथ अर्थशास्त्र में मिलता है। इसमें प्रांतों के उपविभाग क्रमशः जनपद, स्थानीय (800 गाँवों), द्रोणमुख (400 गाँवों), खार्वटिक (200 गाँवों) संग्रहण (100 गाँवों) का समूह एवं ग्राम है। यह विभाजन राजस्व व न्याय व्यवस्था के मध्यनजर किये गये थे। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम का मुखिया “ग्रामिक” पूर्णरूप से स्वतंत्र होता था। “ग्रामिक” की सहायतार्थ ग्रामसभा होती थी, जिसके सदस्य वयोवृद्ध गाँव वालों द्वारा चुने जाते थे।⁴ “कौटिल्य के अनुसार, स्थानीय विवादों का निर्णय ग्राम के वृद्ध लोग (मुखिया वर्ग) एवं सामंतों द्वारा किया जाता था। इनके परस्पर असहमत होने पर स्थानीय जनता की अनुमति से वहाँ के धार्मिक पुरुष उस

विवादग्रस्त विषय पर निर्णय देते थे।”⁵ एक गाँव के मुखिया को “ग्राम-वृद्ध, पाँच गाँव के मुखिया को पंचग्रामी, दस गाँव के मुखिया को दसग्रामी कहा जाता था। चन्द्रगुप्त के शासनकाल में आये यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के लेखों से भी यह स्पष्ट है कि मौर्यकाल में ग्रामीण व्यवस्था उत्कृष्ट थी जिसमें ग्रामसभा को न्यायिक कार्यों के साथ-साथ अपराधियों को दण्डित करने के अधिकार प्राप्त थे। उसका अपना कोष भी था। “मनोरंजन कार्यों के साथ-साथ सड़क, पुल, पोखर आदि समाजोपयोगी कार्य भी इसके हाथों में थे।”⁶ चन्द्रगुप्त ने इस प्रकार इन संस्थाओं के प्रति अहस्तक्षेप की नीति का पालन किया था।”⁷

गुप्तकाल में पंचायती राज—मौर्यकालीन स्थानीय शासन व्यवस्था के अनुरूप स्थानीय ग्रामीण जनता द्वारा निर्वाचित ग्रामिक ही सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई ग्राम का मुखिया होता था, जो ग्राम की शांति, सुरक्षा व मर्यादा के लिए उत्तरदायी होता था। समकालीन अभिलेखों में ग्रामसभा को “ग्राम जनपद” एवं “पंचमंडली” कहा गया है, जो महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पादित करती थी। “ग्राम की रक्षा करने वाले अधिकारी “ग्राम रक्षक” या “प्रतिहार” कहलाते थे, जिनकी नियुक्ति ग्राम पंचायत द्वारा की जाती थी।⁸ ऐसा माना जाता है कि इस काल में स्थानीय शासन में नगर-शासन का अस्तित्व नहीं था, अपितु अपने सम्पूर्ण प्रभाव से ग्राम पंचायतें ही शासन व्यवस्था का प्रबंधन करती थी।”⁹

राजपूत काल में पंचायती राज—तत्कालीन सामंतशाही के परिणामस्वरूप इस काल में ग्राम पंचायतों का प्रभाव क्षीण होने लगा। क्षेत्रीय विस्तार के मध्यनजर तत्कालीन शासन प्रांतों, जिलों, अधिष्ठानों और ग्रामों में विभक्त था। इस दृष्टि से शासन-पद्धति गुप्तकाल के समकथ थी परन्तु शासन के विकेन्द्रीकरण की भावना पर आधारित होने के कारण केन्द्रीय शक्ति को सदैव खतरा बना रहता था। सामंतगण अक्सर केन्द्र से स्वतंत्र होने की कोशिश करते रहते थे।¹⁰

दक्षिण के चोल साम्राज्य में पंचायती राज—इस व्यवस्था का सर्वाधिक परिष्कृत स्वरूप दक्षिण भारत के चोल साम्राज्य में परिलक्षित होता है, जिसे प्रारंभ करने का श्रेय राजा राजा चोल प्रथम को जाता है। इस काल में “पंचायतों” को “महासभा” कहते थे, जिसका मुखिया “ग्रामिक” होता था। प्रत्येक ग्राम महासभा प्रशासनिक दृष्टि से कई समितियों में विभक्त थी।¹¹ इस महासभा को ग्राम की भूमि पर सम्पूर्ण अधिकार था। नई भूमि प्राप्त करना, धार्मिक कार्यों हेतु उसका बेचान, कर-वसूली, विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आय की ट्रस्टी, न्यायिक अधिकार, अपराधियों को कठोर दण्ड संबंधी अधिकार प्राप्त थे। मठों द्वारा संस्कृत एवं तमिल भाषा व साहित्य का शिक्षा प्रबंधन का दायित्व

भी महासभा पर था। अन्य लोककल्याणकारी कार्य जैसे-सड़क, सिंचाई, मनोरंजन, रक्षा संबंधी कार्यों का निर्वहन इसी को करना था। सरकारी अधिकारियों को ग्राम सभाओं का अंकेक्षण करने का अधिकार था एवं गबन, चोरी प्रमाणित होने पर कठोर दण्ड के प्रावधान थे। ग्रामों के प्रतिनिधियों की सभा- 'नाइसभा' लगान माफ़ कर सकती थी। 'कई राज्यों में ग्रामसभा तथा पंचायतें अपनी सेना भी रख सकती थीं।¹² इससे स्पष्ट है कि इस काल की प्रशासन प्रणाली की अद्वितीय विशेषता ग्राम-स्वायत्तता का विकास थी।

मध्यकाल एवं मुगलकाल में पंचायती राज-“भारत का मध्ययुगीन काल उथल-पुथल एवं अराजकतापूर्ण था। इस कालावधि में कई सुल्तान, बादशाह एवं राजवंश आये और चले गये।¹³ सन् 1200-1526 ई. के सल्तनत काल के दौरान सुल्तानों ने ग्रामीण समुदाय के प्रति तटस्थता की नीति रखी। इससे ग्रामीण समुदाय को अपने आंतरिक, प्रशासनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व न्यायिक संस्थाओं को अक्षुण्ण रखने में मदद मिली। “इस काल में सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई ग्राम थी जिसका प्रबंधन लम्बरदारों, पटवारियों व चौकीदारों द्वारा किया जाता था। ग्राम पूर्ण रूप से स्वतंत्र थे।¹⁴ लम्बरदारों का कार्य शांति व्यवस्था एवं भूमिकर संग्रहण था।

मुगलकाल (1526-1707) में भी ग्राम ही सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई थी। आइने अकबरी के अनुसार परगनों को गाँवों में विभक्त किया था एवं गाँवों का प्रबंधन पंचायतों द्वारा किया जाता था। इन गाँवों में मुकद्दम, पटवारी, चौधरी एवं चौकीदार-ये चार स्तर के अधिकारी होते थे। गाँव के देखभाल-मुकद्दम, लगान वसूली-पटवारी, झगड़ों का निपटारा-पंचायतों की मदद से चौधरी एवं सुरक्षा के कार्य-चौकीदार द्वारा सम्पादित होते थे। “यद्यपि मुगल साम्राज्य एक सशक्त केन्द्रीकृत नौकरशाही और सैनिक शक्ति पर आधारित था, किन्तु मुगल बादशाहों की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अहस्तक्षेप की नीति के कारण एवं अंग्रेजों के आगमन से पूर्व तक ग्रामीण स्थानीय इकाईयाँ अपने परम्परागत जीवन शैली को चलायमान रखने में सफल रहीं।¹⁵

ब्रिटिश काल में पंचायती राज-मुगलकाल के पतन के बाद, ब्रिटिश शासन काल में भारत के इस प्राचीन सुव्यवस्थित प्रशासनिक व्यवस्था को कमजोर करने का प्रयत्न किया गया, परन्तु यह व्यवस्था टूटी नहीं। किसी न किसी रूप में इसका अस्तित्व बना रहा। यद्यपि पंचायतों ने अपनी सत्ता गँवा दी थी, क्योंकि औपनिवेशिक ताकतों का मुख्य लक्ष्य साम्राज्यवादी हितों का संरक्षण था, न कि इन संस्थाओं को उत्तरदायी प्रतिनिधित्व का स्वरूप प्रदान करना। फिर भी इनके प्रति उनका दृष्टिकोण

व्यावहारिक था। परिणामस्वरूप, विकास के मूल में अंग्रेजों ने पंचायत के महत्व को स्वीकारा और सन् 1920 में सभी प्रांतों में ग्राम पंचायत अधिनियम पारित कर, उसे लागू किया। हालांकि इस प्रणाली में पंच निर्वाचित न होकर सरकार द्वारा मनोनीत किए जाते थे। इसके साथ उन्हें कुछ न्यायिक अधिकार भी दिए गये। इसी काल में बड़े स्तर पर व्यवहार एवं दण्ड न्यायालयों की स्थापना हुई, जिनका संबंध गाँवों से था। इनमें अधिकांश मामले सुनवायी हेतु आने लगे, जिससे ग्राम पंचायतें शून्य होती चली गईं। इस संदर्भ में सन् 1821 में कर्नल एल्फिन स्टोन ने ग्राम पंचायतों के महत्व को दृष्टिगत किया तथा उनके कार्य में हस्तक्षेप हेतु विनियम बनाने की प्रवृत्ति को अनुचित बताया।¹⁶

ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड रिपिन ने 1882 में शासन व्यवस्था को नये आयाम प्रदान करने हेतु स्थानीय स्वशासन के लिए प्रसिद्ध अधिनियम पारित करने की घोषणा की जिसने ग्राम पंचायतों की स्थापना एवं ग्रामीण विकास में भरपूर योगदान किया। आधुनिक भारत के इतिहास में इसे स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का ठोस कदम माना गया। हालांकि इस अधिनियम पर यथोचित कार्यवाही न हो सकी क्योंकि अंग्रेज ग्रामीण विकास एवं भारतीय प्रशासन की सुदृढता के घोर विरोधी थे।

पंचायती राज की स्थापना के मूल में अंग्रेजों का मंतव्य कुछ भी रहा हो, परन्तु एक बात स्पष्ट है कि वे इसे शासन व्यवस्था का सुदृढ संगठन मानते थे। इसकी वास्तविकता सरकार द्वारा 1907 में विकेन्द्रीकरण हेतु हॉबहाउस की अध्यक्षता में गठित शाही आयोग के 1909 के प्रतिवेदन से स्पष्ट प्रतीत होती है। इसी आयोग ने ग्राम पंचायतों को स्थानीय स्वशासन की सबसे निचली इकाई के रूप में पुनर्जीवित करने एवं सीधे साधे ढंग से चुनाव की सिफारिश भी की थी।¹⁷ “इस परिपेक्ष्य में 1919 में नवीन युग का सूत्रपात हुआ। अब स्थानीय स्वशासन विभाग को प्रांतीय सरकार के लोकप्रिय मंत्रियों के अधीन करके उत्तरदायी बना दिया गया। केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण छूट गया और संयुक्त शासन के क्षेत्र में प्रांत कुछ हद तक अपनी नीतियों का अनुसरण करने में स्वतंत्र हो गये।¹⁸

इन सबके पश्चात, यथासमय लाल, बाल, पाल, दादाभाई नौरोजी, गाँधी ने कई बार ग्राम पंचायतों के पुनर्गठन एवं ग्राम्य विकास के लिए विभिन्न आंदोलन किये। टैगोर ने सन् 1920 में शांति निकेतन में ग्रामीण सुधार की दिशा में ग्रामीण विकास एवं शिक्षा के कार्यक्रम शुरू किए। इसी क्रम में गाँधी ने सन् 1932 में सेवाग्राम में ग्रामीणों के स्वावलंबन के लिए अनेक योजनाओं का सूत्रपात किया। उनका उद्देश्य ग्राम राज्य के माध्यम से रामराज्य का स्वप्न साकार करना था। इसीलिए कांग्रेस की नीतिगत घोषणाओं एवं रचनात्मक कार्यक्रमों में सत्ता का विकेन्द्रीकरण

कर, गाँवों को इकाई मानते हुए एवं गाँववासियों को न्याय का दायित्व सौंपने व उन्हें आत्मनिर्भर बनाने पर सदैव बल दिया। सन् 1920 में असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया गया तथा पंचायती राज संस्थाओं को अधिक सक्रिय बनाने के लिए जोर दिया।¹⁹

सन् 1935 में प्रांतों को स्वायत्तता मिली। 11 प्रांतों में स्वायत्त शासन की दिशा में सक्रिय पहल की गई। ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों का निर्माण होने लगा। परन्तु पुनः अंग्रेजों की केन्द्रीकरण की नीति एवं 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ होने से पंचायती राज व्यवस्था सुदृढ़ नहीं हो पायी।

स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासन काल में स्थानीय शासन संस्थाओं को सांगठनिक एवं कार्यप्रणाली की दृष्टि से व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया गया। स्थानीय शासन इकाईयों को निर्वाचित स्वरूप देना, उन्हें करारोपण की शक्तियाँ सौंपना तथा लोकतंत्र के वैचारिक अधिष्ठान के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न इसी काल में ही हुआ।

पंचायती राज संस्थाओं की इस विकास यात्रा से यह विदित होता है भारत के सर्वांगीण विकास के लिए तथा ग्रामीणों को राष्ट्रीय मुख्य धारा से जोड़ने हेतु पंचायती राज के अलावा अन्य कोई सशक्त विकल्प नहीं है। इस प्रकार, पंचायतों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। प्राचीन काल में ही नहीं, बल्कि मुगल एवं ब्रिटिश काल में भी इसका स्वरूप व महत्त्व स्पष्ट परिलक्षित होता रहा है। स्वायत्त-भाव होने के कारण भारत के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में पंचायती राज की अहम भूमिका रहती आई है। गाँधी की मान्यता थी कि स्वराज की आधारशिला ग्रामीण समुदाय की राजनीतिक व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था में सहभागिता पर निर्भर है। इसीलिए, गाँधी के विचारों से प्रेरणा लेते हुए, हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान के भाग-IV में नीति-निर्देशक तत्वों में इसका समावेश किया गया।

इसी संदर्भ में, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं पंचायती राज को सुदृढ़ता प्रदान करने के उद्देश्य से 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने पंचायत राज का उद्घाटन कर ग्रामीण विकास का विधिवत श्री गणेश किया। कालांतर में 73 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने हेतु संवैधानिक आधार प्रदान किया जो 24 अप्रैल 1993 से सम्पूर्ण देश में प्रवर्तन में आ गया।

पंचायत राज संस्थाओं की विकास यात्रा का यह अंतिम चरण नहीं है, वरन् यह शुभारंभ है। शुभारंभ है-स्थानीय शासन संस्थाओं

के माध्यम से वास्तविक उत्तरदायी शासन तंत्र की प्राप्ति एवं स्वीकारोक्ति। केवल कानून निर्माण ही नहीं, बल्कि समयानुकूल सार्थक सुधारों के प्रयास भविष्य में पंचायती राज व्यवस्था के ध्येय की सिद्धि कर पायेंगे। आवश्यकता है-दृढ़ इच्छाशक्ति से क्रियान्वयन की, तभी सफल हो पायेगा लोकतंत्र।

संदर्भ सूची

1. मजूमदार, आर.के. एण्ड श्रीवास्तव, ए.एन., हिस्ट्री ऑफ एनसियन्ट इण्डिया, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 2005, पृ. 72
2. उपर्युक्त, पृ. 113-114
3. पाण्डेय, डॉ. राजबली, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2015, पृ. 111-117
4. उपर्युक्त, पृ. 153
5. मजूमदार, आर. सी., एन एडवांस हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, मैकमिलन एण्ड क. लंदन, 1970, पृ. 70
6. पाण्डेय, डॉ. राजबली, पूर्वोक्त, पृ. 311
7. विद्यालंकार, सत्यकेतु, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, भारतीय प्रेस, इलाहाबाद, 1928, पृ. 210-11
8. सुराणा, डॉ. राजकुमारी, भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और नव-पंचायती राज, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2000, पृ. 7
9. शर्मा, डॉ. कमलेश, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 311
10. मुखर्जी, आर.के., लोकल गवर्नमेंट ऑफ एन्सियन्ट इण्डिया, पृ. 78-79
11. मजूमदार, आर.सी., कॉर्पोरेट लाइफ इन इण्डिया, सेन एण्ड सेन, कलकत्ता, 1970, पृ. 117-119
12. वर्मा, परिपूर्णानंद, पंचायतीय संसद - एक अध्याय, लोकतंत्र समीक्षा, 1989, पृ. 2
13. कुरेशी, जे.एच., द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द सल्तनत ऑफ देहली, लाहौर, पृ. 47, उद्धृत-आर.एल. खन्ना, पंचायती राज इन इण्डिया, दी इंग्लिश बुक डिपो, अम्बाला, 1972, पृ. 12
14. मजूमदार, आर.सी., पूर्वोक्त, पृ. 536
15. मालवीय, एच.डी., विलेज पंचायत इन एन्सियन्ट इण्डिया, ऑल इण्डिया कॉंग्रेस कमेटी, न्यू देहली, 1956, पृ. 44
16. तिवाड़ी, चौधरी एवं चौधरी, राजस्थान में पंचायती राज, ऋचा प्रकाशन, जयपुर, 1955, पृ. 4
17. उपर्युक्त
18. सुरोलिया विनोद, पंचायती राज में जनता की सहभागिता, प्रतियोगिता दर्पण, राजनीतिक लेख, मई, 1955, पृ. 1546
19. तिवाड़ी, चौधरी एवं चौधरी, पूर्वोक्त पृ. 4

श्री अरविन्द का सामान्य जीवन दर्शन

रणसिंह यादव

सहायक आचार्य, इतिहास विभाग

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)



शोध सारांश

श्री अरविन्द का मानना है कि वर्तमान दौर, जो कि न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घोर राजनीतिक उथल-पुथल का दौर है। न केवल घटनायें तेजी से घट रही हैं और समाज सही दिशाओं की तलाश में है, बल्कि संदर्भों, मूल्यों, मान्यताओं, वर्जनाओं के क्षेत्र में भी एक अयुक्त बौद्धिक एवं असंतोष का दौर है। “भारतीय राष्ट्रीयता” के शीर्षक के रूप में श्री अरविन्द का नाम जुड़ा है जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता के मर्म को किसी इच्छाजनित विश्वास या धारणा के कारण नहीं, बल्कि पूर्णता की ओर अग्रसर एक नियति के रूप में उद्घटित किया था। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता को उसके सनातन आलोक में पहचाना था। उनके लिए राष्ट्रीयता राजनैतिक कार्यक्रम नहीं था, यह धर्म था, यह मानवता, देश और जाति का प्रेम था। श्री अरविन्द ने भारतीय राष्ट्रीयता को न केवल तीव्र किया बल्कि वर्तमान में भय, अवसाद, नारी का सम्मान, योग, ध्यान, धर्म, नैतिकता, मानवतावाद जैसे विषयों पर अपनी टिप्पणी दी। जिनकी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपादेयता हेतु चिन्तन आवश्यक है। अतः यह आवश्यक है कि व्यवहार से पहले पर्याप्त अनुचिन्तन हो, यह अनुचिन्तन वर्तमान उथल-पुथल को सुलझाने की ओर लक्षित हो, संप्रत्यय निर्माण में सहायक हो, शब्दों की सटीक परिभाषा एवं व्याख्या करने में सक्षम हो, अतः यह शोध महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है।

संकेताक्षर : मानवतावाद, राष्ट्रीयता, सनातन आलोक, सामान्य आदर्श, आध्यात्मिक स्रोत, जड़ पदार्थ, प्रतिनिधित्व

वैश्विक समस्याओं के प्रति श्री अरविन्दों सचेत हैं और इन समस्याओं के समाधान हेतु मानव धर्म के रूप में मार्ग प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार बाहरी दृष्टि से और पुराने अनुभव से भी यही लगता है कि संसार में एकता न आयी तो विनाश अवश्यभावी है। इस दृष्टि से संसार के सामने दो विकल्प हैं। संयुक्त-राष्ट्र का रूप बदलकर एक जगत्-राज्य की स्थापना हो। वह दो तरह से हो सकता है : एक तो यह कि राष्ट्रों का अस्तित्व ही मिट जाय, सारा जगत् एक देश हो जो बहुत-से प्रदेशों और जिलों में बंटा हुआ हो; दूसरा यह कि हर देश अपने-अपने स्थान पर बना रहे और इन सबका मिलकर एक संघ शासन हो जो सबको एक साथ लेकर चल सके। दोनों में अपनी-अपनी अच्छाइयां और अपनी-अपनी कमजोरियां हैं, हो सकता है कि अध्यात्म-प्रधान मानव जाति किसी तीसरे ही रूप का आविष्कार करे। लेकिन एक बात जरूर है-विश्व धर्म या मानव धर्म भविष्य के लिये सबसे अधिक आशाप्रद वस्तु है। यहां धर्म से श्री अरविन्द का मतलब किन्हीं विशेष

रीति-रिवाजों, विधि-निषेधों या बाह्य क्रियाओं से नहीं है। अभी तक विश्व धर्म बनने के लिये बहुत-से धर्म आगे आ चुके हैं, पर किसी को सफलता नहीं मिली, क्योंकि वे सब मन और बुद्धि के विश्वासों पर आधारित थे।

श्री अरविन्दों के अनुसार मानव धर्म का अर्थ है कि मनुष्य इस बात को अनुभव कर सके कि सब के अन्दर वही एक आत्मा है। वह आत्मा हर व्यक्ति को, हर वस्तु को, अभिव्यक्ति की, विकास की पूरी-पूरी स्वाधीनता देती है। वह एकतानता की जगह, विविधता पसंद करती है। आत्मा की अभिव्यक्ति में अभी तक तो मनुष्य ही सबसे ऊंची सीढ़ी है और मनुष्य तथा मानव जाति का उपयोग करके ही वह संसार में पूरी तरह प्रकट होगी। इस प्रसंग में प्रगति का अर्थ होगा इस ज्ञान को अपने जीवन में उतारना और आत्मा को जीवन में प्रकट करने का प्रयत्न करना। इस आंतरिक विकास के कारण मनुष्य यह अनुभव कर पायेगा कि उसके अन्दर भी वही आत्मा है जो उसके पड़ोसी में या उसके दुश्मन कहने वाले व्यक्ति में है। एकता का यह ज्ञान सच्चा भ्रातृ-भाव लेकर आयेगा। इसके

साथ जाति को भी इस चीज का अनुभव होना चाहिये कि उसकी पूर्णता और उसका स्थिर सुख व्यक्ति की स्वतंत्रता और पूर्णता निर्भर है।

अगर यह आदर्श (श्री अरविन्द के उपरोक्त विचार) मानव जाति में जल्दी चरितार्थ हो सके तो सभी समस्याएं आसान हो जायेंगी। जब तक यह न हो तब तक एकता के लिये किया गया हर प्रयास अपना मूल्य रखता है। अधिकाधिक लोग अगर इस बात का अनुभव कर सकें और उसे अपने जीवन में लाने का प्रयास करें तो एक दिन आयेगा जब मनुष्य यह जान लेगा कि ऊपरी लीपा-पोती से काम नहीं चलता और तब, 'सत्य' जीवन की बागडोर अपने हाथ में ले लेगा और फिर 'पूर्णता' एक स्वप्न न रह जाएगी। तभी हम श्री अरविन्द के विचारों की वर्तमान में सार्थकता कही जा सकती है।

श्री अरविन्द के सामान्य जीवन दर्शन के विभिन्न पहलू

श्री अरविन्द भारतीय राजनीति एवं आध्यात्मिकजीवन में एक ऐसा नाम है, जो सम्पूर्णता लिए हुए है। श्री अरविन्द के जीवन की सभी घटनाएं/विचार वर्तमान जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव डालती है। विश्व के इतिहास में श्री अरविन्द जिस चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं, वह न कोई एक शिक्षा है, न कोई नूतन तत्व ज्ञान, वह तो स्वयं परात्पर से आने वाली एक निर्णायक क्रिया है। श्री अरविन्द हमें यह बतलाने के लिए आए कि सत्य पाने के लिए पृथ्वी छोड़ने की आवश्यकता नहीं, आत्मा की उपलब्धि के लिए जीवन के त्याग की आवश्यकता नहीं और भगवान् के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए किन्हीं सीमित विश्वासों में बंध जाने अथवा जगत् से पराङ्मुख होने को भी आवश्यकता नहीं। भगवान् सर्वत्र है, प्रत्येक वस्तु में है और यदि वे छिपे हुए हैं तो उसका कारण बस है कि हम उन्हें ढूंढ़ निकालने का कष्ट नहीं उठाते। श्री अरविन्द के आविर्भाव के पूर्व रामकृष्ण परमहंस ने सभी धर्मों की एकता सिद्ध कर दी थी और उसके शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने संसार का यह आश्वासन दे दिया था कि भारत का आध्यात्मिक स्रोत अभी सूखा नहीं है, संसार उससे नयी धारा की आशा कर सकता है। इससे पहले राजाराम मोहन राय ने राष्ट्रीयता और अंतर्राष्ट्रियता के मिलन का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। इस लिए यह सभी बातें श्री अरविन्द की साधना की पृष्ठ भूमि पर थोड़ा-बहुत प्रकाश डालती हैं।

जब श्री अरविन्द का आविर्भाव हुआ, पश्चिम के लोग प्रकृति को शक्ति से दबाकर विभिन्न प्रकार के सुखों का उपभोग कर रहे थे, जबकि दूसरी तरफ पूर्वी विश्व के लोग सुखों से वंचित अथवा सुखों को शंका की दृष्टि से देखते हुए अंधेरे में जीवन का अर्थ

खोज रहे थे। पश्चिमी सभ्यता में सभी तत्व थे, लेकिन सबसे प्रधान तत्व शरीर था जबकि पूर्व के सभी तत्वों में से प्रधान तत्व आत्मा थी। श्री अरविन्द के दर्शन में उन दोनों तत्वों का मिश्रण होने वाला था। इसलिए भगवान् ने पहले तो श्री अरविन्द का पाश्चात्य शिक्षा दिलवाई और उसके बाद भारतीय परम्परा का योगी बना दिया। श्री मां का शरीर यूरोप में आविर्भूत हुआ, यद्यपि उनकी आत्मा का चिर परिचित आवास भारत वर्ष है।

राजनीतिक पहलू

जिस चीज को हम आज हम राजनीति कहते हैं अथवा जिस अर्थ में यह शब्द बहुचर्चित है, उससे बहुत ही भिन्न थी वह चीज जिसे हम श्री अरविन्द की राजनीति कह सकते हैं। वैसे तो सामान्यतः उस समय की राजनीति ही भिन्न थी। परन्तु श्री अरविन्द ने उसे और भी दूसरे संकेतों से भर दिया था, उसे उन्होंने आध्यात्मिक प्रभा मंडल से बांध आदर्श के ऊंचे आसमान से इस प्रकार जड़ दिया था कि वह स्वयं अपने आप में एक दिव्य पूजा बन गयी थी। श्री अरविन्द ने प्रार्थना के स्वर में कहा था, "मातः दुर्गे, सिंह वाहिनी, सर्वशक्ति दायिनी मातः शिव प्रिये, तुम्हारे शक्त्यंश जात हम बंगाल के युवक गण तुम्हारे मंदिर में आसीन प्रार्थना करते हैं, सुन मातः उरबंग देश में प्रकाश हो।" इसका सारांश श्री अरविन्द यह बताता है कि भाषा उस समय की राजनीति से अलग थी। वह धीमी थी, मंत्र के समान वह गहराई में उतरती और जीवन को नये अभिप्राय से भर देती थी। श्री अरविन्द ने "इंडिपेंडेंस" का प्रयोग देश के राजनीतिक लक्ष्य के रूप में लिया जो "वंदे मातरम्" के माध्यम से फैलता रहा।

जीवन दर्शन

श्री अरविन्द का जन्म 15 अगस्त, 1872 ई. को (कोरनगर गांव जिला, हुगली) कलकत्ता में हुआ। उनके पिता का नाम श्रीयुत कृष्णधन घोष तथा माता का नाम श्रीमती स्वर्णलता देवी थी। श्रीयुत कृष्णधन घोष की शिक्षा अपनी दिशा में चरम कोटि की थी और वे अंग्रेजों के अति निकट सम्पर्क में थे। तत्कालीन युवकों के समान ही ये विलायती ढंग को बहुत पसंद करते थे और अंग्रेजियत के पूरे हिमायती थे। इनकी माता स्वर्णलता देवी की शिक्षा ब्रह्मसमाज के प्रभाव में हुई। श्री अरविन्द का जन्म एक ऐसे वायुमण्डल में हुआ जिसमें भारत और इंग्लैंड की जीवन धाराओं का पूरा-पूरा मिश्रण था। मातृपक्ष से भारतीय तत्व-प्रेम और अभिरुचि और पिता की ओर से अंग्रेजी संस्कार। श्री अरविन्द ने बंगला तब सीखी जब यूरोप के इतिहास सर्वांगीण ज्ञान वे प्राप्त कर चुके थे और ग्रीक तथा लैटिन साहित्य की ऊंची से ऊंची

उपलब्धियों का मर्म उन्होंने ढूँढ़ लिया था। देश के ज्ञान-मंदिर की पहली सीढ़ी पर तो उन्होंने पांव तब रखा जब पश्चिमी ज्ञान का संचित कोष उन्हें मिल चुका था।

श्री अरविन्द सात साल की उम्र में माता-पिता के साथ इंग्लैंड चले गए। वहां उनको मैन्चेस्टर के ड्रिफ्ट परिवार में रखा गया। श्रीमती ड्रिफ्ट, जो धार्मिक भावना की स्त्री थी और विदुषी थी, श्री अरविन्द को भूगोल, गणित, इतिहास, और फ्रेंच पढ़ाया करती थी। इसी दौरान श्री अरविन्द ने शेक्सपियर, शैली, कीट्स आदि कवि तथा बाइबल का अध्ययन किया। बाद में लंदन के सेंट पाल स्कूल से प्राचीन साहित्य का अध्ययन किया। 1889 ई. में किंग्स कॉलेज, कैम्ब्रिज से डिग्री लेने के बाद 1890 ई. में उन्होंने इंडियन सिविल सर्विस की खुली परीक्षा पास की, परन्तु इसके लिए जो घुड़सवारी की परीक्षा थी उसमें ये शामिल न हो सके और इस प्रकार अपने-आपके इसमें बरी करने में ये सफल हुए।

इंग्लैंड में 14 वर्ष बिताने के बाद 21 वर्ष की आयु में वे भारत आये। वे सुरक्षित 1893 ई. में 'कार्येज' जहाज से बम्बई पहुंचे। श्री अरविन्द ने भारत की सीमापर पांव ही रखा था कि एक वृहद शांति उन पर छा गयी। लौटते हुए बेटे के ऊपर भारत जननी के हाथ का, जिनके बारे में माता जी ने कहा था कि वह एक आध्यात्मिक सत्ता है, एक देवी है, भारतजननी सारे विश्व की जननी हैं—यह सुखद स्पर्श था। श्री अरविन्द इस शांति से बहुत काल तक धिरे रहे। इस समय एक दूसरी घटना भी घटी जिसका ध्यान हमें रखना चाहिए। अपने भीतर पश्चिम के बोध सूत्रों को बटोर श्री अरविन्द भारत भूमि पर तब पांव रख रहे थे जब भारत का शंखनाद पश्चिम के कानों में गूंजने वाला था। समुद्र के उस पार विवेकानन्द भारतीय ज्ञान का उद्घोष करने वाले थे।

समकालीन दर्शन

वर्तमान में हम देखते हैं कि जगत् में ऐसे लोग होते हैं जिनका जीवन सुखी और आराम देह होता है तथा दूसरी और ऐसे लोग हैं जिनका जीवन दुःखमय होता है। श्री अरविन्द इन्हीं सबालों का प्रत्युत्तर देते हैं कि अधिकतर लोग एक ऐसा जीवन चाहते हैं जिसे वे 'निविघ्न' कहते हैं, जिसे वे 'शांतिपूर्ण' कहते हैं। वे अपने निजी पैमाने के अन्दर एक छोटा सा संगठन चाहते हैं—जो साधारणतः अति सूक्ष्म होता है। उसका रूप सर्वदा लगभग एक ही प्रकार की क्रियाओं की एक नियमित दिनचर्या होता है, लगभग उन्हीं सीमाओं के अन्दर, प्रायः एक ही प्रकार की परिस्थितियों में जीना और उन सबको बिना अधिक फेर-फार के दोहराते रहना, पर्याप्त विविधता के साथ दोहराते रहना ताकि वह सब एक दम उकताने

वाला न बन जाए। परन्तु कोई ऐसी चीज न हो जो उस नियमित चक्कर को भंग करे जिसके कारण यह जीवन शांतिपूर्ण कहलाता है। अधिकतर मनुष्यों के लिए यही है आदर्श.....।

सामान्य आदर्श

सामान्यतः सबसे अधिक सामान्य आदर्श है एक ऐसे वातावरण में जन्म लेना जिसमें जीवन की बहुत-सी कठिनाइयों से बचा जा सके, किसी ऐसे से शादी करना जो तुम्हें बहुत तंग ना करे, ऐसे स्वस्थ बच्चों को जन्म देना जो सामान्यतः भली-भांति विकसित हो और कोई कष्ट न दें। निविघ्न, सुखी बुढ़ापा पाना जिसमें ज्यादा बीमारियाँ या कष्ट न हो और फिर जीवन से थक जाने पर या और कठिनाईयां न चाहते पर चल बसना। सचसुच यही सबसे ज्यादा प्रचलित आदर्श है। निस्सन्देह इसमें अपवाद भी होते हैं। कुछ लोग एकदम उल्टे भी हो सकते हैं लेकिन यह जीवन, जैसा कि लोग सोचते हैं, जरा एक रस होगा।

दो आदर्श विशेष रूप से पश्चिम में बहुत ज्यादा फैले हुए हैं और प्राण की प्रधानता को बहुत महत्व देते हैं। पहला है यह कि जीवन का मुख्य उद्देश्य है खुश रहना; दूसरा यह है कि व्यक्ति एक निश्चित चरित्र को लेकर पैदा होता है और उसे बदलना असंभव है। पहला विचार एक बहुत ही गहन सत्य की बचकानी विकृति है, कि सारी सृष्टि आनंद पर आधारित है और सत्ता के आनन्द के बिना जीवन ही न होगा। लेकिन यह सत्ता का आनंद भगवान् का गुण है और बिना शर्त होता है। इसका जीवन के उस सुख के साथ घाल-मेल न कर देना चाहिए जिसमें पीछे मनुष्य दौड़ते हैं, यह तो अधिकतर परिस्थितियों पर निर्भर होता है। यह विश्वास कि हमें सुखी रहने का अधिकार है, किसी भी कीमत पर "अपनी इच्छा के अनुसार" जीने की वृत्ति की ओर ले जाता है। यह वृत्ति अपने अंधेरे और आक्रामक अहंकार द्वारा हर प्रकार के संघर्ष दुःख, हताशा और निराशा की ओर ले जाती है जिसका अंत बहुदा महाविपत्ति में होता है। मानव जीवन का लक्ष्य है भगवान् को पाना और उन्हें अभिव्यक्त करना। स्वभावतः इस खोज से सुख मिलता है। परन्तु यह सुख अपने-आप में उद्देश्य नहीं परिणाम है। मानव जीवन के ऊपर जो दुःख दर्द छापे रहते हैं उनका कारण इसी तरह परिणाम को लक्ष्य मान बढ़ना होता है।

जो स्थायी, शाश्वत, अमर और अन्ततः हो, वस्तुतः वही पाने योग्य है, जीतने योग्य है, अधिकृत करने योग्य है। वह है 'दिव्य ज्योति', 'दिव्य प्रेम', 'दिव्य जीवन'—वह परम शांति, पूर्ण आनन्द और धरती पर 'पूर्ण प्रभुत्व' भी है और इसका मुकुट है 'पूर्ण भागवत अभिव्यक्ति'।

चेतना का विकास

श्री अरविन्द का लक्ष्य-चेतना का विकास है। पार्थिव जीवन प्रगति का स्थान है। यही पृथ्वी पर ही संभव है। चैत्य एक जीवन से दूसरे जीवन में स्वयं अपने विकास की व्यवस्था करके प्रगति से आगे ले जाता है। जिस क्षण तुम आगे बढ़ना बंद कर देते हो उसी क्षण नीचे गिर जाते हो। जिस क्षण तुम संतुष्ट हो जाते हो और आगे अभीप्सा नहीं करते, उसी क्षण मरना शुरू हो जाता है। जीवन गति है, वह एक प्रयास है, आगे की और अभियान है, भावी सिद्धियों के प्रति अभियान है। विश्राम करने की इच्छा करने से ज्यादा खतरनाक और कोई चीज नहीं है। कर्म में, प्रयास में, आगे की और अभियान के विश्राम पाया जाना चाहिए, सच्चा विश्राम भागवत कृपा पर पूर्ण विश्वास, कामनाओं का अभाव, अहंकार के ऊपर विजय है। यह जीवन उन सभी अनुभवों के द्वारा होता है जिनमें से चैत्य व्यक्तित्व पाता, बढ़ता, विकसित होता और अंत में एक पूर्ण, सचेतन और मुक्त सत्ता बन जाता है। चैत्य सत्ता के विकास के लिए आवश्यक शर्तें हैं एक महान अभीप्सा में रहना, सावधानी के साथ अन्दर से शांत रहना और जहां तक हो सके अपनी सत्ता को सभी क्रियाओं में सच्चाई और निष्कपटता को विकसित करना।

श्री अरविन्द मृत्यु के बारे में बताते हैं कि जड़-भौतिक चेतना में पूर्णता और प्रगति की आवश्यकता जगाने के लिए मृत्यु एक अनिवार्य साधन है। इसके बिना प्राणी जिस अवस्था में है उसी में अंततः काल तक संतुष्ट बने रहते। धरती के सभी प्राणियों के साथ मृत्यु तथ्य के रूप में लगी है। लेकिन प्रकृति ने उसे जो मौलिक अर्थ दिया था मनुष्य उसे उससे भिन्न अर्थ में समझता है। मनुष्य और स्तर के सबसे नजदीक के जानवरों में मृत्यु ने उनकी चेतना के लिए एक विशेष रूप और अर्थ ने लिया है। लेकिन इस निम्न प्रकृति में जो अवचेतन ज्ञान मृत्यु का सहारा देता है वह है नया बनाने, परिवर्तन करने और रूपांतर करने की आवश्यकता का भाव।

धरती पर जड़ पदार्थ की अवस्था ने ही मृत्यु को अनिवार्य बनाया है। जड़-पदार्थ के विकास का समस्त अभिप्राय है निश्चेतना के पहले स्तर से अधिकाधिक चेतना की ओर विकास।

प्राचीन व आधुनिक जीवन

प्राचीन काल में मानव जीवन ज्यादा सरल था, इसलिये मनुष्यों ने आदर्शों, रीति-रिवाजों अथवा धर्म द्वारा अपने जीवन को एक चौखटे में जड़ दिया, विधि-निषेध की तालिकाएं तैयार कर लीं और भिन्न-भिन्न श्रेणियों के लिये भिन्न-भिन्न स्तर पर नए विचार,

नई धारणाएँ, नयी क्षमताएं और नये तथ्य सामने आने लगे और उनमें आपस में किया-प्रतिक्रिया होने लगी। इनको ठीक रखने के लिये, उनमें तालमेल बिठाने के लिये किसी उच्चतर व्यक्तित्व की जरूरत है जिसमें ज्ञात और शक्ति दोनों हों, जो इन सब तत्वों को अपने दोनों हाथों में लेकर यथा स्थान बिठा सके। विज्ञान और बुद्धि हर चीज का विश्लेषण कर सकते हैं, परंतु इनमें संश्लेषण करने की क्षमता नहीं है, वे वस्तुओं के सच्चे मूल्य से अनभिज्ञ हैं, अतः उनकी बनायी हुई रेत की दीवार टिक नहीं पाती। हां, इस सब प्रयासों का यह लाभ अवश्य होता है कि मनुष्य को अधिकाधिक अनुभव होने लगता है कि एक सच्ची एकता, सच्चे परस्पर सहयोग और आंतरिक सामंजस्य की जरूरत है। इतना ही नहीं, उसका अस्तित्व और भविष्य, दोनों इसी पर निर्भर है।

आज के समाज में व्यक्तिगत स्वाधीनता की दुहाई तो खूब दी जाती है, परंतु साथ-ही-साथ व्यक्तिगत स्वाधीनता नामक चीज धीरे-धीरे उड़ती जा रही है। आजकल राज्य ने यह अनुभव करना शुरू किया है कि उसे समाज की शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिये और इस दृष्टि से वह व्यक्ति और समूह का भला करने की कोशिश भी कर रहा है। परंतु मुश्किल यह है कि मनुष्य को समाज और समूह की सहायता की आवश्यकता तो है, पर कुछ निश्चित सीमाओं में रहते हुए। राज्य एक मशीन है, वह सांचे में ढालकर एक जैसी चीजें बना सकता है, जिसमें मौलिकता और विविधता, बोध और लालित्य के लिये स्थान नहीं होता। इसलिये वह व्यक्ति के विकास में बाधक होता है। सचमुच उसे शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद व्यक्ति की स्वाधीनता पर हाथ न डालना चाहिये। शिक्षा का राष्ट्रीयकरण कैसे परिणाम ला सकता है, इसका कुछ आभास हमें मिल चुका है। मानव जाति की प्रकृति और उसकी नियति के अनुसार हर व्यक्ति को अपने ढंग से अपना मार्ग बनाते हुए पूर्णता की ओर बढ़ता है। जाति की सच्ची प्रगति के लिये यह आवश्यक है कि उसके व्यक्ति प्रगति करें। हमें यह न भूलना चाहिये कि हर व्यक्ति के अन्दर आत्मा है और हर आत्मा में मानव जाति की संभावनाएं छिपी हुई हैं। किसी शास्त्र, संस्कृति, या राज्य-व्यवस्था को यह अधिकार नहीं है कि वह यह बताये : “तुम्हें मेरे बताये हुए इस मार्ग से और इस सीमा तक प्रगति करनी है।” ये बातें कभी उसके मार्ग में सहायता देती हैं और कभी बाधक होती हैं। मनुष्य इनका उपयोग करके या इन्हें लांघकर आगे बढ़ता जायगा। आध्यात्मिक युग मनुष्य को मशीन में ढालकर पूर्ण बनाने की कोशिश करेगा और न उसके हाथ-पांव बांधकर उसे सीधा रखने की कोशिश करेगा। आध्यात्मिक युग में बाहरी नियंत्रण कम-से-कम होगा।

श्री अरविन्द अपने विचारों में समानता एवं भ्रातृत्व को भी उचित स्थान देते हुए कहते हैं कि अभी तक जिस समानता के स्वप्न लिये गये हैं वह एक कृत्रिम और अस्वाभाविक सी चीज है, भ्रातृभाव तो अभी आकाश-कुसुम ही बना हुआ है। लेकिन स्वाधीनता, समानता और भ्रातृभाव आत्मा के शाश्वत लक्षण हैं। श्री अरविन्द कहते हैं कि जब आत्मा स्वाधीनता की मांग करती है तो वह आत्म-विकास की स्वाधीनता है। ऐसी स्वाधीनता, जिस में मनुष्य के अन्दर उसके सब स्तरों में भगवान् पूरी तरह अभिव्यक्त हो सकें। जब वह समानता की मांग करती है तो वह चाहती है कि सबको इस तरह विकसित होने की आजादी हो, और सब के अंदर उसी एक परमात्मा की उपस्थिति को माना जाए और जाना जाए और जब वह भ्रातृभाव की मांग करती है तो वह स्वाधीनता और आत्मविकास को एक समान उद्देश्य, समान जीवन और मन की समानता की भित्तिपर खड़ा करती है। इसके पीछे यह ज्ञान काम करता है कि सबके अन्दर एक ही आत्म-तत्त्व है। सच्चे मानव विकास के लिए एक गहरा भ्रातृभाव अनिवार्य है, परंतु यह भ्रातृभाव मन या भावनाओं या पारस्परिक सुख-सुविधा के आधार न होकर सच्चे प्रेम के आधार पर खड़ा होगा। इसकी जड़ें आत्मा की गहराइयों में हैं।

हम जिन्हें स्वाधीनता, समानता या भ्रातृभाव समझते हैं वे तो उनका आभास मात्र हैं। आज हमारे अन्दर दासता, असमानता और द्वेष का राज्य है। जब ये चीजें अपने-आप से उकता जाती हैं तो अपने ही केंद्र के चारों ओर कलाबाजियां करने लगती हैं और हम इन्हीं कलाबाजियों को एकता आदि के नाम दे देते हैं। लेकिन सच्ची एकता और समानता तो तभी आयेगी जब मनुष्य भगवान् को पा लेगा और उसे अपने जीवन में, अपने भौतिक तत्त्व में ला सकेगा। भगवान् प्रकट होने के लिये तैयार हैं, पर उनकी परवाह न करके मनुष्य उनकी मूर्तियां बनाते हैं जो सचमुच हमारे अहं की ही मूर्तियां हैं। हम उन्हीं के चक्कर में फंसे रहते हैं, इसलिए असफलता हमारे गले पड़ती है।

निष्कर्ष

वर्तमान में भारत जिस धर्म और राजनीति में उलझा हुआ है तथा एक नाजुक दौर से गुजर रहा है, ऐसे समय में श्री अरविन्द के विचार

तथा उनकी अवधारणाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनके विचार आज भी इन सभी क्षेत्रों में प्रासंगिक हैं तथा उनकी उपयोगिता वर्तमान की सभी समस्याओं में निहित है। श्री अरविन्द के जीवन का लक्ष्य था-चेतना का विकास और इसकी प्राप्ति श्री अरविन्द द्वारा बताई गई सामान्य जीवन दर्शन द्वारा ही संभव है।

वर्तमान के भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है लेकिन अपने समाज एवं राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों के प्रति सजग नहीं है। अधिकारों के परस्पर विरोधी सिद्धांत पनप रहे हैं, किन्तु कर्तव्यों और दायित्वों के पालन के प्रति विशेष अभिरूचि का अभाव है। प्रत्येक व्यक्ति को कर्तव्य जागरूकता के ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अरविन्द का सामान्य जीवन दर्शन अत्यन्त उपयोगी एवं प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, छोटेंनारायण, श्री अरविन्द, नवज्योति कार्यालय, श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी, पृ. 28, 46 एवं 81
2. रविन्द्र, श्री अरविन्द : जीवन और दर्शन, श्री अरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी, पृ. 18, 22 एवं 83
3. नाडकर्णी मंगेश, सावित्री, श्री अरविन्द सोसायटी, 14 मोतीलाल नेहरू नगर, उज्जैन, मध्यप्रदेश पृ. 3 एवं 10
4. लाल, बसंत कुमार, समकालीन भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना पृ. 76
5. कौशिक, पं. विवेक, सम्पूर्ण योगशास्त्र, पवन पब्लिक बुक्स, 4537, दाईवाड़ा, नई सड़क दिल्ली
6. नारंग, प्रदीप एवं वंदना, अग्निशिखा, अखिल भारतीय पत्रिका, स्वाधीन चैटजी, पांडिचेरी, अंक फरवरी, 2018
7. नारंग, प्रदीप एवं वंदना, अग्निशिखा, अखिल भारतीय पत्रिका, स्वाधीन चैटजी, पांडिचेरी, अंक सितम्बर, 2017
8. राजस्थान पत्रिका, जयपुर अंक, 2000
9. अन्तिम परिवर्तन, 22 सितम्बर, 2014
10. दैनिक भास्कर, 16 अप्रैल 2018

चुनावों में मीडिया की भूमिका

राजेश चौधरी

राजनीति विज्ञान विभाग

जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)



शोध सारांश

चुनाव और मीडिया का संबंध को नया नहीं है। यह संबंध भारत में आजादी से पहले का है। जब मीडिया ने अपने सीमित साधनों के माध्यम से देश की जनता और राजनीतिक दलों में जागरूकता फैलाने का कार्य किया करता था। हालांकि समय-समय के साथ जिस प्रकार चुनावों में बदलाव आए हैं, उसी प्रकार मीडिया में भी अनेक प्रकार के बदलाव देखे गए। जैसे पहले प्रिंट मीडिया का जमाना था। इसके बाद देश में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का जमाना आया और अब जब मोबाइल हर व्यक्ति की पहुंच में आ गया है तो अब जमाना सोशल मीडिया का है। 2014 के आम चुनाव और इसके बाद हुए चुनावों में सोशल मीडिया ने जो भूमिका निभाई है। ऐसी भूमिका चुनावों में आज तक देखने को नहीं मिली।

संकेताक्षर : सोशल मीडिया, राजनीतिक सहभागिता, मीडिया की कार्यशैली, प्रेस की आजादी, राजनीतिक दल

वर्तमान में लोगों के जीवन में सोशल मीडिया इस प्रकार रच बस गया है कि उससे अलग होकर कुछ सोचना संभव नहीं लगता है। ऐसे में सोशल मीडिया के राजनीतिक प्रभाव से भी इंकार नहीं किया जा सकता है। हाल ही राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार में हुए उप चुनावों एवं 2014 से लेकर हाल ही में हुए चुनावों में सोशल मीडिया की भूमिका के महत्वपूर्ण होने को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। बल्कि हम कह सकते हैं कि चुनाव में राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों की हार जीत भी यही सोशल मीडिया तय कर रहा है और आगे भी करेगा। वैसे पिछले लोकसभा चुनाव में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की इमेज मेकिंग का एक बड़ा काम सोशल मीडिया ने ही किया था। अब पांच साल बाद में यह सोशल मीडिया कहीं ज्यादा विस्तृत हो गया है। इसलिए अनुमान लगाया जा सकता है कि कर्नाटक, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में इस साल के अंत में होने वाले विधानसभा चुनाव और 2019 का लोकसभा चुनाव में सोशल मीडिया क्या गुल खिलाएगा। अब सोशल मीडिया के कारण पार्टी और उम्मीदवार की अच्छाई और बुराई किसी से छुपी नहीं रह सकती है। वहीं भारतीय राजनीति के इतिहास में पहली बार सोशल मीडिया की चुनावी नतीजों पर छाप स्पष्ट नजर आ रही है।

वहीं राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश व बिहार में जो उप चुनाव हुए हैं इन उप चुनावों में भारतीय जनता पार्टी की बुरी तरह से हार हुई है, लेकिन इन हार के कारणों का विश्लेषण करे तो इसमें भी सोशल मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका सामने आई है। जिसके कारण इन उप चुनावों में भारतीय जनता पार्टी की हार हुई है। अगर हम दस साल पहले की बात करे तो किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि चुनाव प्रसार या किसी कार्यक्रम में अव्यवस्था की खबरें चंद मिनटों में सोशल मीडिया के जरिए लोगों तक पहुंच जाएंगी।

2014 से शुरू हुआ यह सफर

हमारे देश में सोशल मीडिया में चुनाव प्रचार का पहला प्रयोग लोकसभा चुनाव 2014 में शुरू हुआ। इस चुनाव में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को विकास पुरुष के रूप में प्रोजेक्ट करने में सोशल मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही। वहीं इसके बाद उत्तर प्रदेश में हुए विधानसभा चुनावों में योगी आदित्यनाथ सोशल मीडिया में अगल ही अंदाज में सामने आए। इसलिए अब हम कह सकते हैं कि अब वह समय आ गया है, जब चुनाव इंटरनेट पर लड़े जाएंगे। क्योंकि हमारे देश में फेसबुक यूजर्स की संख्या अब करोड़ों में पहुंच चुकी है। यही स्थिति व्हाट्सएप की भी है। इसके यूजर्स भी करोड़ों में हैं। वहीं लोगों की माने तो हमारे देश में ठेला चालक से

लेकर हर किसी के पास स्मार्ट फोन आसानी से देखने को मिल जाएगा। इसीलिए अमेरिका के बाद भारत फेसबुक और व्हाट्सएप का सबसे बड़ा बाजार बन गया है और यही कारण है कि अधिकांश राजनीतिक दल सोशल मीडिया पर अपने प्रचार में करोड़ों खर्च कर रहे हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि वे अपना पैसा पानी में नहीं डाल रहे हैं।

आज डैजल डिजिटल, ओगिल्वी एंड मैथर्स, वर्ल्ड ग्रुप और मेडीसन वर्ल्ड जैसी कंपनियां हैं जो पॉलिटिकल ब्रांडिंग के साथ चुनाव में किसी भी उम्मीदवार के चुनाव को प्रभावित करने की क्षमता रखती हैं। ये कंपनियां उम्मीदवार की अच्छाई सामने लाती हैं, जिससे वोटर्स के सामने उम्मीदवार की इमेज बनती है। जिसका असर वोटिंग में नजर आता है। अब अखबारों में छपे विज्ञापनों या होर्डिंग से लोग प्रभावित नहीं होते हैं। रोड शो या आम सभाएं भी वोटर की मन की स्थिति को वोट देने के मजबूर नहीं करती हैं। इसका सबसे बड़ा कारण नई पीढ़ी का वोटर न तो अखबार पढ़ता है और न ही टीवी देखकर अपना मानस बनाता है। उसकी जेब में रखा मोबाइल ही उसकी समझ को सही या गलत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस बार गुजरात चुनाव में भी सोशल मीडिया को नई दिशा दी। कैपेन, वायरल सेक्स सीडी कंटेंट और नेताओं के बयानों पर जॉर इस बार के गुजरात चुनाव का अहम हिस्सा रहे हैं। यह चुनाव इस बार जमीन से ज्यादा सोशल मीडिया पर लड़ा गया।

एक नजर भाजपा की डिजिटल ब्रिगेड पर

1. नमो नंबर- इसमें मतदाताओं को मतदाता सूची, मतदाता केन्द्र और मतदान दिवस की जानकारी मिल सकती थी।
2. वाट्स अप - मोदी को बढ़ावा देने वाले और कांग्रेस की काट करते हुए मैसेज भेजे जाते थे।
3. ई-मेल गठजोड़ - बल्क में लोगों को मेल भेजे जाते थे कि मोदी कहां रैली करने वाले हैं और उन्होंने रैली में क्या कहा।
4. सोशल मीडिया - नरेन्द्र मोदी सहित बीजेपी के वरिष्ठ नेताओं द्वारा विश्लेषण पोस्ट भेजी जाती थी। जिसमें सम सामायिक मुद्दों पर राय बनाने की कोशिश की जाती थी।
5. इंडिया 272- इस वेबसाइट के संचालक थे राजेश जैन और साइट के जरिए उन स्वयंसेवियों की भर्ती की जाती थी जो मोदी और उनके संदेश के प्रचार के लिए काम करना चाहते थे।
6. नमो जैक - ये एक प्रतीकात्मक प्रयास था और इसमें नरेन्द्र मोदी का पोर्ट्रेट बनाने के लिए समर्थकों से फोटो आमंत्रित किए जाते थे।

भाजपा के लिए भारी पड़ा उसी का हथियार

जिस सोशल मीडिया ने चार साल पहले प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को राजनीति के शिखर पर बैठाया था। इन दिनों सोशल मीडिया में चल रही जुमलेबाजी में उसी मोदी सरकार की नीतियों और काम की जमकर खिंचाई हो रही है। भाजपा को सोशल मीडिया का अच्छा खिलाड़ी माना जाता है, लेकिन अब पार्टी के लिए सोशल मीडिया को हैंडल करना मुश्किल हो रहा है। ऐसी ही स्थिति राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, हरियाणा आदि राज्यों में भी है। जहां सरकार और पार्टी पर लगातार हमले हो रहे हैं। पार्टी को चिंता है कि उसकी बिगड़ी छवि देश के अन्य राज्यों में होने वाले विधानसभा चुनावों पर भी असर डाल सकती है। क्योंकि 2018 में कर्नाटक, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि विधानसभाओं में चुनाव होने वाले हैं। इन चुनाव में सोशल मीडिया क्या नया रंग दिखाएगी यह तो वक्त ही बताएगा, लेकिन चुनाव में सोशल मीडिया भारत में नया प्रयोग है।

द बिग कनेक्ट : पॉलिटिक्स इन द एज ऑफ सोशल मीडिया की लेखिका शैली चौपड़ा कहती है कि सोशल मीडिया का योगदान ये है कि इसने राजनीति की चर्चा को सेक्सी बना दिया। सोशल मीडिया राजनीति, मार्केटिंग और ब्रांड स्ट्रेटजी के अंग है। राजनीतिक दलों के लिए यह जरूरी हो गया है कि वे अपनी ऑनलाइन उपस्थिति को मजबूत करें। जिससे वे अपने बारे में प्रचार कर सकें और राजनीतिक ब्रांड का निर्माण कर सकें।

आम आदमी पार्टी (आप) के बारे में तो कहा जा सकता है कि उसका असाधारण उभार एक तरह से सोशल मीडिया की ही पैदाइश थी। हालांकि टेलीविजन ने भी उसे सींचा है। सोशल मीडिया पर लगातार आलेख, सेल्फी, फोटोग्राफ और वीडियो अपलोड कर बीजेपी ही नहीं आम आदमी पार्टी ने भी माहिरी से अपने पक्ष में ऑनलाइन मीडिया का इस्तेमाल किया।

अनुमान के अनुसार 2014 में भारत के लोकसभा चुनावों में राजनीतिक पार्टियों के प्रचार के कुल चार हजार से पांच हजार करोड़ रुपये के बजट में डिजिटल मीडिया पर कम से कम पांच सौ करोड़ तो खर्च किए ही गए थे। चुनाव में सोशल मीडिया के इस्तेमाल पर भारत के मुख्य निर्वाचन आयोग को दिशा-निर्देश जारी करने पड़ गए। राजनैतिक दलों से कहा किया कि वो इंटरनेट पर अपने खातों और खर्चों को सार्वजनिक करें।

अपने निर्देश में चुनाव आयोग ने पांच विभिन्न प्रकार के सोशल मीडिया की पहचान की

1. विकीपीडिया- सहयोगपूर्ण प्रोजेक्ट
2. ट्विटर- ब्लॉग और माइक्रोब्लॉग्स

3. यूट्यूब- कंटेन्ट समुदाय
4. फेसबुक- सोशल नेटवर्किंग साइटें
5. एप्लीकेशन- वर्चुअल गेम्स

सोशल मीडिया पर कुछ सवाल

इन चुनावों में इंटरनेट के इस्तेमाल के मद्देनजर कई सवाल प्रासंगिक हो उठते हैं। वे कौन से कारण थे जिन्होंने राजनैतिक दलों को सोशल स्पेस की ओर आकर्षित किया। क्या इंटरनेट हमें एक नये किस्म के लोकतंत्र का विकल्प देता है या यहां भी प्रभु वर्ग का ही कब्जा है और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां इसे सीमित करती हैं। क्या इंटरनेट पर मुक्त स्थान पूर्व नियोजित एजेंडे को ही प्रोत्साहित करने का माध्यम है या ये वास्तव में ही राजनीतिक विचारों और मतों के स्वतंत्र विमर्श का मंच है। क्या इंटरनेट की बढ़ती उपयोगिता ने मतदाताओं को रूझान और मतदान के तरीकों को भी प्रभावित किया है।

सोशल मीडिया एक नया वोटिंग ब्लॉक के रूप में

15 अप्रैल 2014 को अरविंद केजरीवाल ने एक ट्वीट किया कि राहुल और मोदी से लड़ने के लिए ईमानदार पैसा चाहिए। दो दिन में आप नेता की इस अपील पर एक करोड़ रुपए जमा हो गए। चुनावों में सोशल मीडिया के उपयोग का ये एक असाधारण उदाहरण मिलता है।

81 करोड़ चालीस लाख मतदाताओं में माना है कि 20 करोड़ इंटरनेट को एक्सेस कर सकते हैं। वहीं करीब 10 करोड़ फेसबुक और ट्विटर जैसे सोशल साइट्स पर सक्रिय हैं। 18 से 22 साल की उम्र के करीब दस करोड़ मतदाता थे जो पहली बार वोट डाल रहे थे। 2009 के चुनावों में 543 सीटों में से 54 सीटों पर वोट का अंतर 10 हजार से भी कम था। चुनाव प्रचार एजेंसियां इन सीटों के युवा मतदाताओं को लक्षित करने की कोशिश में थी। आंतरिक और थर्ड पार्टी के अध्ययनों के अनुसार 543 में से करीब 160 सीटों पर हार जीत सोशल मीडिया से प्रभावित हो सकती थी।

सोशल मीडिया करता है ध्रुवीकरण में मदद

अमेरिका की शिकागो यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर मैथ्यू जेंटकोव ने जानेमाने अर्थशास्त्री जेस शैपिरो के साथ मिलकर एक अध्ययन किया और यह जानने के लिए की क्या डिजिटल मीडिया ध्रुवीकरण में कितना मदद करता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि उन्होंने पाया कि परंपरागत मुख्यधारा के माध्यमों की तुलना में इंटरनेट ज्यादा तेजी से ध्रुवीकरण करता है। इस तरह से तकनीकी राजनैतिक ध्रुवीकरण में मददगार है।

माइक्रो ब्लॉगिंग साइट ट्विटर जिसने लोगों के संचार का तरीका ही बदल दिया। उसके सह संस्थापक और 'थिंग्स ए लिटिल बर्ड टोल्ड मी' के लेखक बिज स्टोन कहते हैं कि माध्यम को हमेशा ही तटस्थ रहना चाहिए। भारतीय चुनावों में सोशल मीडिया के इस्तेमाल पर उनका कहना है कि ट्विटर जोड़ता है लेकिन यदि बहुमत इस पर कब्जा जमा ले तो ये विभाजनकारी भी हो सकता है। इंटरनेट पर जितना अधिक आपकी संख्या है उतना ही अधिक ऊंची आपकी आवाज है। दूसरे शब्दों में कहें कि जिसकी लाठी उसकी भैंस। लेकिन ये भी सच है कि अगर सोशल मीडिया न होता तो ये किसी और माध्यम के जरिए ध्रुवीकरण होता। इसके प्रति नजरिया ये होना चाहिए कि तटस्थ तरीके से सच्चाई और उम्मीद से इसको नियमित करना और इसका सामना करना चाहिए।

5 मई 2014 को 'द हिन्दू' अखबार में अपने साप्ताहिक कॉलम में ए एस पन्नीरसेवन ने इंटरनेट पर ध्रुवीकरण की चर्चा करते हुए ब्रिटिश लेखिका हिलेरी मैटल का उदाहरण दिया था। वो लिखते हैं कि इंटरनेट पर ध्रुवीकरण का शिकार होने वाली हिलेरी मैटल अकेली नहीं हैं। हिलेरी ने ब्रिटिश न्यूजियम में वहां की राजशाही के कमोडिफिकेशन पर एक व्याख्यान दिया था। जिसे बाद में लंदन रिव्यू ऑफ बुक्स में भी प्रकाशित किया गया था। कुछ ही समय में उनके खिलाफ विषाक्त प्रचार और कुतर्कों की बाढ़ आ गई।

निष्कर्ष

वे कारण जिनके कारण राजनीतिक दल सोशल मीडिया की ओर आकर्षित हुए-सोशल मीडिया राजनीतिज्ञों और राजनीतिक दलों को संभावित मतदाताओं के साथ निजी संवाद कायम करने का अवसर देता है। ये राजनीतिज्ञों को नागरिकों के नजदीक अत्यंत तेजी और लक्षित तरीके से मास मीडिया के किसी माध्यम और हस्तक्षेप के बगैर सीधी पहुंच का अवसर देता है। इसी तरह से मतदाताओं को भी दलों और नेताओं के समीप लाता है। मतदाता और राजनीतिज्ञों के बीच नया आधार बनाता है। ऑनलाइन प्रतिक्रियाएं, फीडबैक, वार्ता और विमर्श तो होते ही हैं। वे ऑफलाइन गतिविधियों और घटनाओं के लिए भी आधार प्रधान करते हैं। निजी नेटवर्क पर पोस्ट किए गए संदेश गुणात्मक रूप से बढ़ जाते हैं जब उन्हें साझा किया जाता है।

राजनीतिक दल और नेता अब अपनी बात रखने के लिए मुख्यधारा के मीडिया के गेटकीपर्स और उनके न्यूज लॉजिक का मोहताज नहीं रह गए थे। मुख्यधारा के मीडिया के एजेंडा और जिस मीडिया पर्यावरण को अब संदिग्ध और पूर्वाग्रहस्त माना जाने लगा है। उसमें सोशल मीडिया का ताजा लहर के समान थे। जिसके जरिए वो टेक

प्रेमी उस युवा मतदाता तक पहुंचाने लगा जो पुराने अनुभवों के बोझ तले नहीं दबा हुआ था।

सन्दर्भ सूची

1. द न्यू इंडियन एक्सप्रेस, मई 2014
2. एफ़ैक्स डॉट कॉम, 8 मई 2014
3. चौपड़ा, शैली, द बिग कनेक्ट : पॉलिटिक्स इन द एज ऑफ सोशल मीडिया, रेण्डम हाउस इंडिया, 2014
4. न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी में सोशल मीडिया और राजनैतिक भागीदारी पर हुए सेमिनार के अंश, 10 व 11 मई 2013
5. रंगनाथन, माया, द हुट डॉट ओर्ग, 1 अप्रैल 2014
6. इंटरनेट ऐंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया और इंडिपेंडेंट आयरिस फाउंडेशनल की रिपोर्ट, 2014
7. वॉशिंगटन पोस्ट, 25 अप्रैल 2014
8. इंडिया टुडे, 5 मई 2014
9. द हिन्दू, 5 मई 2014

राजस्थान के आदिवासी युवाओं में शिक्षा एवं मूल्य परिवर्तन



दीपाली भार्गव

सह आचार्य, समाजशास्त्र

आयुक्तालय, कॉलेज शिक्षा राजस्थान, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

लेख में आदिवासी छात्र-छात्राओं में शिक्षा के माध्यम से उनके सामाजिक परिवेश और परिवार, विवाह जैसी सामाजिक संस्थाओं में हो रहे रूपान्तरणों की चर्चा है। आदिवासी मूल्यों, मानकों, तथ्यों एवं विश्वासों में हो रहे रूपान्तरणों को इस लेख में विशेष रूप से वर्णित किया गया है। शिक्षा इन समूहों में रूपान्तरण की एक बड़ी शक्ति रही है। इन नए रूपान्तरणों ने उनमें आधुनिक तत्वों का समावेश कर दिया है जो उनके विश्वासों एवं मूल्यों में पहले स्थित नहीं था।

संकेताक्षर : मूल्य परिवर्तन, आदिवासी युवा, पीढ़ीगत भेद, समाजीकरण

आदिवासी संस्थाओं की अपनी विशेषताएं एवं दशाएं रही हैं। आदिवासी समाजों में परिवर्तन पर हुए अध्ययन यह बताते हैं कि परिवर्तन की कई शक्तियों ने उनकी संस्थाओं पर प्रभाव डाला है। सामाजिक परिवर्तन एक व्यापक तथा अवश्यभावी प्रक्रिया है। परिवर्तन प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान पर होता रहता है। आधुनिक जीवन सामाजिक परिवर्तनों से पूर्ण है। परिवर्तन मनुष्य जीवन का एक भाग ही बन गया है। विभिन्न सामाजिक संस्थाएं भी इन परिवर्तनों से प्रभावित हुई हैं और उनके स्वरूप भी बदले हैं, जिसे संस्थागत रूपान्तरण के रूप में देखा जा सकता है। संस्थागत रूपान्तरण से अभिप्राय है कि संस्थाओं के कुछ मूल्यों एवं मानकों में बदलाव है, किन्तु साथ ही आधारभूत विशेषताएं भी मौजूद हैं। इस लेख के उद्देश्य के अनुसार रूपान्तरण का अर्थ है सामाजिक परिवर्तन की वह दिशा जो संस्थाओं के पारम्परिक एवं प्रचलित अर्थों को बदलती है। संस्थागत उद्देश्यों एवं प्रघटनाओं को देखने का यह नया तरीका है। इसका यह भी अर्थ है कि संस्थागत व्यवहारों एवं स्वरूपों में परिवर्तन आया है।

रूपान्तरण की प्रक्रिया

भारतीय समाज में भी विभिन्न परम्पराओं के अपने-अपने रूपान्तरण हैं। यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो ऐसे रूपान्तरण अलग-अलग दिखाई दे सकते हैं (स्पाहन, 1966)। रूपान्तरण की सारी प्रक्रिया को समझने के लिए चार स्पष्टीकरण आवश्यक

हैं। पहला, सूक्ष्म (Micro) स्तर पर होने वाले परिवर्तनों के सूत्र वृहद् (Macro) आधारों में निहित होते हैं अर्थात् निम्न स्तर पर जो परिवर्तन हमें दिखाई देते हैं उनके सूत्र वृहद् स्तर पर हो रहे आधारों के साथ जोड़े जा सकते हैं। दूसरे, अब जो सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं, वे आधुनिकीकरण के रूप में अधिक हैं और अब आधुनिकीकरण विश्वव्यापी है। सारे रूपान्तरण इस प्रकार आधुनिकीकरण और विश्वव्यापी परिवर्तनों के साथ जुड़े हुए हैं। तीसरे, रूपान्तरण की यह प्रक्रिया विश्वव्यापी होने के नाते नई सामाजिक आकृतियों के निर्माण में लगी हुई है। हर जगह की अपनी परम्पराएं हैं और यह आवश्यक नहीं कि ये परम्पराएं सभी जगह एक सी हों। इसीलिए एक ही समाज में रूपान्तरण के अलग-अलग रूप दिखाई पड़ सकते हैं। चौथे, इसलिए इन निर्मित आकृतियों की तुलनात्मक विवेचना की जा सकती है।

आधुनिक भारत में शिक्षा परिवर्तन एवं रूपान्तरणों के लिये एक बड़ी शक्ति है। भारत की स्वतंत्रता से पहले ही इस बात पर जोर दिया जाने लगा था कि स्वतंत्रता के बाद देश की शिक्षा की स्थिति सुधारी जाएगी। गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा की नींव डाली थी। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा प्रसार के लिये बड़ी योजनाएं लागू की गईं। अभी हाल में स्थापित 'शिक्षा का अधिकार' संविधान द्वारा भारत के नागरिकों को दिया गया एक ऐसा ही अधिकार है जिससे यह आशा की जाती है कि वंचित तथा गरीब लोग भी शिक्षा प्राप्त

कर सकेंगे। किसी भी देश के विकास के लिये शिक्षा इसलिये भी आवश्यक है, जिससे गुणात्मक जनशक्ति विकसित हो सके और उसे राष्ट्र कल्याण के साथ जोड़ा जा सके।

शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

आदिवासियों के लिये शिक्षा के अपने दृष्टिकोण हैं। यह विश्वास किया जाता है कि आदिवासियों को आर्थिक दृष्टि से बढ़ाना चाहिये और उनकी अपनी संपन्नता तथा प्रगति के लिये उन्हें शिक्षित करना आवश्यक है। प्रायः यह कहा गया है कि आदिवासियों को अपने ही परिवेश में रहने देना चाहिये ताकि वे अपने जीवन को अपने ढंग से जी सकें। यही उनके लिये उचित व्यवस्था होगी (एल्विन, 1944)। लेकिन दूसरी ओर एक मत यह रहा है कि आदिवासियों को समाज के दूसरे हिस्सों के साथ पूर्ण आत्मसात कर देना चाहिये (घुर्ये, 1959)।

आदिवासी समाज में शिक्षा का उनके जीवन से सीधा सम्बन्ध है। इसी सम्बन्ध के कारण वे शिक्षा की अपने जीवन में उपादेयता समझ पाते हैं। उच्च शिक्षा और औद्योगिकी शिक्षा का आदिवासियों के लिये महत्त्व है। मानसिकता या वैचारिक परिवर्तनों की एक श्रृंखला इससे तैयार हो सकती है लेकिन इसके लिये आदिवासी जीवन को शिक्षा के साथ जोड़ना पड़ेगा (भट्टाचार्य, 1959)।

वैसे भी आदिवासियों को साधारण समाज से संबोधित किया गया है। सभ्य जटिल समाजों के विपरीत आदिवासी समाज में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध हैं, एकाकार सम्बन्ध हैं तथा पुरातन आर्थिक आधार है। मानवशास्त्रियों ने आदिवासी समाजों के कई पक्षों की चर्चा की है। यह बात जरूर है कि साधारण से साधारण आदिवासी समाज असमानता से छूटा हुआ नहीं है। यह बात दूसरी है कि हम उन्हें अपने हिसाब से आंकना शुरू करते हैं और उनकी समीक्षा करते हैं (सिंह, 1995) लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं कि आदिवासी समाज में परिवर्तन नहीं हो रहा। धीरे-धीरे आदिवासी समाजों में अभिजन वर्ग तैयार हो रहा है (दोषी, 1986)। विकास प्रक्रियाओं के कारण एक किसानी और मध्यम वर्ग पैदा हुआ है (शाह, 1984)। ऐसे ही बहुत से परितर्वन मानवशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने अंकित किये हैं।

आदिवासी समाजों में शिक्षा का प्रसार हुआ है। विशेष रूप से लड़कियों ने उच्च शिक्षा में प्रवेश किया है। पूर्व उद्धृत दोषी के तथ्यों को यदि स्वीकार करें तो उच्च शिक्षा के माध्यम से अभिजन वर्ग या वर्ग जैसी परिस्थितियां पैदा हुई हैं। यह संभावित है कि लड़कियों की उच्च शिक्षा ने उनकी अपनी मान्यताओं को प्रभावित किया हो, विशेष रूप से उन संस्थाओं के सम्बन्ध में तथा उनके

अपने जीवन के भविष्य के संदर्भ में, जिसके बारे में उनकी कल्पनाएं हैं। यह पहले कहा जा चुका है कि वृहद् स्तर पर हो रहे उद्देश्यों के प्रभाव निम्न स्तर के साथ जुड़े रहते हैं। निश्चित ही इनका असर मूल्यों और मान्यताओं पर पड़ता है।

राजस्थान में बहुत से आदिवासी छात्र-छात्राएं उच्च शिक्षा के लिये महाविद्यालयों के छात्रावासों में रहते हैं। महाविद्यालय और छात्रावास उन्हें शेष समाज के साथ संपर्क भी स्थापित कराते हैं। प्रश्न यह है कि क्या उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्र-छात्राओं में, जिन संस्थाओं से भी वे जुड़े हैं, उनके प्रति किसी रूपान्तरण की प्रक्रिया है? किन नये मूल्यों को वे जन्म दे रहे हैं? इस लेख में प्रयुक्त तथ्यों का संकलन महाविद्यालय स्तर पर अध्ययनरत, छात्रावासों में निवास कर रहे आदिवासी छात्र-छात्राओं के माध्यम से किया गया है।

परिवार

परिवार सभी समाजों की प्राथमिक इकाई है। मनुष्य का जन्म और समाजीकरण परिवार में ही होता है। दक्षिण राजस्थान का आदिवासी परिवार सामान्यतः सभ्य समाजों के संयुक्त परिवार जैसा नहीं है। जैसे ही वयस्कता प्राप्त होती है, विवाहित दम्पति को अलग कर दिया जाता है और वह अलग घर में रहता है। यहीं पर सम्पत्ति का विभाजन हो जाता है। परिवार के विवादों का फैसला गांव के लोग करते हैं। पति और पत्नी के बीच विवाद की स्थिति में भी हस्तक्षेप गांव के पारंपरिक नेतृत्व से ही आता है। भील, गरासिया और डामोर सभी आदिवासी व्यवस्थाओं में यही क्रम प्रचलित है (दोषी, 1992)। परिवार में उपलब्ध नये मूल्यों में लिंग सम्बन्धी नैतिकता रूपान्तरित हो रही है। भौतिकवादी एवं व्यक्तिवादी दर्शन का प्रभाव बढ़ रहा है। प्रेम में स्वतंत्रता, व्यक्तिगत आनन्द एवं प्रयोगात्मक विवाह आदि नये दर्शन परिवार को अनेक प्रकार से प्रभावित कर रहे हैं। इसी संदर्भ में जब युवा आदिवासी छात्राओं से बात की गयी तो कई तथ्य सामने आए। अधिकांश आदिवासी छात्र-छात्राएं मानते हैं कि वर्तमान में परिवार संस्था में संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक दोनों ही प्रकार के रूपान्तरण हो रहे हैं। पूर्व में परिवार की स्थापना कुछ प्रकार्यों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हुई थी लेकिन वर्तमान में इसकी संरचना भी रूपान्तरित हो रही है और प्रकार्य भी। असल में आदिवासी समाज के अन्य समाजों के साथ संपर्कों ने सोच को बदला है। पहले परिवार एक ही व्यवसाय में संलग्न था पर शिक्षा के प्रसार के साथ परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग व्यवसाय चुनना चाहता है और व्यवसाय करता है। उच्च शिक्षा के बाद

लड़कियां शिक्षा बनना चाहती है। बच्चों की शिक्षा, लालन-पालन तथा उनके समाजीकरण की प्रक्रिया भी बदली है।

आज विशेषीकरण का युग है। छात्र-छात्राएं इस परिवर्तन के लिये शिक्षा, टेलीविजन, पश्चिमीकरण एवं व्यक्ति की आकांक्षाओं में वृद्धि आदि अनेक कारणों को जिम्मेदार मानती हैं।

सारणी 1. परिवर्तन के सम्बन्ध में छात्र-छात्राओं का अभिमत

कुल प्रतिशत	संख्या		कुल प्रतिशत
	छात्र	छात्राएँ	
Gka	43	40	83.00
Ugha	7	10	17.00
योग	50	50	100.00

छात्राओं द्वारा प्राप्त जानकारी में यह भी पाया गया है कि उनके अपने परिवार में भी पीढ़ीगत भेद को महसूस किया जा रहा है। इस भेद का मुख्य कारण इन छात्राओं ने शिक्षा को माना। आज शिक्षा स्तर पिछले कई वर्षों से बढ़ रहा है तथा शिक्षा में विस्तार से सोच में भी बदलाव आ रहा है। शिक्षित युवा वर्ग सामाजिक एवं पारिवारिक बन्धनों में परिवर्तन चाहता है। इस कारण से पीढ़ीगत भेद बढ़ रहा है। यही तनाव का भी कारण बन रहा है। प्रौढ़ एवं वृद्ध पीढ़ी मूल्यों में परिवर्तन नहीं करना चाहती तथा शिक्षित युवा तार्किक दृष्टिकोण से मूल्यों को बदलना चाहता है।

आदिवासी परिवारों की अपनी संरचनाएं हैं, जिनकी अन्य समाजों से तुलना नहीं की जा सकती। राजस्थान के जिन क्षेत्रों से छात्र-छात्राएं अध्ययन करने आते हैं उनका सामाजिक परिवेश उस क्षेत्र के जाति परिवेश से अलग है। आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा का विस्तार हुआ है और धीरे-धीरे इन क्षेत्रों में भी शिक्षित युवा छात्र-छात्राओं की संख्या बढ़ने लगी है। परिवार जैसी संस्था में मूल्य, भूमिका एवं उनकी प्रस्थिति का परिवर्तन एक नया परिवर्तन है। आधुनिक मूल्यों का रूपान्तरण इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसी सम्पर्क ने परिवार में नये मूल्यों को भी प्रवेश करा दिया है। आदिवासी परिवारों में सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को अवश्य प्रभावित करेंगे।

विवाह

आदिवासी विवाह का सम्बन्ध जवानी और वयस्कता प्राप्त करने से सम्बन्धित है। राजस्थान के आदिवासियों में विवाह का दर्शन अन्य समाजों जैसा नहीं है। हिन्दू-विवाह एक पवित्र बन्धन है जिसे तोड़ना अच्छा नहीं समझा जाता। मुस्लिम विवाह एक समझौता है। आदिवासी विवाह में ऐसे किसी दर्शन का समावेश नहीं है।

कृषि परिवारों की तरह आदिवासी परिवारों को श्रमिक चाहिये और इसकी पूर्ति विवाह से होती है। विवाह या तो नियमित विवाह है या भाग कर किया हुआ है। प्रत्येक आदिवासी के लिये विवाह करना अनिवार्य है। यदि विवाह नहीं होता है तो उसकी बदनामी है। विवाह तोड़ना आसान है। नाता, वधू-मूल्य की प्रथा है जो परिवार की प्रस्थिति के अनुसार तय होती है। गैर-आदिवासी के साथ विवाह सम्बन्धों की कोई प्रथा नहीं है (दोषी, 1992)।

वर्तमान में प्रजातंत्र और आधुनिकता के संदर्भ में विवाह की बुनियादी संरचना में भी रूपान्तरण हुआ है। स्वतंत्र भारत में शिक्षा के प्रसार, रोजगार के नये अवसर, नगरीकरण, विवाह उत्तरदायित्व एवं कुप्रथा विरोधी कानूनों के प्रभाव के कारण भारतीय समाज में महिलाओं की परम्परागत स्थिति में व्यापक बदलाव आया है। अध्ययित छात्राएँ की मान्यता कुछ निम्न प्रकार की है-

सारणी 2. विवाह में आ रहे परिवर्तनों के प्रति विचार

परिवर्तन	संख्या	प्रतिशत
अस्थिरता	29	29.00
स्वतंत्रता	23	23.00
परम्पराओं की कमी	48	48.00
योग	100	100.00

यद्यपि आदिवासी विवाह की मूल संरचना नहीं बदली है पर पढ़ी-लिखी युवतियों की प्राथमिकता पढ़े-लिखे युवकों की हो गई है। वैसे भी भावी जीवन साथी शिक्षित हो, ऐसी भावना बलवती हुई है। दापा विवाह का प्रचलन भी है। यह आदिवासीयों में होने वाला प्रेम विवाह ही है। इस विवाह में लड़की, लड़के के घर पर भागकर आ जाती है और लड़के के घर वाले उसका विवाह खेत में जाकर करते हैं। इस विवाह में लड़के द्वारा लड़की के घर वालों को कुछ धन भी देना पड़ता है जिसे दण्ड कहा जाता है। आदिवासी में पति-पत्नी के बीच बार-बार मतभेद होने पर पंचों द्वारा मामले को सुलझाया जाता है। पंचों द्वारा कुछ शर्तें लिखी जाती है तथा दोनों पक्षों को समझाया जाता है। उनसे शर्तों के पालन करने की अपेक्षा की जाती है। यदि वे इन शर्तों का पालन नहीं करते हैं तो तीन बार ऐसा न करने पर उनके बीच सम्बन्ध विच्छेद माना जाता है। वर्तमान में इन आदिवासियों में भी तलाक की दर बढ़ी है। आदिवासियों में पुनर्विवाह का भी प्रचलन है। लड़के एवं लड़की दोनों को ही पुनर्विवाह करने की स्वतंत्रता है।

विवाह के मूल्यों में परिवर्तन का एक परिणाम लड़कियों के लिये उपयुक्त साथी के अभाव के रूप में देखने में आया है। खासतौर से लड़कियों में शिक्षा का बढ़ना और लड़कों में शिक्षा का न होना एक

विसंगति पैदा कर रहा है। लड़कियों की आकांक्षा शिक्षित लड़कों की आकांक्षा और शिक्षित लड़कों की शिक्षित लड़कियों की बन रही है। आज से कुछ वर्षों पूर्व यह विसंगति नहीं थी। पर अब यह प्रचलन में देखा जा रहा है।

आजीविका

आज का युग आर्थिक प्रतिस्पर्धा का युग है। वही व्यक्ति सफल माना जाता है जो आर्थिक रूप से सुदृढ़ है। आज आदिवासी समुदाय भी शिक्षा के क्षेत्र में जागरूक हो गया है। विभिन्न सरकारी योजनाओं का लाभ लेकर यह समुदाय भी अपने बच्चों को शिक्षित करने में रूचि लेने लगा है। जिससे इस समुदाय में भी साक्षरता दर बढ़ी है। तकनीकी विकास एवं प्रतिस्पर्द्धा ने युवाओं के समक्ष कैरियर को बहुत बड़ी चुनौती बना दिया है। आज युवा शीघ्रताशीघ्र सफलता चाहता है तथा ऐसा कैरियर चुनना चाहता है, जिससे उसे पैसा बहुत प्राप्त हो।

शिक्षा के बाद ये छात्र-छात्राएं एक कैरियर चाहते हैं, जो पहले की अवस्था से भिन्न है। आरक्षण का लाभ उन्हें मिला है और जो लाभ सरकार ने उन्हें दिये हैं, उन्हीं के अंतर्गत वे शिक्षा के इस स्तर तक पहुंचे हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि शिक्षा का एक अर्थ वे दरवाजे खोलना है, जो अशिक्षा के कारण उनके लिये अब तक बन्द थे।

सारणी 3. छात्र-छात्राओं द्वारा व्यवसायों का चयन

व्यवसाय	संख्या	कुल प्रतिशत
स्वयं का व्यवसाय	3	06
कॉर्पोरेट सेक्टर	5	07
सरकारी सेवा	26	11
कोई भी सेवा	16	26
योग	50	50
		100.00

आरक्षण ने पहले की व्यवस्था में एक बड़ा रूपान्तरण किया है। यह एक संवैधानिक व्यवस्था है जिसका प्रयोग व्यापक है। छात्राएं कैरियर निर्माण में इसे बड़ी सहायता मानती हैं। राजनीति, संसद, विधान सभा एवं पंचायतों में भी नेतृत्व करने के विशेष अवसर इन्हें प्राप्त हुए हैं। विभिन्न सरकारी योजनाओं ने भी उनमें जागरूकता लाने में महत्ती भूमिका निभायी है। आदिवासी समाज में परम्परागत व्यवसायों के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों के दरवाजे इससे खुले हैं, जो कि एक महत्वपूर्ण रूपान्तरण है। इस रूपान्तरण में भी शिक्षा का बहुत बड़ा हाथ है।

निष्कर्ष

बाह्य संपर्क किसी भी समाज में रूपान्तरण की प्रक्रिया स्थापित कर सकता है। आदिवासियों के परिवर्तन की सारी योजनाएं वृहद्

स्तर पर तैयार की गई योजनाओं से सम्बन्धित हैं। आदिवासी समाज के लिये यह सब कुछ नई प्रवृत्तियों का जन्म है। उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे इन युवाओं में परिवर्तन की ओर झुकाव, विशेष रूप से, शिक्षित लोगों का झुकाव एक नई परिस्थिति है। इसके कई परिणाम संभव हैं। जैसे संस्थाएं आधुनिक मूल्यों के अनुसार रूपान्तरित होने लगे। दूसरा, यह वर्ग आधुनिक व्यवसायों का वर्ग होगा। आधुनिक व्यवसायों के वर्गों की तरह उन्हें अपनी जीवन की नई शैलियों को अपनाना होगा। नये आधुनिक मूल्यों को भी उन्हें स्वीकारना होगा जो कि अपने आप में एक बड़ा रूपान्तरण होगा। यह भी संभव हो सकता है कि उभरता यह नया वर्ग आदिवासी समाज में नये तनाव पैदा करे। क्या यह उभरता नया वर्ग आदिवासी समाज में किसी नई धारा को जन्म दे सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्टाचार्य, के.पी एजूकेशनल इन आदिवासी (सम्पादित डी.के बोस), भारत सरकार प्रकाशन, नई दिल्ली, 1959
2. घूरिये, जी एस, दी शिडयूल्ड ट्राइब्स, पापुलर प्रकाशन, मुम्बई, 1959
3. दोषी, एस एल एवं व्यास, एन एन दी, ट्राइबल्स ऑफ राजस्थान, सन्शाइन ऑन दी अरावली, हिमांशु पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1992
4. दोषी, एस एल, एथनिसिटी एण्ड दी भील्स इन राजस्थान, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1986
5. कुमावत, ललित, पंचायती राज. एवं वंचित महिला समूह का उभरता नेतृत्व, क्लासिक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
6. मजूमदार, डी.एन, एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपोलॉजी, एशिया पब्लिकेशन्स, मुंबई, 1963
7. शाह, घनश्याम, इकानोमिक डिफरेंसिएशन एण्ड ट्राइबल आइडेन्टिटी, अजन्ता प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984
8. सिंह, के एस, इन इकालिटी इन ट्राइबल सोसायटी ऐमरजिंग ट्रेन्ड्स इन महाराणा सवयूर एण्ड इंदिरा मुंशी (सम्पादित) कोनट्रिडक्शन्स इन इंडिया सोसाइटी, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1993
9. वेरियर, एल्विन, दी ऐबओरिजनल्स, मिमफोर्ड-आक्सफोर्ड, 1994
10. विल्फ्रेड, स्पोहन, सोशयल ट्रांसफॉर्मेशन इन ग्लोबल, हिस्टोरिकल, कम्पैरेटिव पर्सपेक्टिव्स एण्ड सोशल ट्रोन्सफॉर्मेशन, इन्टरनेशनल सोसियोलोजी एसोसिएशन रिसर्च कमेटी, 09 न्यूज लेटर, 1996

बाल श्रम : दशा, दिशा एवं निवारण

डॉ. अनिल कुमार शर्मा

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान

राजकीय महाविद्यालय, राजगढ़, अलवर (राजस्थान)



शोध सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख के अन्तर्गत बाल श्रम समस्या को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। बाल श्रम के उद्भव में मूलरूप से औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया को प्रमुख रूप से माना जा सकता है इस प्रक्रिया के फलस्वरूप बाल श्रम में शोषण का तत्त्व सार्वजनिक रूप से दिखाई दे रहा है जबकि कृषि या कुटीर उद्योग तक बालक परिवार के साथ उत्पादन प्रक्रिया में भाग लेता था अर्थात् बालक का इस व्यवस्था में स्वाभाविक रूप से जुड़ाव था किन्तु औद्योगीकरण ने इसे विवशता में परिवर्तित कर दिया है। इसके अतिरिक्त आर्थिक कारण, परिवार की गरीबी, परिवार पर ऋण से बच्चे श्रम करने को मजबूर होते हैं। बाल श्रम की समस्या विश्व के लगभग सभी देशों में विद्यमान है विशेष रूप से विकासशील देशों में यह समस्या ज्यादा विकराल रूप से है। समाज में इस समस्या के व्यापक दुष्परिणाम देखे जा सकते हैं इससे बालकों का मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक शोषण के साथ-साथ शिक्षा के अधिकार से भी वंचित होना पड़ता है इन्हें परिवार, समाज और देश के बारे में जानने का समय ही नहीं मिल पाता है। कार्य स्थल की कठिन परिस्थितियों के कारण उनके स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कम आयु में ही वे अधिक आयु के दिखाई देने लगते हैं। इस समस्या के निस्तारण के लिए नियमों एवं अधिनियमों का दृढ़तापूर्वक पालन, शिक्षा का उचित प्रचार प्रसार, उनके परिवारों के रोजगार की व्यवस्था, सरकार द्वारा इनके परिवारों के लिए आर्थिक योजना के कार्यक्रम लागू करना, स्वैच्छिक संगठनों की भागीदारी, बाल श्रम समस्या के प्रति समाज में जनचेतना लाने के लिए नुक्कड़ नाटकों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिये। इन प्रयासों से इस समस्या का निस्तारण हो सकता है। अतः उक्त आलेख के अन्तर्गत बाल श्रम की प्रकृति, कारण, दुष्परिणाम एवं निस्तारण का उल्लेख करने का प्रयास किया जायेगा।

संकेताक्षर : बालश्रम, औद्योगीकरण, नगरीकरण, पूंजीवाद, कार्ल मार्क्स, उपभोगवादी संस्कृति

बालश्रम शाब्दिक रूप से दो शब्दों की संयुक्त कृति है प्रथम 'बाल' व द्वितीय 'श्रम'। बाल का अर्थ बालक की अवस्था है और श्रम से तात्पर्य श्रम की स्थिति, कार्यकार तथा सामर्थ्य से है। समसामयिक सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में 'बालक' तथा 'बालश्रम' को सर्वमान्य परिभाषा की परिधि में रखना एक जटिल समस्या है। समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, कानून वेत्ताओं, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्वयंसेवी संगठनों ने 'बाल' तथा 'बालश्रम' को अपने अपने दृष्टिकोणों से परिभाषित करने का प्रयास किया है।

औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया ने आर्थिक विकास की गति को तीव्र ही नहीं किया बल्कि राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर

पर विकास की प्रक्रियाओं के साथ-साथ अर्थ की प्रधानता का घनिष्ठ सम्बन्ध भी स्थापित किया है इससे बालश्रम के स्वरूप एवं परिस्थितियों में भी अंतर आ गया है। कृषि या कुटीर उद्योग तक बालक परिवार के साथ उत्पादन प्रक्रिया में भाग लेता था तथा कार्य का प्रशिक्षण प्राप्त करता था। इस परिस्थिति में सामुदायिक विचारों को लेकर आम सहमति थी एवं परिवारजनों के साथ सहभागिता करते हुए बालक श्रम करता था किन्तु औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रियाओं के फलस्वरूप बालश्रम में शोषण का तत्त्व सार्वजनिक रूप से परिलक्षित हो रहा है क्योंकि बालक परिजनों से भिन्न व्यक्ति होता है तथा श्रमिक को नियोक्ता न्यूनतम वेतन देना चाहता है।

विकसित देशों में बालश्रम की प्रकृति के प्रादुर्भाव गहराने तथा अंततः उन्मूलन के लिए सामाजिक-आर्थिक विकास के विशिष्ट आयाम तथा अवस्थाएँ उत्तरदायी मानी जा सकती हैं। पश्चिमी देशों के विवरणों से स्पष्ट है कि बालश्रम उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया के विकास की प्रारंभिक अवस्था से जुड़ी है। श्रम विभाजन तथा मशीनों के प्रयोग के कारण कारखाना प्रणाली से कुटीर उद्योगों के कारीगर बेकार होने लगे तथा बेरोजगारी, न्यूनतम मजदूरी तथा निर्धनता बढ़ने लगी। एक तरफ निर्धनता दूसरी ओर बच्चों के लिए कम मजदूरी की दर के कारण बच्चों का नियोजन बढ़ने लगा। कार्ल मार्क्स ने इसलिये इस प्रक्रिया को अपरिपक्व मानव मस्तिष्क के ही मशीनी रूप में परिवर्तित हो जाना कहा है। इस प्रकार कार्य करने वाले बच्चे का लक्ष्य केवल जीवित रहना ही रहता है, जबकि जीने का लक्ष्य केवल शारीरिक, मानसिक व सामाजिक खुशहाली भी है जो इन बालश्रमिकों को प्राप्त नहीं होती। अतः औद्योगीकरण के विकास के बाद उपभोगवादी व भौतिकवादी संस्कृति विकसित हुयी इसके अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु व व्यक्ति का उपयोग किया जाता है पूंजीपति का कार्य केवल लाभ कमाना रह गया है।¹

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार 'बाल श्रमिक वे बालक हैं जो स्थायी तौर पर वयस्कों की तरह जीवन जी रहे हैं, कम मजदूरी पर कई घण्टे ऐसी कार्य दशाओं में काम करते हैं जिससे उनका स्वास्थ्य प्रभावित होता है तथा इनका शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है इससे कभी-कभी उन्हें अपने परिजनों से दूर भी रहना पड़ता है जिससे वे सार्थक शिक्षा एवं प्रशिक्षण सम्बन्धी अवसरों से वंचित रह जाते हैं। बालश्रम करने के पीछे बालक की ऐसी आर्थिक मजबूरियां जुड़ी होती हैं जिनके कारण उनका शिक्षा प्राप्त करने एवं खेलने-कूदने का समय निकल जाता है। इस प्रकार बालश्रम वह कार्य है जो बच्चे के स्वस्थ बने रहने एवं उसके विकास में बाधा पहुंचाता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु का श्रमिक बाल श्रमिक कहलाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार "14 वर्ष से कम उम्र का कोई भी बच्चा कारखाने या खदान या खतरनाक उद्योगों में रोजगार पर नहीं लगाया जायेगा।"² अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक अनुमान के अनुसार संपूर्ण विश्व में 15 वर्ष से कम आयु के लगभग 52 मिलियन बालश्रमिक हैं जो कि अधिकांश अवैतनिक श्रमिक हैं। यूनिसेफ ने अपनी एक रिपोर्ट में बताया है कि भारत में 1 करोड़ 70 लाख बाल मजदूर अपने परिवारों के भरण पोषण के लिए मजदूरी करते हैं।³ सन् 2005 में जारी यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार विश्व भर में 24.6 करोड़ बच्चे किसी न किसी प्रकार का श्रम करने को मजबूर हैं इनमें से 15.2 करोड़ एशिया, 7.6 करोड़

अफ्रीका तथा शेष 1.8 करोड़ बालश्रमिक लैटिन अमेरिका देशों व अन्य देशों में कार्यरत हैं।⁴

अमेरिका की संयुक्त राज्य राष्ट्रीय बालश्रमिक समिति से जुड़े होमर फोक्स ने बालश्रमिक को इस प्रकार परिभाषित किया है- "बच्चों द्वारा किया गया कोई कार्य जो कम से कम शिक्षा या मनोरंजन की उनकी आवश्यकता में विघ्न डालता है।" इस प्रकार 'बालश्रम' से बालकों के कार्यरत होने की उस अवस्था का बोध होता है जिसके अन्तर्गत उन्हें अर्थलाभ का अवसर मिलता है। बालकों द्वारा किया जाने वाला हर कार्य जो उनके पूर्ण शारीरिक विकास में बाधक है, उन्हें शिक्षा का न्यूनतम स्तर भी ग्रहण नहीं करने देते और उनके लिये आवश्यक खेलने, कूदने और मनोरंजन की आवश्यकताओं को पूरा नहीं होने देना बालश्रम है।⁵

समाजशास्त्रियों के दृष्टिकोण से वे बच्चे बालश्रमिक माने जाते हैं जो अपने निर्धन परिवार की आय बढ़ाने के लिये परिस्थितिवश खेतों, दुकानों, कारखानों और घरेलू कार्यों में संलग्न हो तथा परिवार में एक आय उपार्जन सदस्य के रूप में रह रहे हो। बुद्धिजीवियों और शोधकर्ताओं के दृष्टिकोण से बच्चों के संदर्भ में श्रम तब एक बुराई का रूप धारण कर लेता है जब नियोक्ताओं द्वारा बच्चों से उनकी शारीरिक क्षमता के विपरीत काम लिया जाता है तथा उनके काम के घण्टे निश्चित न हो और उनकी शिक्षा, मनोरंजन व आराम का ध्यान नहीं रखा जाता है तथा जब उन्हें ऐसे कार्य पर लगाया जाता है जो उनके शरीर व स्वास्थ्य के लिये खतरनाक व हानिकारक सिद्ध होता हो।

ग्रामीण एवं नगरीय बालश्रम की प्रकृति में मूलभूत अंतर कृषि एवं गैर कृषि से संबंधित है। ग्रामीण क्षेत्र में बालश्रमिक कृषि एवं उससे संबंधित व्यवसायों एवं कुटीर उद्योगों में कार्यरत रहते हैं, जबकि नगरीय क्षेत्र में बाल श्रम श्रमिक औद्योगिक एवं अन्य क्षेत्रों में कार्य करते देखे जा सकते हैं। बालश्रम के लिये किसी एक कारक को जिम्मेदार ठहराना उचित नहीं है क्योंकि एक कारण दूसरे से अन्तः संबंधित है। अतः बालश्रम के कारणों को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं पश्चिमीकरण का प्रभाव भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात तीव्रगति से हुआ है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों से बड़ी संख्या में मजदूर शहर आते हैं उनके साथ उनका परिवार भी होता है इन परिवारों के बच्चे भी परिवार को आर्थिक सहायता देने के लिये कम आयु में ही कार्य करना आरंभ कर देते हैं। पश्चिमीकरण से व्यक्ति की आवश्यकतायें बढ़ी हैं तथा उन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये बड़ों के साथ-साथ बच्चे भी आय प्राप्त करने के लिये कार्य करते हैं।

आर्थिक कारक बालश्रम का महत्वपूर्ण कारण है क्योंकि गरीबी, ऋणग्रस्तता आदि कारणों से बच्चे मजदूरी करने के लिए बाध्य होते हैं, असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिकों के लिये कम आय होने के कारण बच्चों की शिक्षा पर व्यय करना संभव नहीं हो पाता तथा घर की आजीविका चलाने के लिये बच्चों से मजदूरी करवाना विवशता है। इस संदर्भ में बाल विश्व सम्मेलन भी गरीबी को इसका जिम्मेदार मानता है।⁶ अनेक शोध सर्वेक्षणों से यह स्पष्ट होता है कि गरीबी, ऋणग्रस्तता आदि कारणों से बच्चे मजदूरी करने के लिये बाध्य होते हैं, गरीब परिवार की मूलभूत आवश्यकतों को पूरा करने के लिये वे अपना श्रम बेचकर सहयोग करते हैं।

सामाजिक सांस्कृतिक कारण भी इस समस्या को जन्म देते हैं हमारे समाज में बच्चों को परिवार के परम्परागत कार्य भी सिखाये जाते हैं। ये कार्य वे अपने घर पर ही करते हैं जैसे - जरी उद्योग, गलीचा उद्योग, नगीना व्यवसाय इत्यादि।⁷ इससे वे धीरे-धीरे बालश्रमिक का रूप ले लेते हैं। हमारे समाज में बालश्रम सामाजीकरण की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन के कारण बालश्रम एक समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है। समाज में व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास, जातिप्रथा, प्राकृतिक आपदाएँ जैसे-बाढ़, अकाल, भूकम्प, तूफान आदि कारण भी बालश्रम समस्या को उत्पन्न करते हैं जिससे इस वर्ग की आर्थिक स्थिति प्रभावित हो जाती है जिससे इनके बच्चे मजदूरी करने को विवश हो जाते हैं।

इसी क्रम में अभिभावक या माता-पिता का अशिक्षित होना, शिक्षा का रोजगारपरक नहीं होना, परिवार में किसी कमाने वाले सदस्य का न होना या गंभीर बीमारी से पीड़ित होना, परिवार का वातावरण अनुकूल नहीं होना जिससे बच्चा असहज महसूस करता है। बच्चे की शिक्षा के प्रति रुचि नहीं होना, पढ़ाई में असफलता स्वयं कमाने की इच्छा, बुरी संगत, घर का कठोर वातावरण, अभिभावक की नशे की लत, सौतेली मां का बुरा व्यवहार, जनसंख्या में निरन्तर हो रही वृद्धि भी बालश्रम के लिये उत्तरदायी है इसके फलस्वरूप गरीबी, बेरोजगारी बढ़ती है जिससे बालश्रम को बढ़ावा मिलता है साथ ही प्रशासनिक कारणों के अन्तर्गत बालश्रम उन्मूलन के नियमों में लचीलापन एवं इनका कठोरता से पालन नहीं होने के कारण इस समस्या को प्रोत्साहन मिल रहा है।⁸

समाज में बालश्रम के दुष्परिणाम के अन्तर्गत इससे बालकों का मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक शोषण होता है। बच्चों को कोमल अवस्था में गंभीर यातनायें सहनी पड़ती हैं। विद्यालय से अपने जीवन का विकास करने की अवस्था में ये कार्य करते हैं। जिस

उम्र में बच्चों को पौष्टिक भोजन मिलना चाहिये वहीं इन्हें दो समय का भोजन भी उचित प्रकार से नहीं मिल पाता है। इन्हें आवास व कपड़ों की समस्या भी गंभीर रूप से होती है। फटे-पुराने मैले कपड़े पहनना आम बात है तथा ये गंदी बस्तियों में अपना जीवन जीने को मजबूर है। बालश्रमिक अपने बुनियादी अधिकारों जैसे शिक्षा, खेलना और सामाजीकरण की प्रक्रिया से वंचित हो जाते हैं, वहीं वे प्राकृतिक स्वतन्त्रता से भी वंचित होते हैं। असहनीय वातावरण, दुर्घटना, प्रदूषित परिवेश उनकी मनः स्थिति को प्रभावित करता है। श्रम शोषण, आर्थिक शोषण एवं शारीरिक थकान उनके जीवन के सहज विकास को प्रभावित करती है जिससे बालश्रमिक में चिड़चिड़ापन, अवसाद और कई प्रकार की बीमारियां हो जाती हैं। परिवार, समाज और देश के बारे में जानने का उन्हें समय ही नहीं मिल पाता है। कार्यस्थल की कठिन परिस्थितियों से बाल मजदूरों के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

बालश्रम से बालक का शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक शोषण होता है। दीर्घ समय तक काम करने से उनके शरीर व मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिससे उनका शारीरिक व मानसिक रूप से विकास नहीं हो पाता है वे कार्य अधिक करते हैं परन्तु उन्हें मजदूरी बहुत कम दी जाती है। उनसे व्यस्कों जैसा व्यवहार किया जाता है, नियोक्ता के सामने उनकी प्रतिरोध की भावना दबा दी जाती है, उनका पारिश्रमिक समय-समय पर नहीं बढ़ाया जाता जिसका वे विरोध भी नहीं कर पाते हैं। इन्हें असामाजिक तत्वों द्वारा भी तरह-तरह से प्रताड़ित किया जाता है। असामाजिक तत्व इन बच्चों से अनैतिक कार्य भी करवाते हैं और उन्हें नशे के दुष्क्रम में फंसा देते हैं जिससे वे जीवन पर्यन्त नहीं निकल पाते हैं। इस प्रकार बालश्रमिक अपराधी भी बन जाते हैं। बालश्रमिक जैसे-जैसे बड़े होते हैं स्कूल में उनकी उपस्थिति कम होती जाती है और वे अन्ततः स्कूल छोड़ने लगते हैं लेकिन वे अध्ययन जारी रखने की इच्छा भी रखते हैं तो उनके अभिभावक उन्हें परिवार में सहयोग देने के लिये तथा पारिवारिक आय में वृद्धि करने के लिये दबाव डालते हैं। बच्चों का मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है लंबे समय तक काम का परिणाम इनके जीवन में थकान व नीरसता लाता है जिससे उनकी कार्यक्षमता स्वतः ही कम हो जाती है।

बालश्रमिक कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण कार्य करते हैं इस कारण अधिकांश बालश्रमिक जीवन पर्यन्त गरीब रहते हैं इसके पश्चात उनके आने वाले बच्चों की भी यही स्थिति होती है जो उनकी है वे छोटी उम्र में ही वयस्कों के कार्य करते हैं तथा वे बुढ़ापे की ओर अग्रसर होते जाते हैं। बालश्रमिकों को न तो कोई अवकाश मिलता है और न ही उनके स्वास्थ्य की पर्याप्त देखभाल

हो पाती है उन्हें मनोरंजन का अवसर भी प्राप्त नहीं हो पाता है वे निम्न स्तर का जीवन जीने को मजबूर हो जाते हैं तथा धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है और वे समाज पर बोझ बन जाते हैं जो निश्चित रूप से राष्ट्र के विकास में बाधक है।

बालश्रम की दशा एवं दिशा के उपरान्त इसके निस्तारण के लिये व्यावहारिक सुझाव के अन्तर्गत आवश्यकता इस प्रयास की है कि वर्तमान में नियमों एवं अधिनियमों का दृढ़तापूर्वक पालन किया जाये। वे नीतियाँ जो भले ही विशेषरूप से बच्चों के लिये नहीं हो परन्तु जो निर्धनता असमानता को कम करती है उससे निर्णायक प्रभाव पड़ सकता है। इन नीतियों में कृषि संबंधी सुधार, रोजगार उत्पन्न करने वाली योजनाएँ, निर्धनों में उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयास, सहकारी समितियों का गठन और सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रम सम्मिलित हो सकते हैं। कानून और नियमों की अनुपालना में आवश्यकता है कि श्रम निरीक्षण और इससे संबंधित सेवाओं को मजबूत बनाया जाये। कानून की अनुपालना सुनिश्चित करने के लिये इसके उल्लंघन की सजा को अधिक कठोर बनाया जाये। इसमें आकस्मिक परीक्षण का प्रावधान सम्मिलित किया जाये तथा एक अलग से निगरानी प्रकोष्ठ का गठन किया जाना चाहिये।

बालश्रम को जन्म देने वाली समस्याएँ अथवा बच्चों को उनके अधिकारों से वंचित करने वाले कारणों के लिये सरकार के पास योजनाओं और उनके लिये धन की कमी नहीं है। इसके लिये साधनों की उपलब्धता की कमी नहीं है, कमी है दृढ़ संकल्प की, कमी है इच्छाशक्ति की, कमी है पूरी ईमानदारी से योजनाओं की क्रियान्विति की, कमी है विभिन्न विकास एजेंसियों में तालमेल की। इसके लिये विभागीय तालमेल तथा जरूरतमंद लोगों को इन योजनाओं की जानकारी सुलभ होनी चाहिये। गरीबों को आत्मनिर्भर, जागरूक बनाने व समाज की मुख्यधारा में लाने वाली कई योजनाएँ और कार्यक्रम स्वैच्छिक संगठन चला रहे हैं किन्तु सरकारी व गैर सरकारी विकास एजेंसियों के बीच आपसी विश्वास, सहयोग व समरसता की कमी के कारण वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे हैं। इसका प्रमुख कारण एक दूसरे के संबंध में अपनी कल्पना व सोच से बनायी छवि है लेकिन इस संबंध में स्पष्टता आवश्यक है एक दूसरे को समझकर, साथ बैठकर इस समस्या को दूर किया जा सकता है।

बालश्रमिक अधिकांशतः कच्ची बस्तियों में रहते हैं इन बस्तियों में सड़क, पानी, शौचालय, शिक्षा, रोजगार एवं जरूरी चिकित्सा सुविधाओं का अभाव है। बालश्रमिक ऐसे वातावरण में साफ सफाई से नहीं रहते हैं जिस कारण वे अक्सर बीमार रहते हैं। अतः सरकार द्वारा इन बस्तियों में उक्त सुविधाओं को उपलब्ध करवाया

जाना चाहिये। शिक्षा विकास का मूलमंत्र है और शिक्षा के बिना जीवन अधूरा है। बालश्रमिकों के संपूर्ण विकास के लिये इन्हें शिक्षा से जोड़ना आवश्यक है। बालश्रमिकों के लिये आवासीय शिविर होने चाहिये इनसे शिक्षा जल्दी प्राप्त करने में मदद मिलती है इन शिविरों में बच्चों के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाता है। इनमें शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, खेलकूद व व्यावसायिक प्रशिक्षण आदि सम्मिलित हैं बालश्रमिकों को स्कूल जाने के लिये प्रेरित करना चाहिये। इसके अन्तर्गत अध्ययन का पाठ्यक्रम संक्षिप्त होना चाहिये। सरकार ऐसे बच्चों को किताबें, पोशाक, छात्रवृत्ति, दोपहर का भोजन इत्यादि उपलब्ध करवाये जिससे उनकी रुचि शिक्षा के क्षेत्र में विकसित होगी। शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा देना भी व्यावहारिक उपाय है इससे बच्चे न केवल कोई हुनर सीखकर बाद में उसे अपनी जीविका का साधन बना सकेंगे बल्कि प्रशिक्षण के दौरान तैयार सामान बेचकर भी कुछ आय प्राप्त की जा सकेगी।

बालश्रम का प्रधान कारण परिवार की गरीबी है इसके लिये बालश्रमिकों के माता-पिता, अभिभावकों को अपने काम-काज को बढ़ाने के लिये सरकार के द्वारा ऋण उपलब्ध करवाना चाहिये जिससे उनका काम-काज तो बढ़ेगा ही साथ ही उनकी आमदनी भी बढ़ेगी इसका सीधा प्रभाव उनके परिवार की सामाजिक आर्थिक स्थिति पर पड़ेगा जिससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होगी जिसके फलस्वरूप वे अपने बच्चों को कार्य पर नहीं भेजने के लिये प्रेरित होंगे। बालश्रमिकों के परिवारों के भरण पोषण का स्थायी समाधान होना चाहिये यदि ऐसा नहीं होता है तो बालश्रम से संबंधित सभी कानून, अधिनियम व आयोगों की सार्थकता संदिग्ध है। बालश्रमिक परिवारों में रोजगार संवर्धन से संबंधित सभी योजनाओं, राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना, ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के प्रभावी क्रियान्वयन की दिशा में कठोर कदम उठाने चाहिये। इसी क्रम में जनसंख्या वृद्धि के नियंत्रण हेतु परिवार नियोजन कार्यक्रम साक्षरता एवं जागरूकता जैसे अभियान को युद्धस्तर पर क्रियान्वित करने की महती आवश्यकता है। कार्य करने के घण्टे, कार्यस्थल पर उचित वातावरण एवं न्यूनतम मजदूरी जैसे प्रावधानों को भी व्यावहारिक रूप से अपनाने पर जोर देना चाहिये। बाल अधिकार आयोग, समाज कल्याण विभाग एवं मानवाधिकार आयोग को समय-समय पर बालश्रमिकों में जनचेतना हेतु कार्यशालाओं, गोष्ठियों एवं सम्मेलनों का आयोजन करना चाहिये जिसमें मनोविज्ञान, समाज विज्ञान से जुड़े प्राध्यापकों, शोध छात्रों व समाज कल्याण कार्य से जुड़ी हुयी सामाजिक संस्थाओं तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं को बुलाया जाना चाहिये। बाल श्रमिक

विषयक शोध निष्कर्ष के आधार पर बाल श्रम उन्मूलन हेतु कार्य योजना व नीतियां बनायी जाये व इससे संबंधित शोध पत्रों का प्रकाशन कराया जाना चाहिये तथा राज्य द्वारा इस समस्या का निस्तारण करने हेतु समयबद्ध लक्ष्य का निर्धारण किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त बालश्रम के कारण जैसे गरीबी, प्राकृतिक आपदायें, प्रशासनिक नियमों का कठोरता से पालन नहीं होना, औद्योगीकरण, नगरीकरण, पारिवारिक कारण एवं जनसंख्यात्मक आदि कारणों का उचित समाधान नहीं होगा तब तक इस समस्या का निस्तारण संभव नहीं होगा। अतः समसामयिक स्थिति में सर्वाधिक आवश्यकता इन बालश्रमिकों के अधिकारों को सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य से निकालकर समाज की मुख्यधारा में लाकर व्यावहारिक बनाने की है।

संदर्भ सूची

1. बर्न्स, एमिल, मार्क्सवाद क्या है ?, जीपीएच पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 31
2. दीक्षित, ध्रुव कुमार, बालश्रम उन्मूलन एक चुनौती, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2002, पृ. 53
3. श्रीवास्तव, मनीष कुमार, बालश्रमिक एक सामाजिक अभिशाप, कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, नवम्बर, 2007, पृ. 16
4. नारंग, ए. एस., भारतीय शासन एवं राजनीति, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2010, पृ. 13
5. चंद्रा, नवीन, बालश्रम समस्या, बालश्रम कानून, वी. वी. गिरी राष्ट्रीय श्रम संस्थान, नोएडा, 2000, पृ. 1
6. मोदी, के. एम., बालश्रम, कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, नवम्बर, 2007, पृ. 23
7. देसाई, मेघनाथ, बालश्रम समस्यायें और समाधान, योजना, नई दिल्ली, मई 2008, पृ. 11
8. दशोरा, मनोज कुमार, बालश्रमिक समस्या एवं समाधान, हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर, 2006, पृ. 24

अमरकांत की कहानियों में आम आदमी

ज्योति शर्मा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)



शोध सारांश

साठोत्तरी कहानीकार के रूप में विख्यात अमरकांत मूलतः मोहभंग की स्थिति के रचनाकार हैं। उनकी कहानियों में विशेषतः मध्यमवर्गीय जीवन की जिजीविषा, छटपटाहट, विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ, कुण्ठा संत्रास व भय का चित्रण हुआ है। व्यवस्था की विडम्बना व उससे उपजी समस्याओं का चित्रण किया गया है। आम आदमी इस व्यवस्था में जीवन जीने को मजबूर है। वह इस व्यवस्था का बदलना चाहता है लेकिन व्यवस्था परिवर्तन की तमाम कोशिशों के बावजूद भी वह असमर्थ हैं। इस कारण वह परिस्थितियों का दास बन जाता है। इन परिस्थितियों का स्वीकार आम आदमी की नियति बन जाता है। इस कारण या तो वह जिन्दगी से जोंक की तरह चिपट जाता है या जिन्दगी उससे जोंक की तरह चिपट जाती है। इस कसमसाहट में वह न तो दोपहर का भोजन ही कर पाता है और न ही रहने के लिए मकान बनवा पाता है।

संकेताक्षर : मध्यवर्ग का संघर्ष, जिजीविषा, व्यवस्था की विडम्बना, विसंगतियाँ, मोहभंग, मानवीय संवेदना

नयी कहानी आंदोलन के साथ हिन्दी संसार में पदार्पण करने वाले अमरकांत अपनी जनवादी दृष्टि से निम्न मध्यवर्ग के जीवन को सहजता से चित्रित करने वाले कहानीकार हैं। “अमरकांत कफन की परम्परा के रचनाकार हैं”¹ “आपने मुख्य रूप से निम्न मध्यवर्ग के जीवन संदर्भों से अपनी कहानियों की सामग्री ली है”² अमरकांत ने आम आदमी और उसके व्यक्तित्व की द्वन्द्वात्मकता को अपनी कहानियों का केन्द्र बिन्दु बनाया है। इसके अन्तर्गत शुभ और अशुभ का द्वन्द्व, व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व, आशा और निराशा का द्वन्द्व, परम्परा और आधुनिकता का द्वन्द्व समाहित है। आम आदमी जीवन जीने की प्रक्रिया में रत है। अतः जीवन की तमाम तरह की विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ, कुण्ठा, क्रोध, संत्रास व भय उसके स्वतः स्फूर्त विशेषण बन जाते हैं। आपने आम आदमी के मनोविज्ञान को बहुत बारीकी से चित्रित किया है। कहीं उसकी जिजीविषा का प्रश्न महत्वपूर्ण है तो कहीं उसके अस्तित्व का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है। आम आदमी के अधूरे सपने, उसकी अधूरी इच्छाओं को अमरकांत उनकी तमाम कमजोरियों के साथ चित्रित करते हैं। भारतीय मध्यवर्गीय तथा कथित आदर्शों घटाटोप में छटपटाते आम आदमी की पूर्ण संवेदना यहाँ मुखरित हुई है। इनकी कहानियों का कोई सामान्य लगने वाली रचना के बीच विशिष्ट

विचार या विशिष्ट जीवन मूल्य बड़े सहज ढंग से लेकर आना ही उसकी एक खास विशेषता है। वस्तुतः इसकी संदर्भ ने अमरकांत की कहानियों को देखना उचित है।

जनवादी कहानीकार अमरकांत को जनवादी कहानियों की विकास परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी मानते हैं। आप आज की धर्म राजनीति व व्यक्तिवादी खतरों से सचेत करने वाली कहानियाँ लिख रहे हैं। आप शोषकों की अमानवीयता और शोषितों की करुण निरीहता का चित्रण करते हुए एक पक्षधर कहानीकार के रूप में सामने आते हैं। ऊपर से बिल्कुल सीधी और सादा दिखाई देने वाली आपकी कहानियों में सूक्ष्म व्यंग्यात्मकता निहित है।

आपके प्रमुख कहानी संग्रह-जिन्दगी और जोंक 1958, देश के लोग 1969, मौत का नगर 1978, मित्र मिलन तथा अन्य कहानियाँ 1979, कुहासा 1983, एक धनी व्यक्ति का बयान 1997, सुख और दुःख का साथ 2002 इत्यादि हैं। अमरकांत ने जब रचना कर्म में प्रवेश किया तब की सामाजिक स्थिति आजादी के बाद मोहभंग की प्रतिक्रिया स्वरूप देखी जा सकती है। विशेषतः अमरकांत मोहभंग की स्थिति के रचनाकार हैं। अमरकांत उन रचनाकारों में हैं जिनकी कहानियाँ न केवल कथ्य और शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ हैं बल्कि जो हमारे समाज का अपूर्ण ही सही

प्रमाणिक दस्तावेज है। हमारे विषमता ग्रस्त सामाजिक वातावरण की तर्कहीनता, असुरक्षा, संक्रास का सर्वाधिक विश्वसनीय और मार्मिक चित्रण अमरकांत की कहानियों में मिलता है। यह मार्मिकता के साथ उनके नैतिक बोध को भी व्यंजित करता है जो इस विषमता को दूर करने की छटपटाहट पैदा करती है।

अमरकांत मोहभंग की स्थिति के रचनाकार है। मूलतः यह वही समय था, जब द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तमाम अस्तित्ववादी विचारधाराएँ साहित्य को प्रभावित कर रही थी। अपने अस्तित्व के लिए मनुष्य की जो जिजीविषा है उसे अति यथार्थ रूप में अमरकांत “जिन्दगी और जोंक” नामक कहानी में प्रस्तुत करते हैं। इस कहानी के माध्यम से अमरकांत ने मध्य वर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय अंत विरोधों को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया है। रजुआ के बहाने अमरकांत ने उस वर्ग को रेखांकित किया है जो गांव से शहर स्वप्निल सुख के लिये आता है। गाँव का गोपाल शहर का रजुआ बन जाता है। महानगर धीरे-धीरे मानव की मनुष्यता को टुकड़ों में निगल जाता है। रजुआ पूरे मुहल्ले का काम करता है बिना पैसे का नौकर है पर जब वह बीमार पड़ता है तो किसी के मन में उसके प्रति संवेदना नहीं होती। यहाँ रजुआ की स्थिति किसी वेश्या से कम नहीं है। यहाँ संवेदना नहीं बल्कि संवेदनहीनता दिखाई देती है। शिवनाथ बाबू रजुआ को चोरी के आरोप में पीटते हैं, चोरी की साड़ी घर में मिलने पर भी कहते हैं “चोर सियार डाट डपट पाते ही रहते हैं..... नीच और नीबू को दबाने से ही रस निकता है।”³

कुछ आलोचक रजुआ को घीसू और माधव के समकक्ष रखते हैं। घीसू और माधव शोषित हैं लेकिन भोले नहीं हैं वे भुने हुए आलू खाने के लिये एक दूसरे को धोखा देते हैं पर रजुआ का शातिर पन पगली को पटाने में देखा जा सकता है। घीसू और माधव एक नम्बर के कांडियां हैं। पर रजुआ का काइयापन करूण है। रजुआ की जरूरतें कम हैं पर यह अमानवीय व्यवस्था उनको भी पूरी नहीं कर पाती। फिर भी इस अमानवीय व्यवस्था के बीच आम आदमी जीना चाहता है। इसके लिये रजुआ ने कई प्रयत्न किये हैं। वह अपनी मौत की झूठी खबर लिखवाता है ताकि मौत का साया उस पर से टल जाये। वह बार-बार प्रयास करता है कि उसे भीख न माँगना पड़े, पर मजबूर है। “वह किसी का मुहताज न होना चाहता था और इसके लिये उसने बहुत कोशिश की थी जिसमें वह असफल रहा था।”⁴ “जिन्दगी और जोंक” पर अपने विचार व्यक्त करते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं कि “घीसू और माधव का सजातीय पात्र जिन्दगी और जोंक का रजुआ है जिन्दगी इसको पीस रही है और यह भी इतना बेहया और जिन्दगी प्रूफ है कि उससे

कुछ न कुछ रस जिने भर का निकाल ही लेता है। जिन्दगी इसको चूस रही है और यह जिन्दगी को चूस रहा है।”⁵

अमरकांत के यहाँ व्यंग्य व्यवस्था की विडम्बना और तर्कहीनता पर आधारित है। वह किसी की लम्बी नाक मोटी तोन्द या व्यक्तिगत विद्वताओं पर आधारित नहीं है। व्यवस्था की तर्कहीनता से मनुष्य को कितना विरूप कर दिया है इसका पता अमरकांत की व्यंग्य प्रतिभा देती है। अमरकांत के यहाँ पात्रगत व्यंग्य व्यक्तिगत नहीं होता, वह सामाजिक स्थिति के संदर्भ में स्फुट होता है।

सन् 1962 में अमरकांत की ‘हत्यारे’ कहानी आती है जो हेमिंग्वे की कहानी “किलर्स” का अनुवाद है। यह नेहरू युग के अवसान और उसके मोहभंग का संधिकाल है और हिन्दी कहानी में नई कहानी और अकहानी के संधिकाल की भी कहानी है। यह कहानी अमरकांत की कहानी यात्रा में एक ब्रेक की तरह है। दो नायक हैं या खलनायक है। खलनायकत्व नायकत्व प्राप्त कर रहा है। दोनों नायकों में एक गौरा है, ऊँचा है, दूसरा साँवला है, ठिगना है जो साँवला है वह निम्न मध्यवर्ग का है। गौरा गुरु है साँवला चेला है। गुरु उसको शिक्षित करता है। ठीक उसी प्रक्रिया में जैसे घीसू माधव को शिक्षित करता है। कहानी में जब गिलास में दोनों शराब बाँटते हैं तो साँवला चुपके से अपनी शराब गौरा के गिलास में डाल देता है। इस पर गौरा कहता है “लेकिन जब तुम इतनी पी नहीं सकते तो अवसर आने पर घूस कैसे लोगे जालसाजी कैसे करेंगे झूठ कैसे बोलोगे? फिर देश की सेवा क्या करोगे खाक”! इस कहानी में दोनों युवक गैर जिम्मेदारी उच्छृंखलता की पराकाष्ठा के प्रतीक हैं। स्वतंत्रोत्तर भारत में जो आपराधिकता फली फूली है। उसके ये उद्घोषक पात्र हैं। गरीब औरत के शरीर को भोगकर वे उसका पैसा तक नहीं चुकाते। उनके पीछे जो व्यक्ति उन्हें पकड़ने दौड़ रहा है, उसकी हत्या कर देते हैं।

हत्यारे कहानी में यथार्थ अपनी अनेक तर्कों और आयामों में है। इस कहानी के माध्यम से अमरकांत प्रश्न उठाते हैं कि जिस देश की युवा पीढ़ी, दिशाहीन, मूल्यांध, उच्छृंखल और बिकाऊ हो वहाँ अपराध के अलावा और क्या फूलेगा?

अगर ध्यान से हत्यारे कहानी में देखें तो हम देखते हैं कि जो नेहरू वियनआदर्शवाद है। उसकी खोल के भीतर जो फासिज्म पैदा हो रहा है। युवाओं के बीच वह उसी आदर्श की भाषा में पैदा हो रहा है। उसे अपनी भाषा में पैदा होना चाहिए। सामाजिक आर्थिक क्रांति की भाषा में। लेकिन वो रूपवाद है उसका यथार्थ फासिज्म है। आदर्श के उस रूपवाद का यथार्थ फासीवाद है और इसी फासीवादी प्रवृत्ति की कहानी ‘हत्यारे’ है और यह फासीवादी प्रवृत्ति युवाओं में

व्यास हो रही है। युवा वर्ग के भीतर तरह-तरह के विभाजन हो रहे हैं। इसको अगर ध्यान में नहीं रखा जायेगा तो दिक्कत की बात होगी, और अमरकांत की खासियत यही है। उनकी चिंता हमेशा परिवर्तनकारी शाक्तियों के पहचान में आने वाले संकट को कहानी में रखने की है। अमरकांत एक ऐसे रचनाकार हैं जो विषय से नीचे उतरकर अथवा ऊपर उठकर किसी जीवंत सत्य को पकड़ने की कोशिश करते हैं। हत्यारे इसी प्रक्रिया की प्रामाणिक अनुभूति हैं। बदलते समाज में कैसे परिस्थितियाँ अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य को निगल रही हैं। यहाँ युद्ध सीधे नहीं अपितु शीत युद्ध है। यहाँ साम्राज्यवाद सीधे नहीं हमें मानसिक रूप से गुलाम बनाये हुए है। “यह हत्या कोई चीख पुकार सनसनी पैदा नहीं करती अपितु यह हत्या है हमारे मूल्यों की। ये हत्यारे किसी व्यक्ति के हत्यारे नहीं हैं वे सम्पूर्ण मानवीय विवेक निर्णय क्षमता और जीवन मूल्यों के हत्यारे हैं।”⁶

अन्य कहानियों में भी अमरकांत ने इन हत्यारों की भिन्न-भिन्न तस्वीरें पेश की हैं। ‘गगन बिहारी’ कहानी भी इन्हीं हत्यारों के युवकों का चित्र पेश करती है। ‘पलाश के फूल’ कहानी के राय साहब भी इन्हीं पात्रों की तरह स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित वर्ग के प्रतीक हैं।

आधुनिकता के पर्याय बने आज के मध्य वर्गीय समाज में किस तरह जाति और लिंग के आधार पर भेदभाव व्याप्त है। ‘असमर्थ हिलता हाथ’ कहानी इन पक्षों को बड़ी मार्मिकता से उठाती है। कहने को आज हमने विकास कर लिया है। किन्तु क्या आज के समय में महिलाओं की स्थिति उस स्थिति से बेहतर है जब वैदिक समय में स्त्रियाँ विदूषी हुआ करती थीं। जब मातृसत्तात्मक व्यवस्था थी, जाति कर्म के द्वारा निर्धारित होती न कि जन्म के द्वारा कहानी में मुख्य पात्र है ‘मीना’ और उसकी माँ ‘लक्ष्मी’। दोनों रूढ़िवादी व्यवस्था में अपने सपनों का बलिदान करती हैं। लक्ष्मी साहस के अभाव में एक ऐसे व्यक्ति से शादी करती है जिससे वह प्रेम नहीं करती। इस कारण उसके अन्दर एक नकारात्मक भाव पैदा हो जाता है तथा वह जाति व धर्म का सहारा लेकर दूसरों की भावनाओं को आहत करती है। इससे संयुक्त परिवार के विघटन की समस्या व घर के सुख शान्ति में एक अशांति व विषाद का माहौल भी फैलता है अमरकांत ने दिखाया कि जब लक्ष्मी अपनी बेटी मीना को भी उसी अवस्था में पाती है तो उससे घोर ईर्ष्या होने लगती है। प्रतिक्रिया स्वरूप वह उस पर तरह-तरह की पाबंदियाँ लगाती है। किस तरह से परिस्थितियाँ ही एक स्त्री को दूसरी स्त्री का दुश्मन बना देती हैं। यह कहानी इस परिस्थिति को भी बड़े ही सहज ढंग से पेश करती है। लक्ष्मी अंतिम अवस्था में उसे बताना चाहती है कि मीना को उसके जीवन का फैसला खुद लेना

चाहिए। लेकिन सामर्थ्य न होने की स्थिति में उसका “असमर्थ हिलता हाथ” इस बात का प्रतीक बन जाता है कि मीना फिर उसी इतिहास को दोहराएगी। इस कहानी में दिलीप के माध्यम से नारी स्वतंत्रता व नारी विकास की बात उठायी गई है “जब तक यहाँ की औरतें तरक्की नहीं करेगी यह देश तरक्की नहीं कर सकता।”⁷ आम आदमी अपनी स्थितियों की तबदीली की तमाम कोशिशों के बाद भी असमर्थ है। वह परिस्थितियों का गुलाम बन जाता है। कहानी का मुख्य “सवाल सिर्फ प्रेम विवाह या अंतर्जातीय विवाह नहीं है। सवाल है मुक्ति का आजादी का और इससे भी महत्वपूर्ण जड़वत संस्कारों को छोड़ने का।”⁸

अपनी परवर्ती कहानी ‘तूफान’ में अमरकांत ने मीना से अलग एक विकसित मानसिक स्थिति की नारी पात्र की रचना की है। सुमन अपने असमर्थ पिता को अपने प्रेम विवाह का जो अंतर्जातीय भी है। उसका निर्णय सुनाने में नहीं डरती है। अमरकांत के स्त्री पात्र संघर्षशील हैं जो अपनी परिस्थितियों से मुठभेड़ करते हुए आगे बढ़ते हैं। चाहे ‘रिश्ता’ कहानी की अनुपमा हो या पक्षधर की ‘दिव्या’ ये सभी स्त्री पात्र सामान्य हैं लेकिन कहीं-कहीं अपने अन्दर असमान्यता व असाधारणता का अंश लिए हुए हैं। ‘मौत का नगर’ कहानी साम्प्रदायिक दंगों से होने वाली आम जीवन की परेशानियों को बड़े क्रूर रूप में उठाती है। अमरकांत दिखाना चाहते हैं कि किस प्रकार दंगे एक दूसरे वर्ग के प्रति भेदभाव उत्पन्न करते हैं। सिर्फ इस आधार पर कि रिकशे में बैठा दूसरा आदमी मुसलमान है। राम का सारा शरीर सुन्न पड़ जाता है। लेकिन जिस मुसलमान को वह हत्यारा समझता था पर वह मेमने की तरह प्यारा उसमें भी मानवीय संवेदना है। “देखिये आज शाम को लौटकर घर पहुँचता हूँ या नहीं! अच्छा आदाबअर्ज--कभी मुलाकात होगी।”

अमरकांत स्वतंत्रता से उपजे मोहभंग के रचनाकार हैं। यह मोहभंग, बेरोजगारी भ्रष्टाचार, भारत चीन युद्ध, कच्छ न्यायाधिकरण का दुर्भावनापूर्ण निर्णय तथा साथ ही स्वतंत्रता आम आदमी जो आशा भी वह आशा स्वतंत्रता के बाद पूरी नहीं हो पाई, आशा निराशा में बदल गयी। यह आशा धूमिल के शब्दों में--

“मैंने इन्तजार किया, अब कोई बच्चा,

भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा,

अब कोई छत बारिश से नहीं टपकेगी”

फलस्वरूप आम आदमी का व्यवस्था से मोहभंग हो गया। युवाओं के डिप्टी क्लकटरी का सपना टूट गया। “इन्टरव्यू” कहानी में राशनिंग विभाग में 60 रु. क्लर्क के लिये एक पद पर इन्टरव्यू होता है। उस एक पद के लिए चार पाँच सौ कि भीड़ इकट्ठी हो

गई और भीड़ के लोग आपस में जो बातें करते हैं वे भ्रष्टाचार व व्यवस्था की विडम्बना का पर्दाफाश करते हैं।

“मुझे तो मालूम है, चुना जाने वाला पहले ही चुन लिया गया।
इन्टरव्यू तो ढोंग है”

“सुना है यहाँ के अफसर लोग घूस लेते हैं”

“राशनिंग डिपार्टमेंट तो भ्रष्टाचार का अड्डा है”

इस बेकरारी की हालत में आम आदमी को दो जून का भोजन भी नहीं मिलता उसे “दोपहर का भोजन” करना पड़ता है। दोपहर का भोजन कहानी का शीर्षक ही अपने आप में एक व्यंग्य है। कहानी के नायक मुंशी चन्द्रिका प्रसाद की डेढ़ महीने पूर्व मकान किराया नियन्त्रण विभाग की क्लर्क से छंटनी हो गई थी। बड़ा बेटा रोजगार की तलाश में रहता है। मंझला लड़का पढाई के साथ-साथ रोजगार की भी तलाश करता है। असमर्थ रहते हैं। परिवार में एक दूसरे को संतुष्ट रखने की कोशिश करते हैं। अपनी परिस्थितियों का स्वीकार आम आदमी की नियति है। यदि उसकी स्थिति में सुधार हो सकता तो वह आम नहीं खास होता। अमरकांत के पात्र इसी संवेदना से संपृक्त हैं। वास्तव में आज का आम आदमी अमरकांत की कहानी ‘मौत का नगर’ का ही नागरिक है, जहाँ वह अपने अस्तित्व के लिये जिन्दगी से जोंक की तरह चिपका है। जिन्दगी जीने की इसी जहोजहद कोशिश में वह “दोपहर का भोजन” भी पेट भर नहीं पाता अपने लिए चैन और सुकून की तलाश में वह एक ऐसा “मकान” भी नहीं खोज सकता जहाँ वह आराम से जी सके। उस जैसे कुछ लोग मिलकर एक बस्ती भी बना लेते हैं तो यह व्यवस्था उसे स्वीकार नहीं करती जो सही और गलत में ‘फर्क’ करना नहीं जानती। इस नगर में एक तरफ ‘डिप्टी क्लेक्टरी का सपना देखने वाला आम आदमी भी है तो बिना घोड़े पर चढ़े घुड़सवारी की बड़ी-बड़ी डींगें हाकने वाला ‘घुड़सवार’ भी है। अपनी पूरी सच्चाई जानने के बाद भी अपनी स्थिति को बदलने में इस आम आदमी का “हाथ असमर्थ” हैं।

अमरकांत के यहाँ पात्रों की भंगिमाओं को चित्रित करने के लिये उन पर नाना प्रकार के पशुओं पक्षियों की भंगिमाओं को आरोपित किया जाता है। अमरकांत की कहानियों में पात्र प्रायः कौवे, चूहे, भेड़, कुत्ते, गीदड़, ऊँट, चील, चमगादड़, खरगोश आदि के रूप में बार-बार चेष्टाएँ करते चित्रित हैं। अमरकांत के पात्र स्थितियों से निराश होकर अंत में ऐसे खामोश और परास्त हो जाते हैं जैसे पशु, पक्षी कटघरे या पिंजरे में से बाहर निकलने की अपार छटपटाहट के बाद असफल होकर सो जाएँ। शकलदीप बाबू के पुत्र नारायण

डिप्टी क्लेक्टरी के लिये बहुत परिश्रम करते हैं। अमरकांत ने आशा निराशा का भरपूर बैलौस द्वन्द्व चित्रित किया है। आखिर में जब स्वप्न टूट गया, नारायण डिप्टी क्लेक्टरी में नहीं चुना गया तो शकलदीप बाबू मुसकराते हुए उठे। उनका चेहरा पतला पड़ गया, आँखें धँस गई थी और मुख पर मूँछें, झाड़ू की भाँति फरक रहीं थी। उनके पैर काँप रहे थे और उनका सारा शरीर काँप रहा था, उनकी साँस गले में अटक जा रही थी। यह मुसकराना अपनी ही निगाह में अपनी आशा के खोखलेपन और मूर्खता पर मुसकराना है। समांहांत में लाटरी का स्वप्न है। गगन बिहारी कुछ कर ही नहीं पाता सिर्फ स्वप्न ही देखता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि अमरकांत की कहानियों में आम आदमी की जिजीविषा, छटपटाहट, जीवन जीने के लिए परिस्थितियों से संघर्ष, संघर्ष की विफलता आदि को दर्शाया गया है। मध्यमवर्गीय जीवन की विसंगतियाँ, स्वार्थपरता, युवा पीढ़ी की दिशाहीनता, निरर्थकता, मूल्यांधता आदि को उभारा गया है। स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक दिशाहीनता, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, भाई-भतिजावाद, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं का खुलकर चित्रण किया गया है।

सन्दर्भ सूची

1. त्रिपाठी, विश्वनाथ, कुछ कहानियाँ कुछ विचार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ. 11
2. तिवारी, रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम सं. 1955 स. व परिवर्द्धित संस्करण, 2015, पृ. 387
3. अमरकांत, मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एण्ड संस प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, “जिन्दगी और जोंक” पृ. 34
4. उपर्युक्त, पृ. 47
5. त्रिपाठी, विश्वनाथ, कुछ कहानियाँ कुछ विचार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ. 12
6. संपादक सिंह, नामवर, आलोचना अमरकांत के बहाने हिन्दी कहानी पर बातचीत-मधुरेश, अप्रैल-जून, 1977, पृ. 110
7. अमरकांत, मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एण्ड संस प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, असमर्थ हिलता हाथ, पृ. 51
8. संपादक अग्रवाल, आर.के., अमरकांत की कहानियों का फलक, डॉ. रामचन्द्र शब्दयोग, मार्च, 2007, पृ. 37

स्वच्छ भारत अभियान : गाँधी जी एवं वर्तमान संदर्भ



राजेश गुप्ता

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

शोध सारांश

स्वच्छता से तात्पर्य है - अपने घर, समाज, हृदय व शरीर से हानिकारक एवं नकारात्मक प्रभाववाली वस्तुओं का निष्कासन। व्यापक रूप में लोगों के स्वास्थ्य एवं कल्याण में सुधार एवं उसकी सुरक्षा ही स्वच्छता हैं। इसके अन्तर्गत मनुष्य के चारों ओर विद्यमान पर्यावरण को स्वच्छ एवं सुन्दर हेतु प्रयास करना भी शामिल है। स्वच्छता एक ऐसा विषय है जो वैदिक काल से ही भारतीय संस्कृति का एक आवश्यक तत्व रहा है। लेकिन आधुनिक युग में स्वच्छ भारत का स्वप्न महात्मा गांधीजी की देन है। उनका यह कथन महत्वपूर्ण है कि “स्वच्छता स्वतंत्रता से ज्यादा जरूरी है”। उनके मतानुसार निर्मलता और स्वच्छता दोनों ही स्वस्थ एवं शांतिपूर्ण जीवन के अनिवार्य भाग हैं। इसी कारण महात्मा गांधी (बापूजी) ने अपने साथी नागरिकों को हमेशा स्वच्छ जीवन जीने के लिए प्रोत्साहित किया। महात्मा गांधी की स्वच्छता अभियान को एक बार फिर हमारे माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने “स्वच्छ भारत अभियान” नाम के तहत राजघाट, नई दिल्ली में 2 अक्टूबर 2014 को शुरू किया। यह सरकार द्वारा संचालित एक कार्यक्रम है जो राष्ट्र के पिता (बापू) के दृष्टिकोण को पूरी तरह से विश्व स्तर पर सफल बनाने के लिए सभी क्षेत्रों से लोगों को बुलाते हुए पूरा करने के लिए काम करता है। यह कार्यक्रम अगले पांच वर्षों में 2 अक्टूबर, 2019 तक पूरा किया जाना है। इस स्वच्छ भारत अभियान को “एक कदम स्वच्छता की ओर” नारा दिया गया है। यह शहरी व ग्रामीण लोगों के लिए मांग आधारित जन केन्द्रित अभियान है जिसमें लोगों की स्वच्छता सम्बन्धी आदतों को ओर बेहतर बनाया जा सके, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं की मांग उत्पन्न करना और स्वच्छता सुविधाओं को उपलब्ध कराने जिससे आम लोगों के जीवन स्तर को बेहतर बनाया जा सके।

संकेताक्षर : पर्यावरण स्वच्छता, संगठन, शहरी क्षेत्र, ग्रामीण क्षेत्र, विद्यालय, शौचालय, निस्तारण

भारतीय संस्कृति का आधार वे मूल्य हैं जिनमें हमारा जीवन, परिवार और समाज सीधे-सीधे जुड़े हैं। इस मूल्यों में पवित्रता और स्वच्छता भी है। ये ऐसे मूल्य हैं जिससे हमारा जीवन उत्तरोत्तर आगे ही नहीं बढ़ता जाता बल्कि परिवार और समाज एक आदर्श परिवार और एक आदर्श समाज की ओर निरन्तर उन्मुख होते जाते हैं। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जहां स्वच्छता की आवश्यकता न हो, यहां तक कि स्वच्छता से ही व्यक्ति, परिवार और समाज की पहचान की जाती है। उसकी समृद्धि, प्रगति और विकास का रास्ता भी स्वच्छता से ही होकर गुजरता है।

संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (यूनीसेफ) तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन की भाषा में व्यक्ति का प्रत्येक स्थान पर एक अच्छे और स्वच्छ शौचालय तक पहुँच होना का अधिकार होना ही बुनियादी स्वच्छता का एक सर्व स्वीकार्य मानक है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्पौषणीय

विकास लक्ष्यों के अनुसार सम्पूर्ण विश्व वर्ष 2030 तक ‘स्वच्छ’ तरीके से प्रबन्धित ‘सबके लिए स्वच्छता’ तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध है।

गांधीजी और स्वच्छता—महात्मा गांधी ने कहा था “स्वच्छता, स्वतंत्रता से अधिक महत्वपूर्ण है” उन्होंने स्वच्छता एवं साफ-सफाई को गांधीवादी जीवन पद्धति का अभिन्न अंग बताया था। सभी के लिए सम्पूर्ण स्वच्छता उनका सपना था। उनका मानना था कि निर्मलता और स्वच्छता दोनों ही स्वस्थ और खुशहाल जीवन के लिए जरूरी है।

गांधीजी ने अपने बचपन में ही भारतीयों में स्वच्छता के प्रति उदासीनता की कमी को महसूस कर लिया था। उन्होंने किसी भी सभ्य और विकसित मानव समाज के लिए स्वच्छता के उच्च मापदंड की आवश्यकता को समझा। उनमें यह समझ पश्चिमी

समाज में उनके पारंपरिक मेलजोल और अनुभव से विकसित हुई। अपने दक्षिण अफ्रीका के दिनों से लेकर भारत तक वह अपने पूरे जीवनकाल में निरंतर स्वच्छता के प्रति लोगों को जागरूक करते रहे।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी की स्वच्छता यात्रा—यह दिलचस्प है कि पहली बार गांधीजी ने स्वच्छता के मसले को दक्षिण अफ्रीका में भारतीय व्यापारियों को अपने-अपने व्यापार के स्थानों को साफ रखने के संबंध में उठाया था। भारतीय और एशियाई समुदाय की ओर से एक याचिकाकर्ता के रूप में दक्षिण अफ्रीका में दी गई एक याचिका में गांधीजी ने भारतीय व्यापारियों की स्वच्छता के प्रति उनके रवैये और व्यवहार का बचाव किया और उन्होंने सभी समुदायों से सफाई रखने के लिए लगातार अपील भी की।

गांधीजी मानते थे कि उचित स्थान, मूलभूत और ढांचागत सुविधाएं और स्वच्छ वातावरण उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी नगरपालिका की है। गांधीजी ने इस संबंध में जोहांसबर्ग के चिकित्सा अधिकारी को एक पत्र भी लिखा था। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा था, “नगरपालिका की आपराधिक लापरवाही और सफाई के प्रति भारतीय निवासियों की अज्ञानता की वजह से कई इलाकों को पूरी तरह गंदा रखने की साजिश रची गई थी।” एक बार दक्षिण अफ्रीका में काले प्लेग का प्रकोप फैला। सौभाग्य से उसके लिए भारतीय जिम्मेदार नहीं थे। गांधीजी ने अपनी पूरी शक्ति के साथ, स्वेच्छा से और स्वयं के जीवन को खतरे में डालकर रोगियों की सेवा की। नगर चिकित्सक और अधिकारियों ने गांधीजी की सेवाओं की बहुत तारीफ की।

भारत में स्वच्छता : गांधीजी के प्रयास—महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि देते हुए देश के पहले गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा था कि गांधीजी एक महान दृष्टा थे। सरदार वल्लभभाई पटेल की यह बात सौ फीसदी सच है। गांधीजी ने खुद कहा था कि मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। यदि गांधीजी के जीवन का अध्ययन करें और रोजमर्रा के क्रियाकलापों पर नजर डालें तो पता चलेगा कि वे जीवन में वे छोटी-छोटी बातों पर कितना ध्यान देते थे। इन बातों में सफाई और स्वच्छता भी उनके दैनिक कार्यों का हिस्सा थी। वे अपने आसपास के वातावरण को साफ-सुथरा रखने पर जोर देते थे और खुद सफाई के काम में हाथ बंटाते थे।

गांधीजी ने किसी भी सभ्य और विकसित मानव समाज के लिए स्वच्छता के उच्च मानदंड की आवश्यकता को समझा। भारत में गांधीजी ने गांव की स्वच्छता के संदर्भ में सार्वजनिक रूप से पहला भाषण 14 फरवरी, 1916 में मिशनरी सम्मेलन के दौरान दिया

था। उन्होंने कहा “देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा की सभी शाखाओं में जो निर्देश दिए गए हैं, मैं स्पष्ट कहूंगा कि उन्हें गांव की स्वच्छता के सवाल को बहुत पहले हल कर लिया जाना चाहिए था। गांधीजी ने स्कूल और उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में स्वच्छता को तुरंत शामिल करने की आवश्यकता पर जोर दिया था।

19 नवम्बर 1925 के यंग इंडिया के एक अंक में गांधीजी ने भारत में स्वच्छता के बारे में अपने विचारों को लिखा। उन्होंने लिखा, ‘देश के अपने भ्रमण के दौरान मुझे सबसे ज्यादा तकलीफ गंदगी को देखकर हुई।

गांधीजी का हमेशा से ये विचार रहा है कि सभी को पहले खुद को बदलना चाहिए जो वो दुनिया में देखना चाहते हैं। इसलिए जहां भी और जब कभी भी गांधी जी को मौका मिलता वो उस जगह को खुद से साफ करने लगते। रचनात्मक कार्यक्रम के भाग के तहत उन्होंने पूरे देशभर में भ्रमण किया, अंग्रेजों के खिलाफ बड़े संघर्ष के लिए लोगों को तैयार करने के अलावा वो साफ-सफाई तथा स्वच्छता के महत्व के बारे में भी लोगों को भाषण देते थे। गांधीजी हमेशा अपनी पत्रिका हरिजन में स्वच्छता के महत्व को लिखते थे। स्वच्छ भारत अभियान का महात्मा गांधी ने सपना देखा था। उन्होंने कहा, स्वच्छता एक स्वस्थ जीवन का नेतृत्व करने का एक अभिन्न हिस्सा है। इसलिए गांधीजी को उनके जन्मदिवस 2 अक्टूबर को सरकार ने “स्वच्छ भारत अभियान” की शुरुआत का अच्छा संकेत और उचित श्रद्धांजलि दी है।

स्वच्छ भारत मिशन—भारत को स्वच्छ बनाने के लिए केवल गांधी के चश्मे के ढांचे से काम चलने वाला नहीं है। इसके लिये गांधी की सोच पर सम्पूर्णता से विचार किये जाने की जरूरत है। स्वच्छ भारत अभियान महात्मा गांधी द्वारा की गई एक कल्पना थी। महात्मा गांधी (बापूजी) ने हमेशा स्वच्छ और स्वच्छ जीवन जीने के लिए प्रोत्साहित किया। महात्मा गांधी की स्वच्छता अभियान को एक बार फिर हमारे माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने “स्वच्छ भारत अभियान” नाम के तहत राजघाट, नई दिल्ली में 2 अक्टूबर 2014 को दोबारा शुरू किया। यह कार्यक्रम अगले पांच वर्षों में 2 अक्टूबर, 2019 तक पूरा किया जाना है। स्वच्छ भारत अभियान सरकार द्वारा आरंभ किया गया राष्ट्रीय स्तर का अभियान है जिसका उद्देश्य गलियों, सड़कों तथा अधोसंरचना को साफ-सुथरा करना है।

प्रधानमंत्री मोदी का कहना है कि राष्ट्रपति ने फिट इंडिया और क्लीन इंडिया का नारा दिया था। बापू का क्लीन इंडिया का सपना अधूरा है। प्रधानमंत्रीजी ने स्वच्छता अभियान में सबसे अपनी

भागीदारी सुनिश्चित करने की अपील की। मोदीजी का मानना है कि यदि हम इस अभियान को पूरा कर दिखाते हैं तो ये हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के लिए बहुत बड़ी श्रद्धांजलि होगी। जिस प्रकार भारतीय लोगों ने एक जुट होकर भारत को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराया था, उसी प्रकार अब भी हमें एक होने की सख्त जरूरत है और यदि इस अभियान के लिए प्रति वर्ष देश का हर नागरिक अपने कीमती समय में 100 घंटे भी सफाई के लिए निकालता है तो वो दिन दूर नहीं जब हमारा भारत स्वच्छ और खुशहाल बन जाएगा।

स्वच्छता अभियान का मुख्य उद्देश्य विश्व स्तर पर जागरूकता कार्यक्रम के रूप में मिशन को प्रसारित करना है। इसका लक्ष्य भारत में खुले में शौच की समस्या को रोकना, हर घर में शौचालयों का निर्माण करना, पानी की आपूर्ति करना और ठोस और तरल कचरे का उचित तरीके से खात्मा करना है। इस कार्यक्रम में सार्वजनिक क्षेत्रों में स्नानघर का निर्माण, ग्रामीण इलाकों में स्वच्छता जागरूकता को बढ़ावा देने, सड़कों की सफाई, लोगों में व्यवहारिक बदलाव लाने और भारत को एक आदर्श देश बनाना शामिल है। देश में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए स्वच्छ भारत का निर्माण करना अत्यंत महत्वपूर्ण है यह अभियान न केवल नागरिकों को स्वच्छता संबंधी आदर्श अपनाने बल्कि हमारे देश की छवि स्वच्छता के लिए तत्परता से काम कर रहे देश के रूप में बनाने में भी मदद करेगा।

अभियान की उपयोगिता एवं लाभ

- यह अभियान देश को साफ करने के लिए आदर्श वाक्य के साथ शुरू किया गया था और यही वजह है कि सरकार ने ग्रामीण इलाकों की आबादी में शौचालयों के संकुचन में मदद की और गांवों में स्वच्छता कार्यक्रमों का भी प्रचार किया।
- कुल स्वच्छता कार्यक्रम (टीएसपी) की उपलब्धियां, एक तरफ गरीबों के सबसे गरीबों के जीवन स्तर को सुधारने और दूसरे पर भारत के मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) में सुधार लाएगी।
- भारत को साफ करने के लिए अप्रत्यक्ष रूप से कई व्यावसायिक घरों को आकर्षित किया जाएगा। इसके बदले में जीडीपी विकास में सुधार होगा और रोजगार के विभिन्न स्रोत उत्पन्न किए जाएंगे। स्वच्छ अभियान मृत्यु दर, स्वास्थ्य व्यय और घातक रोग दर को कम करने में एक महान भूमिका निभा सकता है।

- यह मिशन शहरी जीवन की गुणवत्ता में सुधार करेगा। यह एक पारिस्थितिकी अभियान है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता बनाए रखने के लिए लोगों को आरंभ करता है।

चुनौतियाँ

भारत के प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 2 अक्टूबर, 2014 को प्रारम्भ किए गए स्वच्छ भारत मिशन का मुख्य लक्ष्य वर्ष 2019 तक भारत को 'खुले में शौच' से मुक्त करना है। भारत में अक्टूबर 2014 एवं नवम्बर 2017 के बीच घरों में 52 मिलियन शौचालय बनवाए गए हैं, इसके अच्छे परिणाम भी दिखाई देने लगे हैं। फिर भी बुनियादी स्वच्छता के मामले में भारत की स्थिति अच्छी तो नहीं कही जा सकती, क्योंकि-

- ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में पांच स्वास्थ्य उपकेन्द्रों में से कम से कम 2 स्वास्थ्य उपकेन्द्रों में बुनियादी स्वच्छता सुविधाएं नहीं हैं।
- 0-5 वर्ष आयु वर्ग में 60,700 बच्चे प्रतिवर्ष अतिसार (डायरिया) जनित बीमारियों से मर जाते हैं। अतिसार मुख्य रूप से संक्रमित पानी पीने, खुले में शौच करने तथा अस्वच्छ वातावरण में रहने के कारण होता है।
- 73.2 करोड़ लोग बुनियादी स्वाच्छता सुविधाओं से वंचित हैं।
- देश की 56 प्रतिशत जनसंख्या की बुनियादी स्वच्छता तक पहुँच नहीं है।
- 0-5 वर्ष आयु के 39 प्रतिशत बच्चे बौने हैं।

शौचालयों का नहीं होना, पानी का अभाव या अपर्याप्त प्रौद्योगिकी के कारण संचालन और रखरखाव का अभाव जो कि चिंता का विषय है।

भविष्य के प्रयास-वर्ष 2000 के बाद से भारत ही नहीं, अपितु सारे विश्व में निर्धनता, कुपोषण, बेरोजगारी, अशिक्षा के मकड़ जाल में फंसे लोगों को बाहर निकालने में व्यापक प्रगति हुई है, लेकिन पराकोटि निर्धनता का निराकरण करके एक उचित, स्वच्छ एवं एक अधिक सम्पोषणीय विश्व के सृजन का संयुक्त राष्ट्र संघ सम्पोषणीय विकास लक्ष्य प्राप्त कर पाना उस समय तक तो सम्भव ही प्रतीत नहीं होता जब तक कि विश्व के किसी भी देश के किसी भी भाग की महिलाएं एवं लड़कियां स्वच्छ शौचालय जैसी बुनियादी स्वच्छता सेवाओं से वंचित हैं, इसके लिए चार स्तम्भों पर काम करना होगा।

- अधिक धन, बेहतर एवं किफायती तरीके से व्यय।

- महिलाओं के द्वारा महिलाओं के लिए स्वाच्छता के मूल्यों को प्रोन्नत करना।
- जेण्डर-मित्रवत् शौचालयों के सृजन हेतु समन्वयन से सुधार।
- जल एवं स्वाच्छता से जुड़े कार्यों के पुनर्वितरण हेतु सहायता प्रयास।

स्वच्छता के मामले में आज गांव, नगर, शहर और कस्बे सभी स्थान पर 'स्वच्छ भारत मिशन' का अभियान पहुंच रहा है। इससे आम और खास दोनों तरह के लोगों में 'स्वच्छता का विचार' पनप रहा है। प्रत्येक क्षेत्र में जहां भी हमारी पहुंच हो उस हर जगह पर स्वच्छता के विचार को फैलाते हुए देश समाज के प्रति अपने कर्तव्यों के पालन में सदैव तत्पर रहना चाहिए। इससे जन भागीदारी बढ़ेगी और सभी की आदतों में स्वच्छ रहने, स्वच्छ करने और स्वच्छ वाचन करने का हमारा स्वभाव बनेगा।

निष्कर्ष

इस बार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जयंती पर जिस तरह 'स्वच्छ भारत मिशन' की शुरुआत हुई, वह बापू के अधूरे सपने को पूरा करने की मुश्किल लेकिन ईमानदार कोशिश है। स्वच्छता अभियान मिशन को सहभागिता के द्वारा आगे बढ़ाना आज भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यदि स्वच्छता देश के प्रत्येक व्यक्ति की आदत बन जाए तो देश की कायापलट ही हो जाएगी क्योंकि अस्वच्छता के कारण की आज देश भ्रष्टाचार, अनाचार, स्वार्थ, हिंसा, अधर्म और पापाचार की ओर बढ़ता जा रहा है। ऐसे में देश के प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारी स्वच्छ रहने और दूसरों को भी स्वच्छता के लिए प्रेरित करना देशभक्ति का ही कार्य है।

आज देश में स्वच्छता के प्रति गांव, शहर और कस्बों में एक रुझान और जागृति दिखाई देती है। यही हमारे सुप्त संस्कारों की जागृत होना है। लेकिन स्वच्छता को हमें बड़े दायरे में देखना होगा। हमें अपने उस अतीत के सांस्कृतिक गौरव वर दृष्टिपात करना होगा जहां पवित्रता और स्वच्छता परिवार और समाज की पहचान थे। कारण स्पष्ट है.. स्वच्छता प्रत्येक व्यक्ति की जीवन-शैली हुआ

करती थी। इसमें धनी-निर्धन, जात-पात और वर्ग-सम्प्रदाय का कोई भेद नहीं था। आज फिर हमें अपनी सांस्कृतिक चेतना को पुनः जाग्रत करने के लिए जनांदोलन की और मुड़ना होगा। उस संवेदना की आवश्यकता अनुभव की जा रही है जो सकल प्राणी-जगत् को एक-दूसरे से सहोदर की तरह जोड़े और जो विसंगतियां, कमियां और दोष हैं इन्हें सुधार की दृष्टि से निष्पक्षभाव से दूर करके सकल जगत् में एक स्वच्छ वातावरण स्थापित करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रिसर्च जनरल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस, रीवा, अंक-13, वर्ष 07, दिसम्बर, 2012, पृ. 324
2. शर्मा, विरेन्द्र प्रकाश, भारत में समाज, रिपोर्ट ऑफ बर्ड हेल्फ ऑर्गनाइजेशन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2015, पृ. 330
3. बेन्नी जॉर्जरू, निर्मल ग्राम पुरस्कार : ग्रामीण भारत में प्रोत्साहन योजना में एक अनूठी प्रयोग ग्रामीण अध्ययन अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका (आईजेआरएस) वॉल्यूम 16 नंबर, पृ. 36 1 अप्रैल 2009
4. मृदुला सिन्हा एवं सिन्हा, आर. के., स्वच्छ भारत ए क्लीन इंडिया : प्रभात प्रकाशन, पृ. सं. 24, 6 मई 2016.
5. "स्वच्छ भारत चेक लिस्ट", किरण बेदी व पवन चौधरी, विस्डम विलेज पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, पृ. 18, 1 जनवरी 2015
6. जोशी, एस.सी., स्वच्छ भारत मिशन एन एसएसमेंट : 1 जनवरी 2017 पृ. 102
7. यंग इण्डिया, 22 जनवरी, 1930
8. कलैक्टड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खण्ड - 66, पृ. 426
9. हरिजन, 12 अप्रैल, 1942
10. चतुर्वेदी, मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक : कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, पृ. 301
11. नागर, पुरुषोत्तम 1999 आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 430
12. स्वच्छ भारत अभियान, एम. के. सिंह, सोलर बुक्स, 1 जनवरी 2017, पृ. 78
13. सिंह, पंकज के., स्वच्छ भारत, समृद्ध भारत, डायमंड बुक्स, 1 अक्टूबर 2015

बौद्ध धर्म में अहिंसा के व्यावहारिक आधार—एक ऐतिहासिक अध्ययन



अन्जु लता मीणा

शोधार्थी, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

छठी शताब्दी ई.पू. के नास्तिक सम्प्रदाय के आचार्यों में गौतम बुद्ध का नाम सर्वप्रमुख है जिन्होंने धर्म के क्षेत्र में अहिंसा एवं सहिष्णुता की महत्वपूर्ण व्याख्या की। बौद्ध धर्म की अहिंसा का दार्शनिक एवं क्रिया पक्ष अत्यन्त सरल व व्यावहारिक था। बौद्ध धर्म में अहिंसा के मध्यम मार्ग का अनुसरण किया गया है। अहिंसा और करुणा की बौद्ध धर्म में सामाजिक भूमिका थी जिसके द्वारा अनुयायी न केवल समाज के प्रत्येक व्यक्ति बल्कि जीव जगत के प्रत्येक प्राणी के प्रति उत्तरदायी बन रहे थे। वर्तमान समाज में व्यक्ति अपने में सिमटता जा रहा है किन्तु कदाचित् दैनंदिन जीवन में बौद्ध अहिंसा के व्यापक अभ्यास से मनुष्य समाज के हित के साथ अपने आध्यात्मिक विकास को भी गति देकर आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। इन अर्थों में बौद्ध अहिंसा न केवल अनुपम व विलक्षण है अपितु उपयोगी एवं प्रासंगिक भी है।

संकेताक्षर : अहिंसा, सर्वप्राणातिपात विरमण, मध्यम मार्ग

अहिंसा भारतीय चिन्तन धारा की महत्वपूर्ण अवधारणा है। अहिंसा की असीम शक्ति पर प्राचीनकाल से दार्शनिक धर्माचार्यों ने बड़ी गंभीरता से मनन किया। छठी शताब्दी ई.पू. के नास्तिक सम्प्रदाय के आचार्यों में गौतम बुद्ध का नाम सर्वप्रमुख है जिन्होंने धर्म के क्षेत्र में अहिंसा एवं सहिष्णुता की महत्वपूर्ण व्याख्या की। बौद्ध धर्म की अहिंसा का दार्शनिक एवं क्रिया पक्ष अत्यन्त सरल व व्यावहारिक था।

इस शोध पत्र का उद्देश्य यह विश्लेषित करना है कि क्या बौद्ध धर्म अपने मध्यमार्गी स्वरूप के अनुरूप एक नवीन प्रकार का अहिंसा का सहज मार्ग प्रशस्त कर रहा था? सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष दोनों के अध्ययन के द्वारा बौद्ध दृष्टिकोण को निरूपित करने का प्रयास किया गया है। आलोचनात्मक परीक्षण के द्वारा यह जानने का प्रयास है कि बौद्ध धर्म में अहिंसा के अनुसरण में तुलनात्मक शिथिलता अवधारणात्मक स्तर पर कोई न्यूनता तो नहीं ला रहा? बहुधा बुद्ध पर हिंसा का समर्थक होने का आरोप भी लगाया जाता है। ऐसे संशय और संदेहों में स्पष्टता लाने हेतु प्रस्तुत पत्र में बौद्ध साहित्य में निरूपित अहिंसा और हिंसा के व्यावहारिक पक्षों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

मुनिथमल के अहिंसा तत्व दर्शन एवं मुनि श्री नगराजजी के ग्रंथ अहिंसा विवेक में जैन व बौद्ध चिन्तन में अन्तर्निहित अहिंसा की अवधारणा का उल्लेख किया गया है। के.टी.एस. सराओं ने अपने लेख बौद्ध धर्म का उद्भव, स्वरूप और पतन में अहिंसा की अवधारणा का वर्णन किया है। लालसिंह ने विनयपिटक भगवान बुद्ध के नियम एवं मूल उपदेश (प्रश्न-उत्तर शैली में) भिक्षुओं के आचार नियमों के बारे में बताया है जिससे उनके द्वारा अहिंसा पालन के व्यवहार पर प्रकाश पड़ता है। आचार्य नरेन्द्रदेव ने बौद्ध धर्म दर्शन में भगवान बुद्ध का जीवन चरित, उनकी शिक्षा, उसका विस्तार, विभिन्न निकायों की उत्पत्ति तथा विकास, महायान की उत्पत्ति तथा उसकी साधना, स्थविरवाद का समाधिमार्ग तथा प्रज्ञा मार्ग, कर्मवाद, बौद्ध साहित्य के विविध दर्शन तथा बौद्ध-न्याय का सविस्तार वर्णन किया है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य बौद्ध अहिंसा का ऐतिहासिक विश्लेषण कर कुछ प्रश्नों के समाधान खोजना है जैसे कि बौद्ध धर्म में अहिंसा की अवधारणा का विकास किस प्रकार हुआ; बौद्ध अहिंसा का स्वरूप जैन अहिंसा से कैसे भिन्न था; किस प्रकार हीनयानियों की अहिंसा को महायानियों ने चरम रूप दिया; क्या बुद्ध ने अहिंसा की अनुमति दी थी और बौद्ध व्यावहारिक अहिंसा में क्या विलक्षणता थी।

बौद्ध धर्म में अहिंसा की अवधारणा

मन, वचन और काया-इनमें से किसी एक के द्वारा भी किसी प्रकार के जीवों की हिंसा न हो ऐसा व्यवहार ही संयमी जीवन है। ऐसे जीवन का निरंतर धारण ही अहिंसा है। महात्मा बुद्ध कहते हैं 'जंगम और स्थावर प्राणियों का प्राणघात न स्वयं करें, न किसी अन्य से करवाएं और न किसी करने वाले का अनुमोदन करें।' उदाहरण के लिए, धम्मपद इसी विचार को दुहराते हुए कहता है कि 'जैसे सभी मृत्यु से डरते हैं, वैसे ही दूसरों की तुलना स्वयं से करते हुए किसी की न तो हिंसा करनी चाहिए और न ही हिंसा का कारण बनना चाहिए।'²

बौद्ध धर्म में अहिंसा का सिद्धान्त

जीवित प्राणियों के प्रति अहिंसा, जो कि बौद्ध धर्म का प्रथम शिक्षापद है।³ जान-बूझकर हिंसा करने का तात्पर्य है, अंतर्निहित अखंडता को बाधित और नष्ट करना तथा सम्मान और करूणा, जो कि मानवता के आधार हैं, की भावनाओं को कुंठित करना। सचमुच, यह शिक्षापद जीवन तथा सृष्टि को आमंत्रित तथा मृत्यु और विनाश की निंदा करता है। जानबूझकर हत्या करना, चाकू मारना, गला दबाना, डूबो देना, कुचलना, जहर देना, जला देना या अन्य तरीके से किसी मनुष्य या जानवर को पीड़ित करना यह शिक्षापद केवल इन सब तरीकों से ही दूषित नहीं होता; किसी को किसी जीवित प्राणी को मारने, प्रताड़ित करने या हानि पहुँचाने के लिए उकसाना भी प्रथम शिक्षापद का उल्लंघन करना है।

सामंजसफल सुत्त में बताया गया है कि "भिक्षु, जीवित प्राणियों की हिंसा को छोड़कर, जीवन को नष्ट करने से स्वयं को अलग रखता है। वह लाठी और तलवार अलग रख चुका है, तथा कठोरता से शर्मिंदा एवं दया से ओत-प्रोत, वह उन सभी जंतुओं के प्रति जिनमें जीवन है, सन्नदयता एवं दया से रहता है।"⁴

बौद्ध धर्म में अहिंसा का व्यवहार

प्रत्येक को सभी जीवित प्राणियों से प्रेम करना चाहिए। बौद्ध धर्म में अहिंसा इस नैतिक नियम तक ही सीमित नहीं है। यह इसके बहुत आगे जाता है तथा धार्मिक अर्थ में स्वीकार करता है कि इसके अनुपालन से बुद्धत्व के उच्चतम शिखर को प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए बौद्ध धर्म में अहिंसा का अभ्यास कई प्रकार से बताया गया है। उदाहरण के लिए, आर्य आष्टांगिक मार्ग में सम्यक् कर्म (सम्माकम्मन्त) की व्याख्या अहिंसा के रूप में की जा सकती है।⁵ पुनः अत्यधिक महत्वपूर्ण दसकुसलकम्मपथ (दस कुशल कर्मों का मार्ग) में प्रथम सोपान है, जीवित प्राणियों की हिंसा नहीं करना।⁶ इसी प्रकार जब बुद्ध ने सिंगालिक को एक

उपासक के हर रोज के सही व्यवहार का उपदेश दिया तो पहला सिद्धांत जो व्याख्यायित किया गया, वह था, जीवित प्राणियों की हिंसा न करना।⁷ बौद्ध धर्म में पेड़-पौधों तक को हानि पहुँचाने पर भी रोक है।⁸ बौद्ध धर्म उस व्यक्ति की घोर निंदा करता है "जो जानबूझकर तथा लक्ष्य साधकर (इतिचित्तमनो चित्तसंकप्पो) विभिन्न तरीकों से मृत्यु की अच्छाई का वर्णन करें या किसी को मृत्यु की ओर प्रेरित करें।"⁹

बुद्ध के अनुसार एक आदर्श व्यक्ति प्राणिजात तथा वनस्पति-जीवन (बीजगाम भूतगाम)¹⁰ को हानि पहुँचाने से बचता है। उन्होंने सभी से "जीव जन्तुओं के प्रति करूणा रखने"¹¹ का आग्रह किया। बुद्ध ने समझाया कि "किसी भी जीवित प्राणी के जीवन का अंत न किया जाए, चाहे वह कितना भी सूक्ष्म क्यों न हो।"¹² यहाँ तक कि हरी घास या पानी में बचे हुए भोजन को फेंकना भी मना है क्योंकि दोनों जगह, घास या पानी में रहने वाले जीवों को हानि पहुँच सकती है।¹³ उनके अनुसार, "जीव-जन्तुओं की मारकाट करना, उनके प्रति क्रूर होना, रक्तमोचन करने, उन्हें हानि पहुँचाने या उनकी हत्या करने की मंशा रखना तथा जीव-जंतुओं के प्रति दया की भावना न रखना ... (जैसी प्रवृत्तियाँ) आयु को कम करती है"¹⁴ तथा उन्होंने इसे घृणास्पद (आमगन्ध) माना है।¹⁵ बुद्ध ने यहाँ तक कहा कि "हमें अपने जीवन को बनाए रखने के लिए भी जान-बूझकर अन्य जीवों की हत्या नहीं करनी चाहिए।"¹⁶ भिक्षुओं को मिट्टी खोदने की अनुमति नहीं थी।¹⁷ पानी को पीने के पहले अवश्य ही छान लिया जाना चाहिए क्योंकि इसमें जीवित प्राणी होते हैं।¹⁸ तथा वही "फल खाना चाहिए जिनमें अभी बीज न हुए हों या बीज न बचे हों।"¹⁹

बौद्ध धर्म में अप्रत्यक्ष हिंसा की अनुमति

विशेष परिस्थितियों में आरंभिक बौद्ध धर्म में 'अप्रत्यक्ष हिंसा' की अनुमति दी गई थी। उदाहरणतः आरंभिक बौद्ध धर्म में "चमड़े का प्रयोग जैसे-भेड़, बकरे तथा हिरण के चर्म का सीमांत देशों में पलंगपोश के रूप में प्रयोग की अनुमति थी।"²⁰ एक जातक में यह उल्लेख किया गया है कि "कुछ विशेष परिस्थितियों में बोधिसत्व भी जीव-हत्या कर सकते हैं।"²¹ यह उल्लेख बोधिसत्व के मांसाहारी पशु के अवतार के समय का है। एक स्थान पर बोधिसत्व "हिरण तथा सूअर की हत्या करते हैं तथा मांस को पकाकर खाते हैं।"²² इससे भी अधिक विरोधाभास तब उत्पन्न होता है जब बोधिसत्व मांसाहारी पशु के रूप में जन्म लेते हैं तथा उन्हें न केवल अपने लिए बल्कि अपने झुंड के लिए भी हत्या करनी पड़ती है। लेकिन यहाँ पर इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा

सकता कि जातक अट्टकथा की रचना बहुत बाद में श्रीलंका में हुई थी।

हालाँकि तिकोटिपरिसुद्ध के नियम²³ ने भिक्षुओं को मांस भक्षण के लिए जानवरों की हत्या के लिए प्रत्यक्ष रूप में सहायक होने से बचाए रखा तथा कुछ हद तक इस नियम की सामाजिक रूप से अस्वीकार्य जीवों के मांस भक्षण की मनाही द्वारा कमियाँ दूर कर दी फिर भी पालि बौद्ध धर्म का मांस भक्षण तथा अहिंसा के प्रति रवैया किंचित् विरोधाभापूर्ण प्रतीत होता है। लेकिन फिर भी ऐसा कहना कि बुद्ध ने मांस-भक्षण की अनुमति दी, चाहे कुछ निश्चित परिस्थितियों को ध्यान में रखकर, यह भी स्वीकार करना बहुत कठिन है। उस व्यक्ति, जिसने पशु-बलि तथा मांस बेचने, शिकार करने और फंदेबाजी जैसे धिनौने धंधों की कड़े शब्दों में निंदा की हो, उसके लिए यह कल्पना करना कठिन है कि उन्होंने उन्हीं जानवरों के मांस का स्वाद लिया हो। कोई भी व्यक्ति, जो बुद्ध की जीवित प्राणियों के प्रति विलक्षण करुणा तथा प्रेम से संबंधित अनेक वृत्तों से अवगत है, वह यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि बुद्ध ने उन्हीं प्राणियों के मांस-भक्षण की अनुमति दी हो। जीवित प्राणियों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे, इसके लिए वह इतने चिंतित रहते थे कि उन्होंने भिक्षुओं को पानी भी छानकर पीने के लिए कहा ताकि पानी में रहने वाले सूक्ष्म जीवों की अनजाने में हुई हत्या से बचा जा सके। ऐसा प्रतीत होता है कि संबंधित ग्रंथों के लेखकों द्वारा मांस भक्षण से संबंधित भागों को त्रिपिटक में बाद में जोड़ दिया गया। लगभग 300 से अधिक वर्षों तक धर्मग्रंथ मौखिक परम्परा में हस्तान्तरित होते रहे तथा इस काल के दौरान ऐसा अंतर्वेशन हो गया होगा।

निष्कर्ष

बौद्ध अहिंसा मध्यममार्गी, सहज व व्यावहारिक थी। बौद्ध अहिंसा में नवीनता यह थी कि इसमें अहिंसा के कर्मकाण्डों से युक्त ऊपरी अहिंसा की जगह आंतरिक रूप से अहिंसा के व्यवहार पर बल था। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बौद्ध धर्म में अहिंसा को वैचारिक धर्म के रूप में समझा गया है। अहिंसा की भावना को करुणा के साथ जोड़ा गया व कालान्तर में इस सहज संबंध की अनेक व्याख्याएं प्रस्फुटित हुईं। विज्ञासिमाव्रतासिद्धी ग्रंथ में विज्ञानवादी स्थिरमति के अनुसार "करुणा वह चैतसिक धर्म है जिसके द्वारा अहिंसा की प्राप्ति एवं अभ्यास संभव होता है। सर्वस्तिवाद में अहिंसा को एक स्वतंत्र चैतसिक धर्म माना गया है जिसके द्वारा अहिंसात्मक शारीरिक क्रियाओं का अभ्यास संभव है।"²⁴

कुछ अर्थों में बौद्ध धर्म भी अहिंसा को स्वार्थ से परमार्थ की ओर अग्रसर होते हुए निरूपित करता है। हीनयान में इसकी आधारभूत

अभिव्यक्ति मिलती है तथा महायान में इसका चरम बोधिसत्व के शारीरिक त्याग के रूप में मिलता है। अंतर यह है कि बौद्ध धर्म में अहिंसा को किसी अन्य पर उपकार के रूप में न देखकर अभ्यासकर्ता के स्वयं के जीवन की सार्थकता से जोड़ा गया है। स्वयं के जीवन के प्रति प्रेम की इस भावना को वैचारिक स्तर पर अन्य जीवों की ओर स्थान्तरित करके अहिंसा के अभ्यास की कामना की गई है। धम्मपद (129) में कहा गया -

“सव्वे तसन्ति दण्डसां सव्वे भायन्ति मनुचो

अतानम् उपमम् कत्वा न हनेय न धातये।”

सभी मनुष्य दण्ड के भय से कांपते हैं, सभी मनुष्य मृत्यु से डरते हैं। इसी तरह स्वयं को सभी के समान समझते हुए न किसी को चोट पहुँचानी चाहिए न हत्या करनी चाहिए।

अन्य तथ्य जो बौद्ध धर्म की अहिंसा को विलक्षण बनाता है वो है अहिंसा को मानसिक व आंतरिक गुण माना गया है। अहिंसा के बाहरी स्वरूप की अपेक्षा वैचारिक स्तर पर अहिंसा के प्रति संबंधता को अधिक महत्व दिया गया है।

मांस भक्षण की अनुमति पर बौद्ध की अहिंसा पर अनेक प्रश्न खड़े किए जाते हैं किन्तु गौतम बुद्ध ने स्पष्ट रूप से भिक्षुओं को निर्देश दिए थे कि उनके आतिथ्य के लिए किसी पशु की हत्या न की जाए। संभवतया यह नियम दानदाताओं की सुविधाओं के लिए बने थे ताकि भिक्षुओं द्वारा भोजन ग्रहण की प्रक्रिया में उन्हें कोई असुविधा न हो। अन्य परिस्थितियों में हम यह देखते हैं कि किसी भी कर्मकाण्ड में बौद्धों का पशुबलि के प्रति सतत् विरोध रहा।²⁵

इतिहास में अहिंसा का प्रयोग सामाजिक जीवन में किया गया। बौद्ध अहिंसा के अभिनव प्रयोग का श्रेय सम्राट अशोक को जाता है।²⁶ पशुबलि के निषेध के अलावा अशोक ने मनुष्यों व पशुओं हेतु चिकित्सालय बनवाए। अहिंसा के सकारात्मक प्रशासनिक प्रयोग का यह अनुपम उदाहरण है। जिसकी मूल प्रेरणा है बौद्ध अहिंसा। महायान तक आते-आते करुणा के महत्व में वृद्धि होने के साथ अहिंसा का अभ्यास भी विस्तृत हुआ।²⁷ लंकावतारसूत्र, महापरिनिर्वाणसूत्र आदि महायान ग्रंथों में मांस भक्षण को करुणा के विकास में बाधा माना गया। ब्रह्मजाल सूत्र में इसे पूरी तरह एक अपराध माना गया।

अनेक बौद्ध धर्म के समर्थक राजाओं ने बौद्ध अहिंसा को समर्थन दिया। फाहयान व हेनसांग के यात्रा संस्मरणों में उल्लेख मिलता है कि पश्चिमी क्षेत्र के अनेक राजा बौद्ध शिक्षाओं में आस्था रखते थे और उन राज्यों में मृत्युदण्ड निषिद्ध था।²⁸ अहिंसा और करुणा की बौद्ध धर्म में सामाजिक भूमिका थी जिसके द्वारा अनुयायी

न केवल समाज के प्रत्येक व्यक्ति बल्कि जीव जगत के प्रत्येक प्राणी के प्रति उत्तरदायी बन रहे थे। वर्तमान समाज में व्यक्ति अपने में सिमटता जा रहा है किन्तु कदाचित् दैनंदिन जीवन में बौद्ध अहिंसा के व्यापक अभ्यास से मनुष्य समाज के हित के साथ अपने आध्यात्मिक विकास को भी गति देकर आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। इन अर्थों में बौद्ध अहिंसा न केवल अनुपम व विलक्षण है अपितु उपयोगी एवं प्रासंगिक भी है।

संदर्भ सूची

- पाणे न हाने न च छातयेय, न चानुमन्या हनंत परेसं।
सव्वेषु भूतेसु निधाय दंडं, ये थावरा ये च तसन्ति लोके॥
सुत्त निपात, धम्मिक सुत्त
- धम्मपद. 129.
- अन्य चार शिक्षापद हैं - 2. जो दिया नहीं, वह न लेना; 3. गलत काम वासना में लीन न होना; 4. झूठ न बोलना; 5. दूसरों को उन पदार्थों का प्रयोग करने को न उकसाना या स्वयं न करना जो मन को उलझाते या कमजोर करते हैं।
- डायलोग्स ऑफ द बुद्धा I. 79 इसी प्रकार, धम्मपद के एक श्लोक (275) में बताया गया है कि "भद्र, जीवित जंतुओं की हत्या से नहीं, बल्कि उन सबके प्रति अहिंसा से बना जाता है।" (न तेन अरियो होति, येन पणानि हिंसति, अहिंसा सब्बपाणानं, अरियेति पवुच्चति।)
- मज्झिम निकाय III.251
- दीघ निकाय III.269
- दीघ निकाय III.181
- पाचित्तिय सं. 10 तथा 11
- विनय पिटक III.73
- गृह सूत्र II.222
- सुत्त विभाग 241
- सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट XVII.30; XX.128
- सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट XVII.22
- मिडिल लेंगथ सेईंग, III.250
- सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट X (2).39
- गृह सूत्र IV.129
- विनय पिटक IV.33
- न्यानतिलोक बुद्धिस्ट डिक्शनरी, (1956) कोलम्बो .III.3; जातक.I. 83
- सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट XX.75
- सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट XVII.39
- जातक III.296
- जातक IV.272
- किसी भिक्षु द्वारा तीन परिस्थितियों में मांस नहीं खाया जाना चाहिए, यदि उसने देखा, सुना या संदेह किया हो कि मांस किसी जानवर की हत्या कर विशेषतया उसके लिए प्राप्त किया गया है, अर्थात् भिक्षु के निमित्त जानवर की हत्या की गई है। यह तिकोटिपरिसुद्ध (अर्थात् तीन तरह से शुद्ध) का नियम कहलाता है।
- मलालसेकरा, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ बुद्धिज्म V.I. 1997, श्रीलंका, पृ. 288।
- सुत्तनिपात 307, दीघनिकाय I पृ. 142, 143।
- स्तम्भ अभिलेख 2, 5, 7 गिरनार शिलालेख, शिलालेख 1, 2, 4, 11, 13।
- लंकावतारसूत्र पृ. 425, महापरिनिर्वाणसूत्र पृ. 386।
- एनसाइक्लोपीडिया ऑफ बुद्धिज्म, पृ. 291।

भारत-फिलीस्तीन सम्बन्ध : वर्तमान परिप्रेक्ष्य



डॉ. सीताराम चौधरी

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, चिमनपुरा (शाहपुरा), जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के एक आवश्यक अभिकर्ता के रूप में प्रत्येक राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हितों की अधिकाधिक प्राप्ति हेतु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में व्यवहार करता है। इसी तथ्य के अनुरूप भारत ने भी अपने राष्ट्रीय हितों की अधिकाधिक प्राप्ति हेतु विश्व के अन्य देशों के साथ द्विपक्षीय और बहुपक्षीय सम्बन्धों की स्थापना की है व इन सम्बन्धों की प्रगाढ़ता हेतु सतत् प्रयासरत है। भारत द्वारा स्वतन्त्रता से पूर्व ही फिलीस्तीनी लोगों की स्वतन्त्रता मानव अधिकारों के संरक्षण और आर्थिक व सामाजिक विकास हेतु अधिक सकारात्मक विदेश नीति को अपनाया गया। भारत द्वारा सदैव अविभाजित अखण्ड फिलीस्तीन सम्बन्धी विचार का समर्थन किया इसी के कारण वर्ष 1948 में इजरायल की स्थापना के पश्चात दीर्घ समय तक भारत द्वारा इजरायल के साथ पूर्ण राजनयिक सम्बन्धों की स्थापना नहीं की गई।

संकेताक्षर : पील आयोग, परियोजनागत सहायता, आर्थिक सहयोग

शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में व्यापक परिवर्तन आया। परिवर्तित अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत द्वारा राष्ट्रीय हितों की अधिकाधिक प्राप्ति हेतु आदर्शवादी विदेश नीति के स्थान पर यथार्थवादी विदेश नीति को अपनाया।¹ इसी क्रम में भारत द्वारा 29 जनवरी 1992 को इजरायल के साथ पूर्ण राजनयिक सम्बन्धों की स्थापना की। इजरायल के साथ द्विपक्षीय सम्बन्धों के सामान्यीकरण के पश्चात भी भारत ने पूर्व की भांति फिलीस्तीन का समर्थन सुचारू रखे। वर्ष 1991 के पश्चात अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में आए व्यापक परिवर्तन व वर्ष 1992 में भारत इजरायल के मध्य पूर्ण राजनयिक सम्बन्धों की स्थापना के पश्चात भारत फिलीस्तीन सम्बन्धों का अध्ययन निम्न आधारों पर किया जा सकता है -

राजनीतिक निकटता एवं द्विपक्षीय यात्राएँ—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रों के मध्य निकटता स्थापित करने में राजनीतिक पहल सबसे प्रभावी माध्यम है राजनीतिक पहल के कारण ही द्विपक्षीय सम्बन्धों के विविध आयामों को तलाशा जाता है और उनकी प्रगाढ़ता हेतु प्रयास किया जाता है। भारत और फिलीस्तीन के मध्य ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के समय से ही राजनीतिक सम्पर्क रहा है। भारत ने सदैव राष्ट्रीय एकता व अखण्डता का समर्थन किया है। अरब-यहूदी विवाद के प्रारम्भिक दौर से ही भारत ने फिलीस्तीन

का समर्थन किया। स्वतन्त्रता के पश्चात भी भारत का यह समर्थन जारी रहा। इस तथ्य की पुष्टि भारत और फिलीस्तीन के मध्य सम्पन्न विभिन्न उच्चस्तरीय राजनीतिक यात्राओं से स्पष्ट होती है। इजरायल के साथ राजनयिक सम्बन्धों के सामान्यीकरण से कुछ दिन पूर्व ही 19-22 जनवरी 1992 को फिलीस्तीन के नेता यासिर अराफात ने भारत की यात्रा की। यासिर अराफात का स्वागत करते हुए भारत के प्रधानमंत्री पी.वी.नरसिम्हा राव ने कहा कि भारत फिलीस्तीन का समर्थन व राष्ट्र निर्माण में सहायता सुचारू रखेगा। भारतीय प्रधानमंत्री ने फिलीस्तीन के प्रतिनिधित्वकर्ता को आश्वासित किया कि मध्यपूर्व क्षेत्र में जारी शान्ति वार्ता प्रक्रिया का भारत समर्थन करता है।² मध्यपूर्व क्षेत्र में शान्ति स्थापना हेतु जारी शान्ति वार्ता प्रक्रिया का स्वागत करते हुए भारतीय प्रधानमंत्री श्री पी.वी.नरसिम्हा राव ने कहा कि उन्हें आशा है कि शान्ति स्थापना व क्षेत्र में स्थिरता हेतु यह एक उपयुक्त साधन है। यासिर अराफात की भारत यात्रा के दौरान प्रेस कॉन्फ्रेंस में भारत के इजरायल के साथ राजनयिक सम्बन्धों के बारे में पूछे जाने पर श्रीमान अराफात ने कहा कि “भारत द्वारा इजरायल को मान्यता व राजनयिकों का विनिमय सम्प्रभुता का कार्य है और मैं इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इस सन्दर्भ में मैं भारत के किसी भी विकल्प को पसन्द करूँगा।³

20 नवम्बर 1992 को भारतीय प्रधानमंत्री ने द्यूनिश यात्रा के दौरान यासिर अराफात से मुलाकात की और पुनः फिलीस्तीनी लोगों के प्रति भारतीय सहानुभूति व समर्थन को दोहराया। फिलीस्तीन के विदेश मंत्री फारूक काड्डोयुमी ने 5-7 अप्रैल 1993 को भारत की यात्रा की उन्होंने भारतीय प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव को 415 फिलीस्तीनियों के निष्कासन की जानकारी दी। भारतीय प्रधानमंत्री ने निष्कासन के प्रति गहरी चिंता व्यक्त की और इजरायल से निष्कासन का आदेश वापस लेने व सुरक्षा परिषद के संकल्प 799 को लागू करने हेतु इजरायल सरकार से आग्रह किया। 11 जुलाई 1995 भारत सरकार द्वारा एक महत्वपूर्ण नीतिगत फैसला लिया गया। इस फैसले के तहत भारत के विदेश मंत्रालय ने फिलीस्तीन नेशनल अथॉरिटी को सूचित किया कि भारत फिलीस्तीन नेशनल अथॉरिटी द्वारा जारी पासपोर्ट और यात्रा दस्तावेजों को मान्यता देता है। भारत ने फिलीस्तीन के साथ द्विपक्षीय सम्बन्धों-आर्थिक, वाणिज्यिक, सांस्कृतिक सम्बन्धों में विविधता लाने हेतु 24 जून 1996 को फिलीस्तीन में भारत का प्रतिनिधि कार्यालय स्थापित किया।⁴

फिलीस्तीन के साथ भारत के पारम्परिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को एक नया आयाम व दिशा देने हेतु फिलीस्तीन के राष्ट्रपति यासिर अराफात ने 19-22 नवम्बर 1997 को भारत की आधिकारिक यात्रा की। भारत के गृहमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी ने जून 2000 में फिलीस्तीन की यात्रा की इस यात्रा के दौरान यासिर अराफात से मुलाकात के दौरान उन्होंने फिलीस्तीन नेता को आश्वासन दिया कि भारत और फिलीस्तीन के बीच दशकों पुरानी दोस्ती जारी रहेगी साथ ही उन्होंने आशा व्यक्त की कि फिलीस्तीन नेतृत्व शान्ति के लिए संघर्ष में सफल भारत के विदेशमंत्री श्री जसवंत सिन्हा द्वारा भी फिलीस्तीन की आधिकारिक यात्रा की।⁷ फिलीस्तीन के प्रति भारतीय विदेश नीति के झुकाव को इजरायल के प्रधानमंत्री शेरोन की सितम्बर 2003 की भारत यात्रा के दौरान भी स्पष्ट किया गया।⁵

मई 2004 में कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व वाला संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन भारत में सत्ता में आया। इस दौरान भारत सरकार ने स्पष्ट किया कि इजरायल के साथ द्विपक्षीय सम्बन्धों विशेषतया सैन्य सहयोग को सुचारू रखा जाएगा। इसी दौरान भारत सरकार ने यह भी स्पष्ट किया कि इजरायल के साथ भारत के सम्बन्ध अरब दुनिया के साथ भारत के सम्बन्धों को प्रभावित नहीं करेंगे और फिलीस्तीन को भारत का पारम्परिक समर्थन सुचारू रहेगा। इसी पारम्परिक समर्थन की पुष्टि हेतु भारत के विदेश राज्य मंत्री ई.अहमद ने सितम्बर 2004 में फिलीस्तीन की यात्रा की। इस

दौरान अहमद ने यासिर अराफात से मुलाकात की और फिलीस्तीन नेताओं को नुकसान पहुँचाने के लिए इजरायल को चेतावनी दी। भारत सरकार ने पश्चिमी एशिया और मध्यपूर्व शांति प्रक्रिया के लिए भारत के विशेष दूत के रूप में राजदूत चिन्मय आर. घरेखान को फरवरी 2005 में नियुक्त किया। इस विशेष दूत की नियुक्ति अरब जगत के साथ भारत के रिश्ते को बेहतर बनाने हेतु की गई थी। फरवरी 2005 में राजदूत चिन्मय द्वारा इजरायल और फिलीस्तीन अथॉरिटी की यात्रा की। अगस्त 2005 में इजरायल ने एकतरफा निर्णय लेते हुए गाजा और उत्तरी वेस्ट बैंक से अपने अधिकार को त्याग दिया। इजरायल के इस निर्णय को भारत ने पश्चिमी एशिया में शान्ति स्थापना की दिशा में एक सकारात्मक विकास बताया। भारत ने 20 फरवरी और 6 मार्च 2007 को दो आधिकारिक वक्तव्य जारी किए जो फिलीस्तीन अथॉरिटी में नेशनल यूनिटी गवर्नमेंट (सक्का एग्रीमेंट) के गठन का समर्थन करते थे। फिलीस्तीन नेशनल अथॉरिटी के प्रेसिडेंट महमुद अब्बास ने 6-9 अक्टूबर 2008 को भारत की तीन दिवसीय यात्रा की। इस यात्रा के दौरान महमुद अब्बास ने भारत के विभिन्न जनप्रतिनिधियों से मुलाकात की इस यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की उपस्थिति में प्रेसिडेंट महमुद अब्बास ने नई दिल्ली स्थित फिलीस्तीनी दूतावास में एक भवन (Chancery-Cum-Residences Complex) के निर्माण हेतु नींव का पत्थर रखा। इस भवन का निर्माण पूर्णतः भारत सरकार द्वारा वित्त पोषित था जो कि भारत के फिलीस्तीनी लोगों के प्रति सद्भाव और दोस्ती का प्रतीक था।⁶ राष्ट्रपति महमुद अब्बास ने फरवरी 2010 में भारत का दौरा किया इस यात्रा के दौरान राष्ट्रपति महमुद अब्बास से भारतीय प्रधानमंत्री ने विवादित क्षेत्र में शांति प्रक्रिया शुरू करने के नए प्रयासों पर विचार विमर्श किया। इसी क्रम में भारत व फिलीस्तीन के मध्य सहयोगात्मक सम्बन्धों को अधिक प्रगाढ़ करने हेतु फिलीस्तीन के राष्ट्रपति महमुद अब्बास ने सितम्बर 2012 में भी भारत की यात्रा की। इसी प्रकार 28 सितम्बर 2015 को भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के 70वें सत्र के दौरान न्युयार्क में फिलीस्तीन के राष्ट्रपति से विचार-विमर्श किया।⁷

भारत-फिलीस्तीन द्विपक्षीय सम्बन्धों की प्रगाढ़ता के क्रम में मील का पत्थर भारत के राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी की 12-13 अक्टूबर 2015 को की गई फिलीस्तीन यात्रा है। इस यात्रा के दौरान राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने कहा कि भारत के किसी राष्ट्रपति द्वारा फिलीस्तीन की पहली राजकीय यात्रा पर आना वास्तव में बड़े गर्व की बात है। राष्ट्रपति ने अपने सम्बोधन में कहा कि भारत फिलीस्तीन के

साथ अपनी पुरानी मैत्री को बहुत महत्व देता है। फिलीस्तीन के उद्देश्य के प्रति भारत पूर्ण सहानुभूति तथा फिलीस्तीन के लोगों के साथ भारत की मैत्री हमारी विदेश नीति का अभिन्न अंग बन गई। भारतीय नेतृत्व चाहे वे किसी भी राजनीतिक दल के हो फिलीस्तीन के उद्देश्य के प्रति अपने समर्थन पर अडिग एवं दृढ़ रहे हैं।⁸ भारतीय विदेश मंत्री श्रीमती सुष्मा स्वराज द्वारा जनवरी 2016 में फिलीस्तीन की आधिकारिक यात्रा की। इस आधिकारिक यात्रा के दौरान विदेश मंत्री ने व्यापक श्रेणी के द्विपक्षीय, बहुपक्षीय, क्षेत्रीय मुद्दों पर फिलीस्तीन के राष्ट्रपति महमूद अब्बास तथा विदेश मंत्री रियाद अल मल्की के साथ सार्थक चर्चा की। विदेश मंत्री ने यह भी उल्लेखित किया कि आई टी तथा आई टी समर्थित सेवाओं में भारत की मजबूती से फिलीस्तीन की अर्थव्यवस्था एवं समाज को काफी लाभ हो सकता है। हम आई टी के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी फिलीस्तीन की उतनी मदद करने के लिए तैयार हैं जितना हम कर सकते हैं। इस यात्रा के दौरान विदेश मंत्री श्रीमती स्वराज ने भारत-फिलीस्तीन डिजिटल अधिगम तथा नवाचार केन्द्र का उद्घाटन अलकुडस विश्वविद्यालय में किया।⁷ इसी क्रम में फिलीस्तीन के राष्ट्रपति महमूद अब्बास 14-17 मई 2017 के दौरान भारत की राजकीय यात्रा पर रहे। राष्ट्रपति महमूद अब्बास की इस यात्रा के दौरान भारतीय राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, विदेश मंत्री सुष्मा स्वराज से मुलाकात की। इस यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच कई अहम समझौते हुए। इसी क्रम में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, राष्ट्रपति महमूद अब्बास के सामने दोनों देशों के बीच 16 मई 2017 को समझौता ज्ञापन सौंपे गए। दोनों देशों के बीच हुए समझौतों में राजनयिक और सरकारी पासपोर्ट पर वीजा छूट पर समझौता ज्ञापन, कृषि सहयोग पर समझौता ज्ञापन, स्वास्थ्य क्षेत्र में सहयोग पर समझौता ज्ञापन, युवा मामलों और खेल में सहयोग पर समझौता ज्ञापन, सूचना प्रौद्योगिकी और इलेक्ट्रॉनिक्स में सहयोग पर समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए। फिलीस्तीन के एक प्रमुख विकास सहायता साझेदार के रूप में भारत की भूमिका को ध्यान में रखते हुए दोनों पक्षों ने 11 फरवरी 2018 को प्रधानमंत्री मोदी और फिलीस्तीन के राष्ट्रपति महमूद अब्बास के बीच एक द्विपक्षीय बैठक के बाद स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्रों में छह समझौता ज्ञापनों, एमओयू पर हस्ताक्षर किए।

भारत द्वारा फिलीस्तीन को प्रदत्त सहायता

आर्थिक सहायता—गाजा के पुनर्निर्माण के लिए 12 जनवरी 2015 को परियोजना सहायता के रूप में 4 मिलियन अमेरिकी डॉलर की राशि प्रदान की गई। 12 अक्टूबर 2015 बजटीय सहायता के

रूप में 5 मिलियन अमेरिकी डॉलर की राशि प्रदान की गई। 25 नवम्बर 2015 को फिलीस्तीन को शरणार्थियों के कल्याण के लिए यू एन आर डब्ल्यू ए को 1 मिलियन अमेरिकी डॉलर की राशि प्रदान की गई।⁹

परियोजनागत सहायता—भारत ने फिलीस्तीन के लिए 30 मिलियन अमेरिकी डॉलर की परियोजनागत सहायता की घोषणा की गई है। 2005 में फिलीस्तीन के राष्ट्रपति अब्बास की भारत यात्रा के दौरान भारत ने 15 मिलियन अमेरिकी डॉलर परियोजनागत सहायता की घोषणा की थी। दिसंबर 2007 में पेरिस दानदाता सम्मेलन में भारत ने 5 मिलियन अमेरिकी डॉलर की नई वचनबद्धता की थी और वर्ष 2008 में राष्ट्रपति अब्बास की यात्रा के दौरान भारत ने फिलीस्तीन के लिए 10 मिलियन अमेरिकी डॉलर की परियोजनागत भी सहायता भी घोषित की थी।¹⁰

व्यापार—विदेश मंत्रालय द्वारा 13 जनवरी 2016 को प्रकाशित विज्ञप्ति के अनुसार भारत व फिलीस्तीन के मध्य द्विपक्षीय व्यापार इजरायल के माध्यम से होता है अतः भारत व फिलीस्तीन के द्विपक्षीय व्यापार की पूर्ण सांख्यिकी उपलब्ध नहीं है। सीमित आंकड़ों से संकेत मिलता है कि भारत व फिलीस्तीन का द्विपक्षीय व्यापार 30 मिलियन अमेरिकी डॉलर के आसपास है। चूंकि लगभग यह व्यापार भारत की ओर से होता है इसी कारण भारत व फिलीस्तीन का द्विपक्षीय व्यापार संतुलन भारतीय पक्ष में है। आई टी तथा आई टी समर्थित सेवाओं, परामर्श आदि में भारत की ताकत को फिलीस्तीन में बड़े पैमाने पर स्वीकार किया जाता है।¹¹ 2014 में भारतीय इंजिनियरिंग परामर्श फर्म होल्टेक कंसल्टिंग ने फिलीस्तीन के पहले सीमेंट संयंत्र के लिए संभाव्यता अध्ययन तैयार करने के लिए निविदा हासिल की है। जिसे फिलीस्तीन की वाणिज्यिक सेवा कम्पनी द्वारा फिलीस्तीन में स्थापित किया जाएगा। भारत में इण्डोनेशिया के बाद विश्व के सबसे अधिक इस्लाम धर्मावलम्बी निवास करते हैं। यही वजह है कि फिलीस्तीन को लेकर भारत की विदेश नीति वर्तमान समय को छोड़कर लगभग अरब राष्ट्रों के प्रति झुकी रही और भारत द्वारा सदैव फिलीस्तीन की अखण्डता का समर्थन किया। लेकिन वर्तमान दौर में वैश्विक आतंकवाद, एशिया महाद्वीप में बढ़ता चीन का वर्चस्व, व भारत की सामरिक तथा विकास सम्बन्धी चुनौतियों के निराकरण हेतु भारत व इजरायल के मध्य नजदिकियाँ बढ़ी हैं। इसका आशय यह नहीं है कि भारत फिलीस्तीन के मध्य द्विपक्षीय सम्बन्ध गौण हो गए हैं। अपितु भारत द्वारा पूर्व की भांति ही फिलीस्तीन से सम्बन्धों की प्रगाढ़ता हेतु प्रयास किए जा रहे हैं।¹²

सन्दर्भ

1. फारैन अफेयर्स रिकोर्ड, वाल्युम XXXVIII, न.1, जनवरी 1992, पृ. 031
2. विदेश मंत्रालय, भारत सरकार वार्षिक प्रतिवेदन 1992-93, पृ. 06
3. फारैन अफेयर्स रिकोर्ड, वाल्युम XXXIX, न.1, जनवरी 1993, पृ. 06
4. फारैन अफेयर्स रिकोर्ड, वाल्युम XLI, न.1, जनवरी 1995, पृ. 285
5. फारैन अफेयर्स रिकोर्ड, वाल्युम XLII, न.1, जनवरी 1996, पृ. 285
6. फारैन अफेयर्स रिकोर्ड, वाल्युम XLIII, न.1, 1997, पृ. 185
7. द हिन्दु नई दिल्ली 14 जून 2000 पृ. 11
8. ट्रिब्यून 2 जुलाई 2000 नई दिल्ली 14 जून 2000 पृ. 17
9. पंत, हर्ष वी, 'इण्डिया इजरायल पार्टनरशिप कनवरजेनश कनसट्रेंट्स' साग पेपर प्रकाशन, 4 इलाबाद मार्च 2005. पृ. 17
10. विदेश मंत्रालय, भारत सरकार वार्षिक प्रतिवेदन 2008-09, पृ. 50-51
11. इन्टरनेशनल डॉक्युमेंट ऑन फिलीस्तीन, 1976, पृ. 525
12. राज्य सभा डिबेट, वाल्युम XIII, 22- 11-1974

राजस्थान के माध्यमिक विद्यालयों की सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं एवम् अध्यापिकाओं की निर्णय प्रक्रिया का विद्यालयी वातावरण पर प्रभाव का अध्ययन



डॉ. रितु कन्धल

प्राचार्या, यूनिवर्स टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज
बगरू, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

मानव जीवन को सुचारू रूप से संचारित करने के लिए विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों कार्य करती हैं। इन प्रशासनिक इकाइयों द्वारा सम्पादित किए गए कार्यों की दक्षता पर ही सुव्यवस्थित व्यवस्था निर्भर करती है। इन इकाइयों के व्यवस्थापन का भार जिस व्यक्ति को सौंपा जाता है, उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह अच्छे प्रबन्ध के सिद्धान्तों जैसे -POSDCORB की जानकारी रखता हो। इन सिद्धान्तों के सन्दर्भ में उसे समय-समय पर उचित निर्णय लेने पड़ते हैं, ताकि वह अपने निकाय की व्यवस्था सुचारू रूप से कर सके। समाज में व्याप्त विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान शिक्षा का है। शिक्षा का प्रारम्भिक केन्द्र विद्यालय माना जाता है और विद्यालय का प्रशासनिक प्रमुख प्रधानाध्यापक होता है। अतः प्रधानाध्यापक द्वारा अपनाई जाने वाली निर्णय शैली विद्यालय वातावरण को प्रभावित करती है। अर्थात् सार रूप में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त निर्णय शैली का चयन कर प्रधानाध्यापक विद्यालय वातावरण निर्माण के लिए भौतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक पक्षों के मध्य उचित समन्वय एवं सन्तुलित स्थापित करता है।

संकेताक्षर : निर्णय प्रक्रिया, प्रधानाध्यापक, विद्यालय वातावरण, निर्णय शैली

जीवन चाहे सरल समाजों में हो या उन्नत समाजों में विभिन्न समयों पर विभिन्न प्रकार की छोटी या बड़ी समस्याओं के निकट जा खड़ा होता है, या कहिए कि समस्याएं उनके जीवन में आ जाती है। इन समस्याओं के कारण मनुष्य एक ऐसे चौराहे पर आकर खड़ा हो जाता है, जहाँ उसे निर्णय लेने की आवश्यकता पड़ती है। ये निर्णय उसके व्यक्तिगत जीवन से या सामाजिक जीवन से भी सम्बन्धित हो सकते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि मानव जीवन की दैनिक पारिवारिक गतिविधियों से लेकर बड़े-बड़े सरकारी संगठनों अथवा उद्योगों तक, सभी में प्रतिक्षण कोई न कोई निर्णय होते रहते हैं। वस्तुतः निर्णय करना मानव की स्वाभाविक आवश्यकता तथा विशेषता है।

दैनिक पारिवारिक गतिविधियों के साथ-साथ शिक्षा प्रशासन में भी निर्णय प्रक्रिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा प्रशासन के क्षेत्र का मुख्य आधार विद्यालय होता है, जहां विद्यालय की समग्र गतिविधियों को एक सूत्र में बांधकर विद्यालय का सर्वोच्च विकास करना प्रधानाध्यापक तथा अध्यापकों की जिम्मेदारी होती है।

विद्यालय के सर्वोच्च विकास के लिए प्रधानाध्यापक द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्य जैसे- योजना बनाना, संगठन करना, निर्देशन करना, विद्यालय बजट बनाना, अध्यापकों, कर्मचारियों, छात्रों व अभिभावकों के मध्य समन्वय विकसित करना आदि अनेक कार्य करने होते हैं अर्थात् विद्यालय में शिक्षण कार्य के अलावा सम्पूर्ण व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए उसे एक महत्वपूर्ण कार्य करना होता है, जिसे हम निर्णय के नाम से जानते हैं।

प्रधानाध्यापकों को प्रशासन के विभिन्न मोड़ों पर समय-समय पर निर्णय लेने पड़ते हैं, यही निर्णय विद्यालय का गौरव बढ़ाते हैं। अतः सार रूप में यह कह सकते हैं कि विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए, उनके व्यवहार में आपेक्षित परिवर्तन लाने, विद्यालयों को समुदाय एवं समाज की प्रगति का महत्वपूर्ण साधन बनाने, विद्यालय का कुशल नियोजन करने, संगठन एवं प्रबन्ध का सीधा सम्बन्ध विद्यालय के प्रधानाध्यापक द्वारा लिए गए उचित व सकारात्मक निर्णय में निहित है।

इन सकारात्मक निर्णयों को लेने के लिए प्रधानाध्यापिका एवं अध्यापिकाएं निर्णय की कौनसी शैली अथवा किस प्रकार की निर्णय प्रक्रिया अपनाती है, यही इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. जयपुर संभाग के माध्यमिक विद्यालयों की सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं एवं अध्यापिकाओं की जनतांत्रिक निर्णय शैली का विद्यालयी वातावरण पर प्रभाव का अध्ययन करना।
2. जयपुर संभाग के माध्यमिक विद्यालयों की सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं एवं अध्यापिकाओं की अधिकारिक निर्णय शैली का विद्यालयी वातावरण पर प्रभाव का अध्ययन करना।
3. जयपुर संभाग के माध्यमिक विद्यालयों की सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं एवं अध्यापिकाओं की अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली का विद्यालयी वातावरण पर प्रभाव का अध्ययन करना।
4. जयपुर संभाग के माध्यमिक विद्यालयों की सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं एवं अध्यापिकाओं की मध्यवर्तीय निर्णय शैली का विद्यालयी वातावरण पर प्रभाव का अध्ययन करना।
5. जयपुर संभाग के माध्यमिक विद्यालयों की सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं एवं अध्यापिकाओं की छद्म जनतांत्रिक निर्णय शैली का विद्यालयी वातावरण पर प्रभाव का अध्ययन करना।

न्यादर्श

न्यादर्श को एकत्रित करने की विधि—इस अध्ययन में यादृच्छ न्यादर्श विधि के साथ-साथ उसकी उप पद्धति स्तरित न्यादर्श पद्धति, सौ

उद्देश्य न्यादर्श ग्रहण पद्धति तथा गुच्छ न्यादर्श ग्रहण पद्धति को अपने अनुसंधान कार्य हेतु प्रयोग किया है।

न्यादर्श—सर्वप्रथम राजस्थान के कुल संभागों में से गुच्छ न्यादर्श के आधार पर अध्ययन के लिए जयपुर संभाग का चयन किया गया फिर जयपुर संभाग के समस्त जिलों की सूची बनाई तथा बाद में प्रत्येक जिलों में से स्तरित न्यादर्श द्वारा प्रधानाध्यापिकाओं एवं अध्यापिकाओं का चयन किया गया।

जयपुर संभाग में अध्ययन के लिए पाँच जिलों को न्यादर्श में शामिल किया गया। जो कि जयपुर, अलवर, सीकर, झुंझनू एवं दौसा थे।

अध्ययन के लिये प्रयुक्त उपकरण—लिकर्ट की अभिवृत्ति मापनी के सोपानों का अनुसरण करते हुए माध्यमिक विद्यालयों की प्रधानाध्यापिकाओं एवं अध्यापिकाओं की निर्णय शैली का विद्यालय वातावरण पर प्रभाव के प्रति अभिवृत्ति जानने के लिए अभिवृत्ति मापनी की रचना की गई। अभिवृत्ति मापनी में अध्ययन के विभिन्न चरों पर आधारित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर कथनों का निर्माण किया गया, कथनों की भाषा को सरल व बोधगम्य बनाया गया तथा कुल 75 कथनों को अभिवृत्ति मापनी में रखा गया है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी विधि—अभिवृत्ति मापनी से जो सूचनाएं प्राप्त होती है वे जटिल, असम्बद्ध तथा बिखरे रूप में होती है। उचित विवेचना करने के लिए सामग्री को सुसंगठित करना आवश्यक होता है। इसके लिए सांख्यिकीय प्रक्रिया प्रयोग करनी पड़ती है। ये सांख्यिकीय प्रक्रियाएं सारणी के व्यवस्थित वर्गीकरण एवं सामग्री के संकलन के पश्चात् ही निश्चित होती है। इस अध्ययन में निम्नलिखित सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया है :-

- (1) सहसम्बन्ध (2) टी-मान (3) क्रान्तिक अनुपात

सारणी संख्या 1 : जयपुर संभाग के माध्यमिक विद्यालयों की सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं व अध्यापिकाओं की जनतांत्रिक व अधिकारिक निर्णय शैलियों का विद्यालय वातावरण पर प्रभाव के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन (प्रतिशत में)

(पोस्टकोर्ब POSDCORB के संदर्भ में)

क्र. सं.	एकांशों के उत्तर विकल्प	पूर्ण सहमत		सहमत		अनिश्चित		असहमत		पूर्ण असहमत	
		जनतांत्रिक निर्णय शैली	अधिकारिक निर्णय शैली	जनतांत्रिक निर्णय शैली	अधिकारिक निर्णय शैली	जनतांत्रिक निर्णय शैली	अधिकारिक निर्णय शैली	जनतांत्रिक निर्णय शैली	अधिकारिक निर्णय शैली	जनतांत्रिक निर्णय शैली	अधिकारिक निर्णय शैली
1.	योजना सम्बन्धी निर्णय	40	18	20	42	10	10	20	12	10	18

क्र. सं.	एकांशों के उत्तर विकल्प	पूर्ण सहमत		सहमत		अनिश्चित		असहमत		पूर्ण असहमत	
		जनतांत्रिक निर्णय शैली	अधिकारिक निर्णय शैली	जनतांत्रिक निर्णय शैली	अधिकारिक निर्णय शैली	जनतांत्रिक निर्णय शैली	अधिकारिक निर्णय शैली	जनतांत्रिक निर्णय शैली	अधिकारिक निर्णय शैली	जनतांत्रिक निर्णय शैली	अधिकारिक निर्णय शैली
2.	संगठन/व्यवस्था संबंधी निर्णय	46	30	25	26	18	22	11	14	00	08
3.	स्टॉफ संबंधी निर्णय	22	34	28	18	18	24	22	22	10	02
4.	निर्देशन सम्बन्धी निर्णय	36	30	24	20	16	26	20	14	04	10
5.	विभिन्न कार्यों में समन्वय स्थापित करने सम्बन्धी निर्णय	34	52	24	20	18	18	22	10	02	00
6.	प्रतिवेदन सम्बन्धी निर्णय	26	42	36	18	12	10	16	16	10	14
7.	बजट (आय-व्यय ब्यौरा) सम्बन्धी निर्णय	28	34	38	26	10	20	15	08	09	12

सारणी संख्या 2 : जयपुर संभाग के माध्यमिक विद्यालयों की सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं व अध्यापिकाओं की अहस्तक्षेपीय व मध्यवर्ती निर्णय शैलियों का विद्यालय वातावरण पर प्रभाव के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन (प्रतिशत में)

(पोस्टकोर्ब POSDCORB के संदर्भ में)

क्र. सं.	एकांशों के उत्तर विकल्प	पूर्ण सहमत		सहमत		अनिश्चित		असहमत		पूर्ण असहमत	
		अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली	मध्यवर्ती निर्णय शैली	अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली	मध्यवर्ती निर्णय शैली	अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली	मध्यवर्ती निर्णय शैली	अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली	मध्यवर्ती निर्णय शैली	अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली	मध्यवर्ती निर्णय शैली
1.	योजना सम्बन्धी निर्णय	11	58	34	26	24	10	19	06	12	00
2.	संगठन/व्यवस्था संबंधी निर्णय	22	53	33	32	19	12	17	03	09	00
3.	स्टॉफ संबंधी निर्णय	18	49	34	38	16	09	20	04	12	00
4.	निर्देशन सम्बन्धी निर्णय	20	54	24	18	28	17	16	11	12	00
5.	विभिन्न कार्यों में समन्वय स्थापित करने सम्बन्धी निर्णय	26	59	30	21	10	13	20	07	14	00
6.	प्रतिवेदन सम्बन्धी निर्णय	10	52	30	27	17	11	23	10	20	00
7.	बजट (आय-व्यय ब्यौरा) सम्बन्धी निर्णय	17	56	42	26	20	10	13	08	08	00

सारणी संख्या 3 : जयपुर संभाग के माध्यमिक विद्यालयों की सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं व अध्यापिकाओं की छद्म जनतांत्रिक निर्णय शैली का विद्यालय वातावरण पर प्रभाव के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन (प्रतिशत में)

(पोस्टकोर्ब POSDCORB के संदर्भ में)

क्र. सं.	एकांशों के उत्तर विकल्प	पूर्ण सहमत	सहमत	अनिश्चित	असहमत	पूर्ण असहमत
1.	योजना सम्बन्धी निर्णय	40	44	08	08	00
2.	संगठन/व्यवस्था संबंधी निर्णय	38	40	18	04	00

क्र. सं.	एकांशों के उत्तर विकल्प	पूर्ण सहमत	सहमत	अनिश्चित	असहमत	पूर्ण असहमत
3.	स्टॉफ संबंधी निर्णय	44	41	10	05	00
4.	निर्देशन सम्बन्धी निर्णय	32	45	16	07	00
5.	विभिन्न कार्यों में समन्वय स्थापित करने सम्बन्धी निर्णय	20	56	14	10	00
6.	प्रतिवेदन सम्बन्धी निर्णय	27	52	12	09	00
7.	बजट (आय-व्यय ब्यौरा) सम्बन्धी निर्णय	21	50	18	11	00

समग्र सारणियों का विश्लेषण 4 : जयपुर संभाग के माध्यमिक विद्यालयों की सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं व अध्यापिकाओं की विभिन्न निर्णय शैलियों का विद्यालय वातावरण पर प्रभाव के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन (प्रतिशत में)

क्र. सं.	अभिवृत्ति के रूप या विषय विकल्प	पूर्ण सहमत	सहमत	अनिश्चित	असहमत	पूर्ण असहमत
1	जनतांत्रिक निर्णय शैली	33	28	15	18	06
2	अधिकारिक निर्णय शैली	34	24	19	14	09
3	अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली	18	32	20	18	12
4	मध्यवर्तीय निर्णय शैली	55	27	11	07	00
5	छद्म जनतांत्रिक शैली	32	47	13	08	00

अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष

- (1) जयपुर संभाग की सामान्य वर्ग की 61% प्रधानाध्यापिकाएं व अध्यापिकाएं जनतांत्रिक निर्णय शैली का विद्यालय वातावरण पर प्रभाव के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखती हैं।
- (2) जयपुर संभाग की सामान्य वर्ग की 58% प्रधानाध्यापिकाएं व अध्यापिकाएं अधिकारिक निर्णय शैली का विद्यालय वातावरण पर प्रभाव के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखती हैं।
- (3) जयपुर संभाग की सामान्य वर्ग की 50% प्रधानाध्यापिकाएं अध्यापिकाएं अहस्तक्षेपीय निर्णय शैली का विद्यालय वातावरण पर प्रभाव के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखती हैं।
- (4) जयपुर संभाग की सामान्य वर्ग की 82% प्रधानाध्यापिकाएं व अध्यापिकाएं मध्यवर्तीय निर्णय शैली का विद्यालय वातावरण पर प्रभाव के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखती हैं।
- (5) जयपुर संभाग की सामान्य वर्ग की 79% प्रधानाध्यापिकाएं व अध्यापिकाएं छद्म जनतांत्रिक निर्णय शैली का विद्यालय वातावरण पर प्रभाव के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखती हैं।

अध्ययन की परिसीमाएँ

- (1) प्रस्तुत अध्ययन जयपुर संभाग के राजकीय व गैर-राजकीय माध्यमिक विद्यालयों तक ही सीमित है।
- (2) अध्ययन में सरकारी व गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों की 250 सामान्य वर्ग की प्रधानाध्यापिकाओं एवं अध्यापिकाओं को ही सम्मिलित किया गया।

- (3) प्रधानाध्यापिकाओं एवं अध्यापिकाओं का चयन यादृच्छिक न्यादर्श द्वारा किया गया।

- (4) अध्ययन के आंकड़ों का विश्लेषण व व्याख्या सांख्यिकीय विधियों के आधार पर की गई।

- (5) अभिवृत्ति मापनी की विश्वसनीयता अर्द्ध-विच्छेदन विधि द्वारा ज्ञात की गई।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुलिक, लूथर, नोट्स ऑन दी थ्योरी ऑफ अर्गनाइजेशन, इन लूथर गुलिक एण्ड ले.उरविक, पेपर्स ऑन दी साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयॉर्क - इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी, 1937, पृ. 13
2. साइमन, हर्वर्ट, एडमिनिस्ट्रेशन बिहेवर, 1951 उद्धृत आर. एल. नवलखा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर, 1998-99, पृ. 179
3. ट्रेवर्स एण्ड राबर्ट, एम डब्ल्यू, "शिक्षात्मक अनुसंधान की प्रस्तावना", हिन्दी संस्करण, किताब महल प्रा.लि., इलाहाबाद, 1963, पृ. 68
4. बूचर, चार्ल्स ए., एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ स्कूल हेल्थ एण्ड फिजीकल एजुकेशन प्रोग्राम्स, दी सी बी. मोस्वे कम्पनी, 1958, द्वितीय संस्करण लंदन, पृ. 22
5. ब्रिजेज, ई. एम., मॉडल फॉर शेयरिंग डिसिजन मेकिंग इन द स्कूल प्रिंसिपलशिप, एज्यूकेशनलस एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 111 नम्बर 1, 1967, पृ. 51
6. मंगल, डॉ. एस. के., विद्यालय संगठन एवं प्रबन्ध, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 2000, पृ. 22

7. क्रोनवैक, एल. जे. “टेस्ट रिलायबिलिटी - इट्स मीनिंग एण्ड डिटरमिनेशन” साइकोमैट्रिक, वांशिगटन, 1947, 12-1-16 उद्धृत, जे. पी. गिल्फर्ड-फन्डामेंटल स्टैटिक्स इन साइकोलोजी, पंचम संस्करण मेग्राहिल, न्यू दिल्ली, 1973, पृ. 403
8. दी ह्यूमेनिटीज एण्ड सोशियल साइंसेज, डिजिटेशन एब्सट्रेक्ट इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी माइक्रोफिल्म्स इंटरनेशनल एलाइड पब्लिशर्स, सब्सक्रिप्शन एजेन्सी UMI डिपार्टमेंट माउन्ट रोड, मद्रास, इंडिया, वाल्यूम 56 न. 8 फरवरी, 1997 पृ. सं. 2224
9. परिप्रेक्ष्य“ शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक आर्थिक संदर्भ वर्ष -10 अंक 1 अप्रैल 2003, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली
10. नीपा राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली की कम्प्यूटर वेबसाइट www.neipa.org से डिजीजन मेकिंग विषय से सम्बन्धित शाखा से ली गई है।

चौधरी चरणसिंह के आर्थिक विचार

डॉ. हरगोविंद सिंह

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान

गीता देवी महाविद्यालय, खैरथल, अलवर (राजस्थान)



शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में चौधरी चरणसिंह के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता पर प्रकाश डाला है। भारतीय समाज में व्याप्त गरीबी, बेरोजगारी एवं अशिक्षा के प्रति चिन्ता व्यक्त की है तथा किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु कृषि के विकास पर बल दिया है। कृषि ही एक ऐसा साधन है जिससे उद्योग एवं व्यापार विकसित होते हैं। चौधरी जी ने किसानों की आर्थिक दशा सुधारने हेतु चकबन्दी कानून, जमींदारी-उन्मूलन विधेयक एवं कृषि सुधार जैसे अधिनियमों को पारित कर कृषि से संबंधित समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है जो वर्तमान में प्रासंगिक है। भारत की आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु सबसे पहले ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना होगा, उद्योगों को ग्रामीण क्षेत्र में लगाना होगा। जिससे शहरों की ओर पलायन रुकेगा तथा बेरोजगार लोगों को पर्याप्त रोजगार प्राप्त होगा। इस शोध पत्र में चौधरी चरण सिंह के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता एवं उपयोगिता में वृद्धीकरण हेतु उपयोगी सुझावों को भी सम्मिलित किया है जो भारतीय समाज की आर्थिक स्थिति सुधारने में काफी सफल होंगे।

संकेताक्षर : आर्थिक प्रस्थिति, चकबन्दी अधिनियम, कृषि आयकर अधिनियम

मुगल शासन से विरासत में आर्थिक गतिहीनता मिली जो ब्रिटिश काल तक चलती रही और 1947 में जब विदेशियों को देश से बाहर किया गया, उस समय अर्थव्यवस्था एक ऐसी स्थिति में आ गई थी जब भारत के काफी लोग यथार्थ में लगभग भूखे थे और अनेक लोग गरीबी रेखा से नीचे अपना जीवन यापन कर रहे थे। केवल यही स्थिति नहीं थी-कृषि उत्पादन से जो कुछ भी बच पाता था, उसे विदेशी जमींदार और उधार देने वाले व्यक्ति उड़ा ले जाते थे और उसका औद्योगिक वृद्धि के लिए उपयोग नहीं हो पाता था। चौधरी चरणसिंह देश की आर्थिक स्थिति से पूरी तरह परिचित थे उन्होंने विचार किया कि देश का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक गाँवों के लोगों का विकास नहीं होगा। वे हमेशा ग्रामीण किसानों की दशा के प्रति चिन्तित रहते थे। उन्होंने उनकी दशा सुधारने के लिए 'जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम', 'चकबन्दी अधिनियम', 'कृषि आयकर अधिनियम' जैसे कानूनों का निर्माण करवाया था।

ग्राम विकास की अपनी नीति के बारे में चरणसिंह ने लिखा, "कठोर सत्य यह है कि गरीबों की बेहिसाब आबादी गाँवों में रहती है। इसे दूर करें? नई तकनीक ने छोटी जोत के फार्मों को

भी लाभकारी बनाना सम्भव कर दिया है। अतः तीव्र खेतिहर विकास बड़ी संख्या में लोगों को लाभदायक रोजगार दिला सकता है एवं खाद्यान्नों, दालों, खाद्य तेलों की कमी को दूर किया जा सकता है।"¹ आज की समस्या यह है कि खेती पर बहुत ज्यादा लोग निर्भर हैं और उनके जीवन निर्वाह के लायक साधन जुटाना असम्भव है। बड़े पैमाने पर खेतिहर उत्पादन के युग को खत्म करना होगा। इस तरह खेती सामंत-गुलाम सम्बन्धों को जन्म देती है। भूमिहीन मजदूर बंधुआ गुलाम की जिन्दगी जीते हैं। उनको मुक्त कराना है। इसलिए लाभदायक रोजगार के अन्य उपायों का पता लगाना होगा और इन उपायों को गाँवों में ही खोजना होगा। इससे पहले कि शहरों की तरफ पलायन हो एवं परिणामतः शहरी विकास की विस्फोटक स्थिति पैदा हो जिससे भीड़-भाड़, झुग्गी एवं प्रदूषण जैसी समस्याएं जुड़ी हुई हैं, देहात उद्योगों एवं सामाजिक अंतःसंरचना वगैरह सही लाभदायक रोजगार का अवसर निकालना पड़ेगा। इससे न सिर्फ देहातों एवं शहरों के बीच की आर्थिक एवं सामाजिक खाई पटेगी बल्कि सामाजिक धनतंत्र का भी खात्मा होगा।² भारत एक अल्पविकसित देश है- बेहद गरीबी का शिकार है। गरीबी का अर्थ है उन चीजों का अभाव जिनसे जिन्दा रहने के

लिए मनुष्य की आवश्यकताएं पूरी होती हैं - चाहे ये चीजें खेती से पैदा होती हों या दूसरे क्षेत्रों में तैयार की जाती हो इन सभी चीजों का मूल स्रोत भूमि है, भूमि से ही खाद्य पदार्थ उपजते हैं, जिनका मनुष्य सेवन करता है और भूमि पर ही वह कच्चा माल पैदा होता है जिससे कृषितर माल का उत्पादन होता है, और यह माल भी मनुष्य के उपयोग में आता है।³ 'सारी आबादी के लिए खाद्य-सामग्री उपलब्ध करने के साथ-साथ कृषि को कपड़ा मीलों, तेल मीलों, चावल की मीलों, चटकलों, चीनी के कारखानों, वनस्पति की मीलों और तम्बाकू के कारखानों जैसे उपभोक्ता उद्योगों को बराबर चलाते रहने के लिए निरन्तर अधिक से अधिक मात्रा में कच्चा माल मुहैया करना होता है - और कृषि का अर्थ है भूमि का उपयोग व प्रयोग। इसी प्रकार जंगलों व पशुओं से, जिनका पालन पोषण भूमि ही करती है, मनुष्य को इमारती लकड़ी, गोंद रेसिन, खालें व हड्डियाँ इत्यादि विभिन्न प्रकार की वस्तुएं उपलब्ध होती हैं और इन वस्तुओं से असंख्य उपयोग चलते हैं। इसके अतिरिक्त खानों व खदानों से, भूमि में पत्थर, कोयला, तेल, लोहा अन्य धातु खनिज पदार्थ निकाले जाते हैं।'⁴ अतः कृषि के द्वारा ही देश का विकास किया जा सकता है। इसीलिए चौधरी चरणसिंह ने कहा है - 'देश की खुशहाली का रास्ता खेतों और खलियानों से होकर गुजरता है।'

महात्मा गाँधी ने कहा है 'प्रारम्भ से ही मेरा यह अटूट विश्वास रहा है कि केवल कृषि ही इस देश के लोगों को अचूक और सतत् सहायता प्रदान करती है।'⁵ 'कृषि न केवल फसलें उगाकर धन कमाने का ही तरीका है; यह न केवल उद्योग या व्यापार है अपितु यह वास्तव में एक सार्वजनिक कार्य या सेवा है जिसे निजी तौर पर व्यक्ति राष्ट्रीय हित में भूमि की देखभाल और प्रयोग के लिए करते हैं; किसान अपने भरण-पोषण तथा निजी लाभ के लिए कृषि करते हैं और इस प्रकार वे राष्ट्रीय जीवन के आधार के अभिरक्षक हैं। इसलिए कृषि स्पष्ट और विवादहीन लोकहित से प्रभावित होती है और इसकी प्रतिष्ठा राष्ट्रीय चिन्ता का विषय है जिसके लिए विवेकशील और दूरगामी राष्ट्रीय नीतियों की आवश्यकता है ताकि इसमें निहित प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों का संरक्षण ही न हो अपितु राष्ट्रीय सुरक्षा की व्यवस्था भी की जाए, चतुर्दिक समृद्धि को प्रोत्साहन दिया जाए और सामाजिक तथा राजनीतिक स्थायित्व को सुदृढ़ किया जाए।'⁶ इस देश में गरीबी हटाना अथवा आर्थिक विकास, कृषि की समृद्धि के बिना नहीं हो सकता या उसकी समृद्धि के बाद ही समस्या का निदान होगा अथवा कृषि समृद्धि के साथ ही साथ यह समस्या सुलझ सकेगी। कृषि में पशु-पालन, मत्स्य-पालन और वन शामिल किए जाते हैं जिनसे दो

प्रकार की वस्तुएं उत्पन्न की जाती हैं अर्थात् मनुष्यों के खाने के लिए भोजन और उद्योग चलाने के लिए कच्चा माल।⁷

चौधरी चरण सिंह ने देश के विकास के लिए दो उपाय सुझाये, पहला प्रति एकड़ कृषि उत्पादन बढ़े, और साथ-साथ प्रति एकड़ काम करने वालों की संख्या घटे। प्रति एकड़ उत्पादकता बढ़ाने का एक ही रास्ता था कि भूमि को जोतने तथा बोनने वालों को जोत की भूमि का मालिकाना हक मिले ताकि वे उसे अपनी मानकर भली प्रकार कमायें। जमींदारी व्यवस्था के समय, खेत जोतने तथा बोनने वाले को भूमि का मालिकाना हक प्राप्त न था। अतः जमींदार प्रतिवर्ष वह भूमि किसी और को दे दिया करता था। इस स्थिति को समाप्त करने के लिए चौधरी चरणसिंह ने उत्तर प्रदेश में जमींदारी-उन्मूलन कानून बनाया और बिना किसी संशोधन के पास कराया। इसके बाद जमीन का मालिक बनकर किसान ने भूमि को उसी तरह सींचा, पाला और उर्वर बनाया, जिस तरह वह अपनी संतान को बनाता है। इसका परिणाम हुआ कि देश खाद्यान्नों के आयात पर सन् 1943 से 1970 तक के वर्षों में प्रतिवर्ष 207-8 करोड़ रुपये खर्च किया जो पूर्व की अपेक्षा काफी कम था। देश की समृद्धि का दूसरा उपाय बताया कि प्रति एकड़ काम करने वालों की संख्या कम हो। वह किसानों से कहते थे - 'अगर तुम्हारे तीन बेटे हैं, तो दो को बाहर कोई काम करने को भेज दो। दो बच्चे बाहर जाकर किसी काम से कमाकर घर लायें और एक खेती को कमाये, इससे जमीन का बंटवारा न होगा और घर में एकता बनी रहेगी। यह थी उनकी नीति, जिसका मूलाधार था, किसान की समृद्धि के द्वारा, शहर की समृद्धि को सुनिश्चित करना और अन्ततः राष्ट्र को समृद्ध बनाना। अन्य नेताओं ने उद्योगों के विकास पर बल देकर देश को समृद्ध बनाने की योजना की। अतः उद्योगों का विकास तो हो गया, लेकिन आज औद्योगिक उत्पादनों को खरीदने वालों का अभाव है, कारण है जनता के संसाधनों की कमी। फलतः उद्योग-क्षेत्र में मंदी आई, काम करने वालों की संख्या घटी और बेकारी बढ़ी। इससे संकेत यही मिलता है कि भारत की सरकारों की आर्थिक नीति गलत रही है। वह आगे कहते हैं - 'हमारी आर्थिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसके द्वारा भूमि का अधिक से अधिक उपयोग हो सके - जिसका अर्थ है भूमि प्रति एकड़ अधिक से अधिक उपज दे सके।'⁸ अतः जरूरत है लघु और कृषि आधारित उद्योगों को गाँव-गाँव ले जाने की। ग्रामीण क्षेत्र का समग्र विकास तभी हो सकता है, जब इलेक्ट्रॉनिक क्षेत्र में हुई तरक्की, उसकी उच्च तकनीकी का लाभ भी गाँव-गाँव तक पहुंचे। गाँववासी उसके बारे में पूरी जानकारी रख सकें और उन तकनीकों का लाभ उठा सकें, तो हमारी यह बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। गाँव के आदमी को

सुख-समृद्ध बनाकर ही देश को सुख-समृद्ध बनाया जा सकता है। चौधरी चरणसिंह ने कहा - “नगरों और गाँवों के बीच जो औपनिवेशिक सम्बन्ध विकसित हुआ है वह केवल उसी समय मिटेगा जब उपभोग की वस्तुएं जैसे साबुन से लेकर कपड़े तक गाँव में ही पैदा की जाएं और उन्हें वहां पर बेचा जाए।”

चौधरी चरणसिंह द्वारा तैयार किया गया ‘जमींदारी उन्मूलन विधेयक’ ‘राज्य के कल्याणकारी निदेशक सिद्धान्त’ की परिकल्पना पर आधारित था। राज्य के किसान यदि आजादी के बाद भी शोषण के उसी शिकंजे में जकड़े रहते, तो उनके लिए 15 अगस्त 1947 का कोई महत्व न रहता, न ही आजादी उनके लिए अर्थपूर्ण होती। गाँधी और गाँधीवाद के सच्चे अनुयायी चौधरी चरणसिंह के लिए यह सम्भव न था कि अवसर मिलने के बावजूद वह शोषण को ऐसी स्थिति में बरकरार रहने देते।⁹ उत्तर प्रदेश ग्रामीण आबादी एक्ट के तहत, उन्हें अधिकार दे दिया गया कि वे अपने कच्चे मकानों को पक्का कर सकते हैं तथा घर के साथ लगी जमीन को सुधार-संवार सकते हैं। यह कानून अनुसूचित जातियों के लिए वरदान साबित हुआ, क्योंकि अपनी आवासीय झोंपड़ी पर उनका स्वामित्व नहीं रहने के कारण जमींदार लोग बेदखली की धमकी देकर उनसे बेगारी करवाते थे और मुफ्त काम करने के लिए बाध्य करते थे। इस कानून में यह भी जोड़ दिया गया कि प्रत्येक ग्रामवासी घर के साथ लगी जमीन पर लगाए गए पेड़ों और कुओं का भी स्वामी होगा। 1 जुलाई 1952 को ‘जमींदारी उन्मूलन विधेयक’ लागू हुआ था। जमींदारों के लिए न्यूनतम भूमि 6.25 एकड़ रखी गई थी। इन कानूनी विधेयक ने बिचौलियों के अधिकार को तो खत्म कर दिया। चौधरी चरणसिंह ने भूमिसेवियों की चार श्रेणियां निर्धारित कीं। भूमिधर (भूमि का धारक), सीरदार (जोतने वाला), आसामी (स्वामित्व रहित) और अधिवासी (दखलकार) जिसे सिर्फ अस्थायी या शिकमी काश्तकारी का हक हो। चौधरी चरणसिंह ने ग्रामीण परिवेश में पनप रही ‘जमींदारी प्रथा’ को समूल समाप्त कर सभी ग्रामीण लोगों को कृषि करने के लिए जमीन दिलाई। यह उनकी विशेष उपलब्धि है।

अन्य कई देशों के समान भारत में भूमि जोतें उन छोटे-छोटे टुकड़ों या भूमि खण्डों को अलग-अलग करके पुनः बनाई गई है जो गाँव के कुल कृषि योग्य क्षेत्र में बिखरी पड़ी है क्योंकि ऐतिहासिक अतीत में आदरणीय महानुभावों की यह इच्छा थी कि कुछ किसानों को केवल अच्छी भूमि और अन्य किसानों को खराब भूमि न मिले अथवा ऐसी भूमि न मिले जहां केवल एक ही प्रकार की फसल उगाई जा सकती है। फिर भी इस प्रणाली की इतनी हानियां हैं कि विश्वभर के कृषि अर्थशास्त्रियों ने चकबन्दी को ऐसा

समझा है कि एक ही भूस्वामी के अलग-अलग बिखरे हुए खेतों की एक ही खण्ड में अथवा यथासंभव कम से कम खण्डों में चकबन्दी कर दी जाए। ऐसा करना कृषि-सुधार की दिशा में पहला कदम ही है।¹⁰ उन्होंने बैलों को इधर-उधर हाँकते हुए देखा, एक खेत से दूसरे खेत ले जाते देखा। इससे समय की बर्बादी और व्यर्थ की मेहनत थी। यही तो इस किसान मसीहा को सोचना था। चकबन्दी के बाद किसान को खेती के सारे औजार अपने चक या जोत पर एक बार ले जाना काफी था। किसान वहीं एक जगह रहने का मकान बना सकेगा, पशुओं को बाँधने की जगह बनवा लेगा, भूसा और चारा एक स्थान पर रहेगा, एक ही खाद का गड्डा रखेगा, एक कोल्हू गन्ने का रस निकालने का होगा, पूरी जमीन की एक साथ निगरानी और किसान और बैलों के श्रम का बेहतर उपयोग हो सकेगा। इस तरह की खेती इंग्लैण्ड और दूसरे देशों की आवासीय क्षेत्र वाली खेती की तरह होगी और उपज भी कहीं अधिक होगी।¹¹ कृषि एवं राजस्व मंत्री के रूप में चौधरी चरणसिंह ने उत्तर प्रदेश में 1953 में चकबन्दी अधिनियम पारित कराया जो 1954 में लागू हुआ। चकबन्दी के परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश में आठ वर्ष में 1,62,63,809 खेतों के 28, 27, 940 चक बना दिये गये। एक चक में औसतन 5.75 खेत शामिल थे। नतीजा यह निकला कि इन खेतों के मलिकों को फसल की रखवाली, सिंचाई के लिए पानी के मुश्किल इन्तजाम तथा फसल को खेत से खलिहान तक ले जाने की व्यवस्था करने में सुविधा हो गयी, साथ ही मानव श्रम में भी बचत हो गयी। कृषि उपजों में भी खासी वृद्धि देखने में आई।¹² चौधरी चरणसिंह का मानना है कि श्रम प्रधान उद्यम कुल मिलाकर देश के लिए लाभदायक होते हैं क्योंकि हमारे देश में पूंजी का अभाव है, गरीबी की अधिकता है और श्रम अधिक है। पश्चिमी देशों में सरकारों और अर्थशास्त्रियों को यह चिन्ता होती है कि श्रम को बढ़ाया जाए जबकि एक राष्ट्र के रूप में उनकी चिन्ता पूंजी की वृद्धि के लिए होनी चाहिए। हमारे पास पूंजी का अभाव है लेकिन श्रम का अभाव नहीं जैसा कि उन्नत देशों में है। इन दो मार्गों में से, अर्थात् कुछ ही व्यक्तियों के लिए अधिक आय अथवा पूंजी प्रधान उद्यम एक रास्ता है और सभी उत्पादनों के लिए आय बढ़ाने वाला मध्यम मार्ग अथवा श्रम प्रधान दूसरा रास्ता है। हमें दूसरे रास्ते को चुनना है जिसे जापान ने भी अपनाया है। “आम जनता का रोग धन का अधिक अभाव नहीं है बल्कि कार्य का अधिक अभाव है। श्रम ही धन है। कोई भी व्यक्ति जो लाखों लोगों को उनके घरों में प्रतिष्ठित श्रम की व्यवस्था कर सकता है, वही व्यक्ति उन्हें अन्न और कपड़ा भी उपलब्ध कराता है अथवा यह कहिए कि धन पैदा कराता है। ‘चर्खा’ इसी प्रकार के श्रम की व्यवस्था

करता है इसलिए जब तक इसके स्थान पर अपेक्षाकृत कोई अन्य आधार नहीं मिलेगा तब तक 'चर्खा' ही इस क्षेत्र में अपना अधिक प्रभाव रखेगा।¹³ उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि "करोड़ों व्यक्ति बेकार हैं। ऐसी स्थिति में भारत बड़ी मशीनों को स्वीकार नहीं कर सकता जो मजदूरों को और अधिक विस्थापित कर देंगी। इन मशीनों से उनकी बेरोज़गारी बढ़ेगी और वे नष्ट हो जाएंगे। हमारी समस्या यह है कि हम इन करोड़ों लोगों के लिए रोज़गार तलाश करें, यह नहीं कि उनके श्रम को किस प्रकार बचाएं। उनमें पहले ही लगातार बेरोज़गारी के कारण सुस्ती या उदासीनता आ गई है जो बहुत ही निराशाजनक है।"¹⁴ अतः चौधरी चरणसिंह श्रम प्रधान कुटीर एवं लघु उद्योगों की स्थापना पर बल देते थे क्योंकि श्रम प्रधान उद्योग न केवल अधिक उत्पादन करते हैं बल्कि अधिक लोगों को रोज़गार दिलाते हैं। यदि बड़े उद्योग लगाये जायें तो वे ग्रामीण क्षेत्रों में लगाये जायें जिससे अधिक से अधिक ग्रामीण बेरोज़गार जनता को रोज़गार मिल सके। इसलिए ग्रामीण उद्योगों का विकास राज्य के कार्य का ऐसा भाग होना चाहिए जैसा कि कृषि के उत्पादन की वृद्धि मानी जाती है। वस्तुतः एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि कृषि उत्पादन में वृद्धि उपलब्ध मानव-शक्ति की पूर्णरूपेण उपयोगिता की पूर्व कल्पना की जाती है।

निष्कर्ष

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि चौधरी चरणसिंह ने भारतीय आर्थिक स्थिति को सुधारने हेतु कृषि के भार को कम करने तथा कृषि के साथ रोज़गार के अन्य साधन जुटाने पर बल दिया है। जो लोग भूमिहीन, मजदूर, बंधुआ गुलाम की जिंदगी जीते हैं उनके लिए जमींदारी-उन्मूलन विधेयक बनाया जिससे उनको पर्याप्त कृषि योग्य भूमि का मालिकाना हक मिला। उद्योगों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता होती है जो कृषि द्वारा ही पैदा होता है। अतः कृषि विकास पर बल देना होगा। भारत श्रम प्रधान देश है और श्रम ही धन है। चौधरी चरणसिंह श्रम प्रधान उद्योग लगाने के पक्ष में हैं इसलिए लघु एवं कुटीर उद्योगों का समर्थन

किया है जिससे भारतीय जनता को पर्याप्त मात्रा में रोज़गार के अवसर मिलेंगे। साथ ही स्थानीय स्तर पर सभी आवश्यकता की वस्तुएं उपलब्ध हो सकेंगी। ऐसा भारतीय आर्थिक पुर्ननिर्माण के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

संदर्भ सूची

1. सिंह राजेन्द्र, 'देख कबीरा रोया', लोकायत प्रकाशन, जयपुर, पृ. 346
2. उपर्युक्त, पृ. 346
3. चौधरी चरणसिंह, 'भारत की अर्थनीति गांधीवादी-रूपरेखा' प्रकाशक-ए. वी. सेतुमाधवन, किसान ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृ. 11
4. उपर्युक्त, पृ. 11
5. चौधरी चरणसिंह, 'भारत की भयावह आर्थिक स्थिति: कारण और निदान' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1982, पृ. 37
6. उपर्युक्त, पृ. 38
7. उपर्युक्त, पृ. 39
8. सिंह, डॉ. नत्थन, 'संघर्षों के तूफान से जूझता एक दीपस्तम्भ, किसान मसीहा चौधरी चरणसिंह (1902-1987) प्रकाशक-ए. वी. सेतुमाधवन, किसान ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2002, पृ. 49
9. शर्मा, भोला शंकर, 'संघर्षों से जूझते दीप स्तम्भ की गाथा, किसान ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृ. 8
10. चौधरी चरणसिंह, 'भारत की भयावह आर्थिक स्थिति: कारण और निदान' प्रकाशक-नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 182
11. सिंह, राजेन्द्र, एक और कबीर चौधरी चरणसिंह का जीवन चरित्र प्रथम खण्ड फरवरी 1968 तक, कलम प्रकाशन, 52 दूसरी मंजिल, न्यू पुरोहितजी का कटला, जयपुर, 1996, पृ. 114
12. शर्मा, भोला शंकर, धरा पुत्र चौधरी चरणसिंह और उनकी विरासत, राष्ट्रीय लोकदल, नई दिल्ली, 2006, पृ. 7
13. गाँधी, महात्मा, 'यंग इण्डिया' 18 जून, 1925
14. उपर्युक्त, 2 जनवरी, 1937

सर्वधर्म समभाव: मानव कल्याण का आधार स्तम्भ



सुमन मौर्य

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

भारतीय संस्कृति की अनूठी विशेषता है- सर्वधर्म समभाव व विविधता में एकता। उक्त भावना पर आधारित होने के कारण ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था व संस्कृति विश्व में जगद्गुरु के रूप में विख्यात है। सर्वधर्म समभाव पर आधारित सामाजिक व्यवस्था सर्वांगीणता, विशालता, प्रेम और सहिष्णुता की दृष्टि से अग्रणी स्थान रखती है। विश्व के धर्मों में सबसे ज्यादा विविधता भारत में पाई जाती है। साम्प्रदायिकता के बीज के मध्य भारत आज भी सहिष्णुता, समता, सर्वधर्म समभाव के रूप में विशिष्ट संस्कृति को प्रतिबिंबित करती है। इस लेख में प्राप्त तथ्यात्मक जानकारी को समग्र रूप से विश्लेषित किया गया है जिससे सर्वधर्म समभाव की स्थापना मानव कल्याण को दृष्टिगत रखते हुए की जा सके। प्रस्तुत शोध के माध्यम से भारतीय व्यवस्था में साम्प्रदायिकता की समस्या व सर्वधर्म समभाव की स्थापना के सुझावों का निरूपित करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर : साम्प्रदायिकता, मानव कल्याण, सर्वधर्म समभाव, संविधान, धर्मनिरपेक्षता

भारतीय संस्कृति सर्वधर्म समभाव पर आधारित अप्रतिम, अद्वितीय, व अनूठी संस्कृति है जो कई घटकों व तत्वों का समागम है। भारत का महान इतिहास, विलक्षण भूगोल और सिन्धु घाटी सभ्यता के दौरान निर्मित व वैदिक युग में विकसित बौद्ध धर्म एवं जैन-धर्म, के विचारों व शिक्षाओं का समावेश है। भारत के रीति-रिवाज, भाषाएं, प्रथाएं और परम्पराएं एक-दूसरे से परस्पर संबंधों में महान विविधताओं का अद्वितीय उदाहरण है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था मुख्य रूप से उच्च आदर्शों पर आधारित है। भारत कई धार्मिक प्रणालियों जैसे जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म और सनातन धर्म जैसे धर्मों का जनक है। इस मिश्रण से भारत में उत्पन्न हुए विभिन्न धर्म और परम्पराओं ने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया तथा भारतीय समाज व संस्कृति ने वैश्विक सामाजिक व्यवस्था व संस्कृति को दशा व दिशा भी प्रदान की। भारतीय सामाजिक व्यवस्था प्राचीनतम व्यवस्थाओं में से एक है जो कि कर्म प्रधान संस्कृति पर आधारित है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था व संस्कृति निरन्तरता व सतृप्ता को कायम रखते हुए कई हजार वर्ष तक काल के क्रूर थपेड़ों को झेलती हुई आज भी जीवित है वहीं दूसरी ओर मेसोपोटामिया, असीरियन, बेबीलोनियन, मिस्त्र, ईरान, यूनान और रोम की संस्कृतियाँ व

सामाजिक व्यवस्था काल के ग्रास में समा चुकी है व नेस्तनाबूद हो चुकी है।

उक्त भावना पर आधारित होने के कारण ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था व संस्कृति विश्व में जगद्गुरु के रूप में विख्यात है क्योंकि सम्पूर्ण प्रायद्वीप को सभ्यता का पाठ पढ़ाया व रन् जंगली जातियों को भी सभ्य बनाया, साइबेरिया के सिंहल (श्रीलंका) तक और मैडागास्कर टापू, ईरान तथा अफगानिस्तान से प्रशान्त महासागर के बोरिनियो, बाली के विशाल भूखण्डों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। सर्वधर्म समभाव पर आधारित सामाजिक व्यवस्था सर्वांगीणता, विशालता, प्रेम और सहिष्णुता की दृष्टि से अग्रणी स्थान रखती है। भारत में बोली जाने वाली भाषाओं की बड़ी संख्या ने यहां की संस्कृति और पारम्परिक विविधता को बढ़ाया है। भारत में कुल मिलाकर 415 भाषाएं बोली जाती हैं। भारतीय भाषाओं ने सर्वधर्म समभाव में महती भूमिका का परिचय दिया है।

भारतीय धर्म विश्व के धर्मों में प्रमुख है, जिसमें हिन्दू, बौद्ध, सिख, जैन आदि जैसे धर्म शामिल हैं। विश्व के धर्मों में सबसे ज्यादा विविधता भारत में पाई जाती है। सिख, जैन, धर्म, और विशेष रूप से बौद्ध धर्म का केवल भारत में नहीं बल्कि पूरे विश्व भर में प्रभाव है। भारतीय जीवन में धर्म की मजबूत भूमिका के

बावजूद नास्तिकता और अज्ञेवादियों (Agnostic) का भी प्रभाव दिखाई देता है, किन्तु संविधान प्रदत्त धर्मनिरपेक्ष भारत में सभी को समानता प्राप्त है।¹

साम्प्रदायिकता के बीज के मध्य भारत आज भी सहिष्णुता, समता, सर्वधर्म समभाव के लिए विश्वगुरु की भूमिका में है। यूजीन मिहान मकर के अनुसार भारतीय पारम्परिक संस्कृति अपेक्षाकृत कठोर सामाजिक पदानुक्रम द्वारा परिभाषित की गई है जो कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती है। किन्तु परिवार भारतीय सामाजिक व्यवस्था की केन्द्रीय व महत्वपूर्ण इकाई है।

सामाजिक व्यवस्था के रूप में जहाँ 'सर्वधर्म समभाव' एक आदर्श स्थिति है वहीं मानव इतिहास में धर्म के नाम पर सदैव विवाद उठते रहते हैं। धर्म की दृष्टि से भारत विशेष रूप से हतभाग्य रहा है। स्वाधीनता आन्दोलन के समय अंग्रेजों ने भारत में अपना शासन बनाए रखने के लिए धार्मिक भेदभावों का विशेष लाभ उठाया। अंग्रेजी शासनकाल में साम्प्रदायिक भावनाओं को राजनीतिक रूप मिलने का एक कारण यहाँ प्रतिनिधि या निर्वाचित संस्थाओं की स्थापना थी। साम्प्रदायिकता के अन्तर्गत वे सभी भावनाएं व क्रियाकलाप आ जाते हैं जिनमें किसी धर्म अथवा भाषा के आधार पर किसी समूह विशेष के हितों पर बल दिया जाए और उन हितों को राष्ट्रीय हितों के ऊपर प्राथमिकता दी जाए तथा पृथक्ता की भावना उत्पन्न की जाए। इस साम्प्रदायिकता नामक घटक ने सर्वधर्म समभाव के सद्भाव पर सेंध लगाने का कार्य किया है। अतः जब तक साम्प्रदायिकता के दूषित बीज को क्षुद्र स्वार्थों के लिए अंकुरित, पल्लवित किया जाता रहेगा तब तक भारतीय सामाजिक व्यवस्था की नींव के रूप में 'सर्वधर्म समभाव' के स्थान पर 'सर्वधर्म पार्थक्यता के भाव' को ही प्रमुखता से देखा जाता रहेगा।

किसी एक मुद्दे ने हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के आपसी सद्भाव को इस कदर नहीं बिगाड़ा जितना कि राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद ने बिगाड़ दिया। भारत में साम्प्रदायिकता विभिन्न धर्मों के निहित स्वार्थों के पारस्परिक संघर्ष की ही छद्म अभिव्यक्ति थी तथा इन निहित स्वार्थों ने अपने इस संघर्ष को साम्प्रदायिक जामा पहना रखा है। भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या ब्रिटिश शासन की समकालिक है, अंग्रेजों ने भारत में 'फूट डालो और शासन करो' की नीति के तहत हिन्दुओं व मुस्लिमों को लड़ाते रहे और भारत पर अपनी हुकुमत चलाते रहे। जो आगे चलकर आज संकुचित साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद के रूप में, धर्मान्धता की संकीर्ण भावनाओं से ओत-प्रोत हो संकीर्ण मनोवृत्ति उत्पन्न करते

हैं जो आपसी विद्वेष व अस्थिरता का प्रमुख कारक है। जिसमें अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा उत्पन्न होता है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था जहाँ परस्पर समन्वय, समरसता, सहयोग, सामंजस्य, सहृदयता, संवेदनशीलता जैसे तत्वों पर आधारित थी, जो 'सामाजिक सद्गुण' के प्रमुख आयाम थे। वही आधुनिक समय में विशाल घर है किन्तु परिवार नहीं जहां माँ बच्चों को परवरिश दे, काबिल बनाती है किन्तु उन्हीं बच्चों के लिए परिवार नहीं, माँ की जिन्दगी भी गवारा नहीं, मंहंगी दवाई है किन्तु सेहत नहीं, बौद्धिक स्तर ऊँचा उठा किन्तु भावना शून्यता आ गई, फेसबुक के दोस्त बहुत किन्तु सच्चा दोस्त एक भी नहीं, चन्द्रमा को छू रहे हैं लेकिन पड़ौसी का पता नहीं, इंसान बहुत है किन्तु इंसानियत नहीं, घड़ियां मंहंगी किन्तु समय किसी के पास नहीं, जब तक ये स्थितियां विद्यमान रहेंगी, तब तक 'सर्वधर्म समभाव' एक सुनहरे सपने की तरह ही दिखेगा।

जब तक रंगों की राजनीति की जाती रहेगी, रंगों पर सियासत की जाती रहेगी, रंगों का सरकारीकरण होता रहेगा, रंगों का दलीय स्वरूप कायम होगा तो उन स्थितियों में 'सर्वधर्म समभाव' कितना स्थापित हो सकता है, यह एक बड़ा प्रश्न ही है कि इन रंगों की राजनीति में 'सर्वधर्म समभाव' की रंगत कितनी कायम हो सकती है।

सर्वधर्म समभाव को चरितार्थ करने में सुरक्षा के लिए चाक चौबंद 24 घंटे तैनात पैरामिलिट्री फोर्सज का प्रमुख स्थान है क्योंकि देश के सैनिक सुरक्षा प्रहरी बनकर सम्पूर्ण देश की रक्षा करते हैं जहां जात-पात, धर्म-सम्प्रदाय का कोई स्थान नहीं होता वरन् एक ही भाव व प्रेरणा होती है वह है। देश-प्रेम व देशभक्ति की भावना तथा देश का किसान जो 'अन्नदाता' के रूप में बिना किसी भेदभाव के निःस्वार्थ भाव से सबका पोषण करता है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था का सबसे बड़ा तत्व है अतिथि सत्कार, अतिथि देवो भवः पधारो म्हारे देश की मंशा जिसके लिए नमस्ते या नमस्कार या नमस्कारम् भारतीय उपमहाद्वीप में अभिनन्दन या अभिवादन के सूचक है तथा यहाँ से प्रेरणा लेकर भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर तथा सभी धर्मों के लोग प्रयोग करते हैं। 'नमस्ते' शब्द का शाब्दिक अर्थ सर्वधर्म समभाव को निहितार्थ करता है अर्थात् मेरे भीतर की रोशनी आपके अन्दर की रोशनी का सत्कार करती है, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। यह शब्द संस्कृत शब्द नमस्, प्रणाम, श्रद्धा, आज्ञापालन, वंदन और आदर से

लिया गया है। भारत एक बहु-सांस्कृतिक और बहु-धार्मिक समाज होने के कारण विभिन्न धर्मों के त्योहारों और उत्सवों को मनाता है।²

गोधरा काण्ड, सिख, दंगे, कोरेगाँव हिंसा, बाबरी हिंसा जैसे तमाम उदाहरण इस बात पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न लगाते प्रतीत होती है कि क्या वास्तव में सर्वधर्म समभाव भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मेरूदण्ड है? या जब तक जातिवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकतावाद, क्षेत्रवाद जैसे वाद भारतीय राष्ट्रीय एकीकरण को चुनौती देते प्रतीत होते रहेंगे तब तक यह कहना कि 'सर्वधर्म समभाव' भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मेरूदण्ड है, 'एक कपोल कल्पना, दिव्यस्वप्न या स्वर्णिम अवधारणा के रूप में ही दिखाई देगी।'³

लगभग पाँच हजार वर्ष पहले से ही विभिन्न धर्मों की उत्पत्ति की अपनी जड़ है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ वेदों से हिन्दू धर्म का आरंभ हुआ है। हिन्दू धर्म के सभी पवित्र धर्मग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं। ये भी माना जाता है कि जैन धर्म का आरंभ प्राचीन समय से और इसका अस्तित्व सिन्धु घाटी में था। बुद्ध एक दूसरा धर्म हैं, जिसकी उत्पत्ति भगवान गौतम बुद्ध की शिक्षा के बाद अपने देश में हुई है। ईसाई धर्म का यहाँ अंग्रेज और फ्रांसीसी लेकर आये जिन्होंने लगभग 200 वर्ष के लंबे समय तक यहाँ पर राज किया। इस तरीके से विभिन्न धर्मों की उत्पत्ति यहाँ प्राचीन समय से या किसी तरह से यहाँ लायी गयी है। हालाँकि अपने रीति-रिवाज और मान्यताओं को बिना प्रभावित किये सभी धर्मों के लोग शांतिपूर्ण तरीके से एक साथ रहते हैं।⁴

हमारी धार्मिक संस्कृति है कि हम व्रत रखे पूजा करे गंगा जल अर्पण करें, सूर्य नमस्कार करें, परिवार के बड़े सदस्यों का पैर छूएँ रोज ध्यान और योग करे तथा भूखे और सक्षम लोगों को अन्न-जल दें। हमारे राष्ट्र की ये महान संस्कृति है कि हम बहुत खुशी के साथ अपने घर आये मेहमानों की सेवा करते हैं। क्योंकि मेहमान भगवान का रूप होता है। इसी वजह से भारत में "अतिथि देवो भवः" का कथन बेहद प्रसिद्ध है। हमारी संस्कृति की मूल जड़ इंसानियत और आध्यात्मिक कार्य है। सभी धर्मों की प्रति समान भाव रखना सर्वधर्म समभाव हैं।

भारत वर्ष में दर्शन और चिन्तन के धरातल पर जितनी विशालता, व्यापकता एवं मानवीयता रही है, उतनी आचरण के धरातल पर नहीं रही। जब चिन्तन एवं व्यवहार में विरोध उत्पन्न हो गया तो भारतीय समाज की प्रगति एवं विकास की धारा भी अवरूद्ध हो गई। दर्शन के धरातल पर उपनिषद् के चिन्तकों ने प्रतिपादित किया

कि यह जितना भी स्थावर संगम संसार हैं, वह सब एक ही परब्रह्म के द्वारा आच्छादित है।

आज इस विश्व में कई धर्म अस्तित्व में हैं। हर धर्म के संस्थापक का उद्देश्य एक ही रहा है वह है सामान्य लोगों को ईश्वर तक पहचानने का मार्ग दिखाना। हर संस्थापक ने अपने-अपने तरीके से यही काम किया है। एक संस्कृत वचन है-एकम् सत् विप्रा बहुदा वदन्ति अर्थात् अंतिम सत्य तो एक ही होता है। लेकिन, विद्वान या प्रेषित उसे अलग-अलग नामों से संबोधित करते हैं। भारत में हजारों साल से इसी भूमिका को मान्यता मिली हैं। यही कारण है कि यहां अनेक पंथ आए, उनमें वैचारिक संघर्ष भी हुआ। लेकिन भारत में कभी पंथयुद्ध नहीं हुआ। भारत में मुस्लिम, ख्रिस्ती धर्मों के लोग आए। ये लोग आक्रमक थे, फिर भी उनके विरुद्ध भारतीयों ने जो संघर्ष किया, उसका स्वरूप कभी धार्मिक संघर्ष मुख्य रूप से राजनैतिक और सांस्कृतिक ही रहा। शिवाजी महाराज से लोकमान्य तिलक तक सभी राष्ट्रपुरुषों ने धर्मांतर का विरोध तो किया, लेकिन उसी को संघर्ष का मुद्दा बनाकर अन्य धर्मों के समाज को लक्ष्य नहीं बनाया। इसलिए हम देखते हैं कि शिवाजी महाराज ने स्वराज्य स्थापना के संघर्ष में आतंकवाद को देखने की हमारी दृष्टि खालिस धार्मिक नहीं, बल्कि अंतर्गत सुरक्षा की है। हमारी धार्मिक सहिष्णुता का ही यह परिचय है।

भारत में स्थित ईसाई धर्मगुरु बड़ी मात्रा में भारतीय धर्मग्रंथों का संत साहित्य का निरंतर अभ्यास कर रहे हैं। केरल के निवासी आर्च बिशप थॉमस मेनामपरपिल ने कहा है कि भगवत गीता का निष्काम कर्मयोग और महात्मा गांधीजी की सीख का उन पर बड़ा गहरा प्रभाव रहा है। इन्हीं आर्च बिशप साहब के कारण पिछले साल वैटिकन सिटी में एक महत्वपूर्ण घटना हुई। 'वे ऑफ द क्रॉस' कार्यक्रम के लिए एक मेडिटेशन प्रेयर में अयोजित की गई जिसका मार्गदर्शन 16वें पोप बेनेडिक्ट ने किया था इस प्रेयर में गीतासार, भारतीय संत वचन तथा महात्मा गांधीजी की सीख सुनाई दी। वैटिकन सिटी में 'सर्वधर्मपरिषद्' तो सदा ही होती रहती है, पर पोप की प्रार्थना सभा में पहली बार गीता सुनाई दी। यह परिवर्तन महत्वपूर्ण है जो समाज में सर्वधर्म समभाव को स्थापित करता है।⁵ सारे धर्म अच्छी शिक्षाएँ देते हैं। सब, एक ही शाश्वत शक्ति की बात करतें हैं चाहे उसके नाम अलग ही हों, यानी-ईश्वर, खुदा, अल्लाह, गॉड आदि। सारे धर्मों की मंजिल एक ही है चाहे रास्ते अलग-अलग हों। इस तरह सारे धर्म "सत्य" हैं, समान हैं उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में धर्म विचारणीय वही हैं जो "ईश-केन्द्रित" (God Centric) हो। इस धर्म में ईश्वर पर विश्वास करते ही

कुछ और तत्सम्बन्धित बातों पर विश्वास अवश्यंभावी हो जाता है। जैसे: ईश्वर के, इष्टा, रचयिता, प्रभु, स्वामी, उपास्य, पूज्य होने पर विश्वास। इसके साथ ही उसके अनेक गुणों, शक्तियों व क्षमताओं पर भी विश्वास आप से आप अनिवार्य हो जाता है। धर्म मौलिक, माननीय मूल्यों (अच्छे गुणों) ये आगे की चीज है। अच्छे गुण (उदाहरणतः नेकी, अच्छाई, सच बोलना, झूठ से बचना, दूसरों की सहायता करता, जरूरतमंदों के काम आना, दुखियों के दुःख मांग लेना, निर्धनों निर्बलों से सहयोग करना आदि) हर व्यक्ति की प्रकृति का अभाज्य का अंग है चाहे वह व्यक्ति किसी धर्म का अनुयायी हो, या अधर्मी और नास्तिक। धर्म इन गुणों की शिक्षा तो देता है, इन्हें महत्व भी बहुत देता है तथा मनुष्यों और मानव-समाज में इन्हें प्रचलन, उन्नति व स्थापन पर पूरा जोर भी देता है। परन्तु ये मानवीय गुण वह आधारशिला नहीं हैं जिन पर धर्म का भव्य भवन खड़ा होता है। इसलिए धर्म के बारे में कोई निर्णायक नीति निश्चित करते समय बात उस बिन्दु से शुरू होनी बुद्धिसंगत है जो धर्म का मूल तत्व है। यहाँ यह बात भी स्पष्ट करनी आवश्यक है कि संसार में अनेक मान्यताएँ ऐसी हैं जो 'धर्म' में ईश्वर को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है और है और "मत" में या तो ईश्वर की सिरे से कोई परिकल्पना ही नहीं होती, या वह ईश्वर-उदासीन (Agnostic) होता है, या ईश्वर का इन्कारी होता है। फिर भी 'धर्म' के अनुयायियों में भी और 'मत' के अनुयायियों में भी सभी मौलिक मानवीय गुण और मूल्य (Human Values) पाए जाते हैं।

उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में 'धर्म' विचारणीय वही है जो 'ईश-केन्द्रित' हो। इस 'धर्म' में ईश्वर पर विश्वास करते ही कुछ और तत्संबंधित बातों पर विश्वास अवश्यंभावी हो जाता है। जैसे: ईश्वर के स्रष्टा, रचयिता, प्रभु, स्वामी, उपास्य, पूज्य होने पर विश्वास। इसके साथ ही उसके अनेक गुणों, शक्तियों व क्षमताओं पर भी विश्वास अनिवार्य हो जाता है।⁶

धर्म यदि वास्तव में 'धर्म' है, सत्य धर्म हैं, शाश्वत धर्म है, सर्वमान्य है, सर्वस्वीकार्य है तथा उसकी सुनिश्चित रूपरेखा व सीमा है तब उसे उस मानवजाति का धर्म होने का अधिकार प्राप्त होता है जो मात्र एक प्राणी, एक जीव ही नहीं, सृष्टि का श्रेष्ठतम अस्तित्व भी है।⁷

मानव प्राणी चूँकि 'शरीर' और 'आत्मा' के समन्वय से अस्तित्व पाता है तथा उसके व्यक्तित्व में ये दोनों पहलू अविभाज्य (Inseparable) है, इसलिए धर्म ऐसा होना चाहिए जो उसके भौतिक व सांसारिक तथा आध्यात्मिक व नैतिक जीवन-क्षेत्रों में संतुलन व सामंजस्य के साथ अपनी भूमिका निभा सके। इस्लाम

के अतिरिक्त अन्य धर्मों तथा उनकी अनुयायी कौमी का इतिहास यह रहा है कि धर्म ने पूजा-पाठ, पूजा-स्थल, पूजा-पूजागृह, और कुछ सीमित धार्मिक रीतियों तक तो अपने अनुयायियों का साथ दिया, या ज्यादा से ज्यादा कुछ मानवीय मूल्यों और कुछ नैतिक गुणों की शिक्षा देकर कुछ चरित्र-निर्माण, और कुछ समाज सेवा में अग्रसर कर दिया। इसके बाद, इससे आगे मानव जाति की विशाल, वृहद्, बहुआयामी, बहुपक्षीय, व्यापक जीवन-व्यवस्था में धर्म ने अपनी अनुयायियों और अनुयायी कौमी का साथ छोड़ दिया। यही बात इस विडम्बना का मूल कारण बन गई कि धर्म को व्यवस्था से, व्यवस्था का धर्म से बिल्कुल ही अलग दूर कर दिया गया। यह अलगाव इतना प्रबल और भीषण रहा कि 'धर्म' और सामाजिक-व्यवस्था एक दूसरे के प्रतिरोधी, प्रतिद्वंद्वी, शत्रु-समान बन गए।⁸

'सामाजिक-व्यवस्था' के संदर्भ में धर्म-विमुखता, धर्म-निस्पृहता, धर्म-उदासीनता यहां तक कि धर्म-शत्रुता पर भी आधारित एक 'आधुनिक धर्म' सेक्युलरिज्म का आविष्कार करना पड़ा। इस नए 'धर्म' ने पुकार-पुकार कर, ऊँचे स्वर में कहा की (ईश्वरीय) धर्म को सामूहिक जीवन (राजनीति, न्यायपालिका, कार्यपालिका, प्रशासन, अर्थव्यवस्था, शैक्षणिक व्यवस्था आदि) से बाहर निकाल कर वहां मात्र इसी 'नए धर्म' (सेक्युलरिज्म) का आधिपत्य स्थापित होना चाहिए। इस प्रकार उपरोक्त धर्मों की अपनी सीमितताओं और कमजोरियों के परिणामस्वरूप मानव के अविभाज्य व्यक्तित्व को दो अलग-अलग हिस्सों में विभाजित कर दिया गया। "व्यक्तिगत पूजा-पाठ में तो ईश्वरवादी, धार्मिक रहना चाहो तो रहो, परन्तु इस दायरे से बाहर निकल कर सामूहिक व सामाजिक व्यवस्था में कदम रखने से पहले, ईश्वर और अपने धर्म को अपने घर में ही रख आओ" का मंत्र उपरोक्त 'नए धर्म' का 'मूल-मंत्र' बन गया। मनुष्य के अविभाज्य व्यक्तित्व का यह विभाजन बड़ा अप्राकृतिक, अस्वाभाविक, बल्कि अत्याचारपूर्ण था, फिर भी 'धर्म' ने अपनी कमजोरियों और सीमितताओं के कारण इस नए क्रांतिकारी 'धर्म' (सेक्युलरिज्म) के आगे घुटने टेक दिए।⁹

विश्व में अनेक धर्मों और मतों को मानने वाले लोग हैं, मगर सबका सार एक ही है। लेकिन हमने धर्म के मूल को समझने की बजाय परमात्मा को ही बांट दिया है। पर क्या हम परमात्मा को बांट सकते हैं? जब प्रकृति, उसके सूरज, चांद, वायु, आकाश सभी धर्मों के लोगों के हैं तो अल्लाह, ईश्वर, जीसस, बाहेगुरु, अलग कैसे हो गए? यदि हिंदू किसी मस्जिद में जाकर प्रार्थना करे तो क्या अल्लाह उसकी पुकार नहीं सुनेगा? मुस्लिम की प्रार्थना क्या मंदिर का ईश्वर नहीं सुनेगा?

सूर्य का कोई धर्म नहीं है, वह सभी धर्मों का है। उसका एक मात्र ध्येय मानव मात्र को प्रकाश प्रदान करना है। जब परमात्मा और प्रकृति एक है तो हम धर्म के नाम पर अलग क्यों हो जाते हैं ? सभी धर्मों के शास्त्र अद्भुत शक्तियों से भरे हुए हैं। इन शास्त्रों में मानव कल्याण की संकल्पना छिपी है न की किसी धर्म विशेष की। सनातन मर्यादा के सभी शास्त्र समूची मानवता के हैं। कुरान-ए-पाक में कहीं नहीं लिखा कि इसे केवल मुस्लिम पढ़े। इस ग्रंथ में अल्लाह और परमात्मा की कृपा का जो आलोक है, वह हर धर्म के लोगों के लिए समान है। जिस प्रकार वर्षा की बूँदें हर धर्म और सम्प्रदायों के लोगों को भिगोती हैं, उसी प्रकार इन शास्त्रीय ग्रंथों से निकलने वाली कृपा सभी धर्मों के लोगों के लिए बराबर है। प्रभु कृपा किसी धर्म और सम्प्रदाय तक सीमित नहीं है। सभी धर्मों का सार और परमात्मा एक था, एक है और एक रहेगा तभी सामाजिक व्यवस्था में सर्वधर्म समभाव का मधुर भाव विकसित हो सकेगा।

संदर्भ सूची

1. चंद्रा, विपिन, भारत का स्वंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, 2002, पृ. 319-325
2. मोहन, नरेंद्र, धर्म और साम्प्रदायिकता, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ. 61-70
3. जैन, एसएन, भारतीय संविधान शासन एवं राजनीति, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1997, पृ. 208
4. आहूजा, राम, इण्डियन सोशियल सिस्टम, रावत पब्लिकेशन्स, न्यू दिल्ली, 1993, पृ. 210
5. उपर्युक्त, पृ. 252
6. ड्रेज, जीन, सोशियल पॉलिसी, ओरिएण्ट ब्लैक स्वान, 2016, पृ. 116
7. अवस्थी, प्रकाश आनंद, भारतीय शासन एवं राजनीति, आगरा, 2016, पृ. 128
8. मंगलानी, रूपा, भारतीय शासन एवं राजनीति, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2009, पृ. 213
9. उपर्युक्त, पृ. 220
10. अग्रवाल, आर.सी. एवं भटनागर, महेश, भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन, एस.चंद एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली, 2012, पृ. 154-160

भारतीय संघ व्यवस्था—वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में केन्द्र-राज्य सम्बन्ध



डॉ. धर्मराज शर्मा

शिक्षाविद् एवं राजनीतिक विश्लेषक
अलवर (राजस्थान)

शोध सारांश

भारत में संघीय शासन के कारण केन्द्र तथा राज्यों के क्षेत्र एवं सीमाओं का निर्धारण किया गया है। संविधान की अनुसूची-7 में सूची व्यवस्था के माध्यम से केन्द्र एवं राज्यों के कार्यों, अधिकारों एवं दायित्वों का स्पष्ट उल्लेख कर केन्द्र एवं राज्यों को अपने-अपने क्षेत्रों में स्वायत्तता देने का प्रयास किया गया है। देश की संघीय व्यवस्था में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के मध्य विद्यमान तनावों को दूर करने के लिए समय-समय पर आयोगों, परिषदों एवं परामर्शी संगठनों का गठन किया गया है। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में मधुरता लाने के लिए आवश्यक है कि केन्द्र सरकार पूर्वाग्रह से मुक्त होकर संविधान के अनुरूप अपने कर्तव्यों का निर्वहन करे। इसके बावजूद भी यदि आवश्यक हो तो भारत में 'यूनियन ऑफ स्टेट्स' की व्यवस्था के अन्तर्गत विशेष परिस्थितियों में केन्द्र को आवश्यक निर्देश देने तथा राज्यों को कुछ कार्य विशेष संपादित करने तथा अनेक बार केन्द्र संघ सूची में सम्मिलित विषय/विषयों पर राज्य सरकार/सरकारों को कतिपय कार्य संपादित करने का दायित्व सौंप सकता है। भारतीय संविधान का बाह्य रूप संघात्मक है और आन्तरिक रूप एकात्मक। जैसा कि स्पष्ट है संविधान में भारत को 'राज्यों का संघ' कहा गया है। भारतीय संविधान में संघात्मकता के लक्षण पाए जाते हैं वहीं कुछ लक्षण एकात्मकता के भी पाए जाते हैं। हमारे संविधान निर्माता भारत में संघात्मक शासन स्थापित करना चाहते थे, लेकिन संविधान में 'संघ' शब्द का प्रयोग कहीं पर भी देखने को नहीं मिलता है। वरन् संघ के स्थान पर 'राज्यों का संघ' शब्द का प्रयोग किया गया है। संकेताक्षर : सहकारी संघ, नियोजन प्रक्रिया, अन्तर्राज्यीय परिषद्, विवादित मुद्दे

भारतीय संविधान केन्द्र-राज्यों के मध्य सहयोग, पारस्परिक सम्बन्ध और सौहार्द स्थापित करने का प्रयत्न करता है। संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान किए गए हैं जो सामन्जस्य के तौर तरीकों पर प्रकाश डालते हैं। केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच सामन्जस्यपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना करने वाली संघीय व्यवस्था को सहयोगी 'संघवाद' की संज्ञा दी जाती है। इस व्यवस्था में संघीय सरकार को सशक्त बनाया गया है, परन्तु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्रों में कमजोर नहीं हैं। केन्द्र एवं राज्य सरकारों की एक दूसरे पर निर्भरता इस शासन प्रणाली का मुख्य लक्षण होता है। भारत में संसदीय व्यवस्था को अपनाया गया है, देश की विभिन्नता को दृष्टिगत रखते हुए संघात्मक प्रणाली को अंगीकार किया गया है। देश में यहां की परिस्थितियों के अनुरूप 'भारत राज्यों का एक संघ' होगा को अपनाया गया है। अमेरिका में सामान्य सरकार एवं क्षेत्रीय सरकारें दोनों सीधे लोगों से जुड़ी होती हैं, प्रत्येक नागरिक दोनों सरकारों के अधीन होते हैं।¹ भारतीय संविधान के राष्ट्रीय

संविधान में राष्ट्रीय नागरिकता को अपनाया गया है। संविधान निर्माण के समय संविधान निर्माताओं के समक्ष मुख्य प्रश्न था कि उसका स्वरूप कैसा होगा? इस प्रश्न पर उनके द्वारा मध्य मार्ग का अनुसरण किया गया। भारतीय संविधान का बाह्य रूप संघात्मक है और आन्तरिक रूप एकात्मक। जैसा कि स्पष्ट है संविधान में भारत को 'राज्यों का संघ' (Union of states) कहा गया है। भारतीय संविधान में संघात्मकता के लक्षण पाए जाते हैं वहीं कुछ लक्षण एकात्मकता के भी पाए जाते हैं। हमारे संविधान निर्माता भारत में संघात्मक शासन स्थापित करना चाहते थे, लेकिन संविधान में 'संघ' शब्द का प्रयोग कहीं पर भी देखने को नहीं मिलता है। वरन् संघ के स्थान पर 'राज्यों का संघ' शब्द का प्रयोग किया गया है। भारत में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के बावजूद भी प्रशासनिक स्वरूप वाले भारतीय संघ के राज्यों के हाथों में देश के शासन का बहुत बड़ा भाग है। यद्यपि आर्थिक मामलों में राज्यों को केन्द्र पर अत्यधिक निर्भर रहना पड़ता है। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों

में मधुरता लाने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों के मध्य विश्वास का एक सुदृढ़ सम्पर्क सूत्र स्थापित हो। उपर्युक्त इन सब बातों के बावजूद भी केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कुछ विवादास्पद विषय भी पाए जाते हैं।

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के मध्य तनाव की स्थिति

भारतीय संघ व्यवस्था की केन्द्र-राज्य सहयोग प्रारम्भ में मुख्य विशेषता थी, लेकिन समय गुजरने के साथ-साथ भारतीय संघीय प्रणाली के मजबूत होने के साथ केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में अनेक विवाद के क्षेत्र उभरे हैं। सन् 1967 से पूर्व 'पण्डित नेहरू युग' में केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध मधुर रहे हैं।² इस कालावधि में देश के राजनीतिक क्षितिज पर कांग्रेस दल का एकाधिकार था, फलतः केन्द्र और राज्यों के मध्य संघर्ष की स्थिति उत्पन्न नहीं होती थी। इस समय अनेक ऐसे विषय हैं, जिनमें विवादास्पद स्थिति विद्यमान है। विवाद के कतिपय विषय इस प्रकार हैं :-

राज्यपाल का पद—राज्यपाल की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है तथा संघीय सरकार की इसमें मुख्य भूमिका होती है। राज्यपाल की नियुक्ति को लेकर केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में टकराव की स्थिति पायी जाती है। चतुर्थ आम चुनावों के पश्चात राज्यपालों के अधिकार क्षेत्र, नियुक्ति के तरीके आदि को लेकर केन्द्र तथा राज्यों में मतभेद उत्पन्न हुए हैं। राज्यपाल पद सम्बन्धी विवाद में एक और कड़ी जोड़ने का कार्य 26 मई 2014 को गठित मोदी सरकार के द्वारा किया गया। सरकार द्वारा कई राज्यों के राज्यपालों को पद से बेवजह हटाया गया और उनके स्थान पर भाजपा के सदस्यों व उनकी विचारधारा से जुड़े व्यक्तियों को पुरस्कार स्वरूप इस पद से नवाजा गया। सरकार के द्वारा महाराष्ट्र के राज्यपाल के. शंकर नारायण का मिजोरम स्थानान्तरण किया गया, लेकिन उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। सन् 2012 में संप्रग सरकार ने शंकर नारायण को द्वितीय कार्यकाल के रूप में नियुक्त किया था तथा सन् 2017 तक उनका कार्यकाल निर्धारित था। गुजरात की राज्यपाल कमला बेनिवाल का स्थानान्तरण मिजोरम किया गया तथा कुछ समय पश्चात पद के दुरुपयोग के आरोप में उन्हें बर्खास्त कर दिया गया। कांग्रेस दल के पूर्व नेता वीरेन्द्र कटारिया को पुडुचेरी के उप राज्यपाल पद से हटाया गया। बी. एल. जोशी (उत्तर प्रदेश) एम.के. नारायणन (पश्चिम बंगाल) शेखरदत्त (छत्तीसगढ़) बी.बी. वांचू (गोवा) अश्विनी कुमार (नगालैण्ड) एवं बी.बी. पुरुषोत्तम (मिजोरम) के राज्यपालों को भी त्यागपत्र देने के लिए विवश किया गया। उत्तराखण्ड के राज्यपाल अजीज कुरेशी के द्वारा राज्यपाल पद से

त्यागपत्र देने के दबाव के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया। अपने प्रार्थना पत्र में उन्होंने कहा कि संविधान के अन्तर्गत राज्य का राज्यपाल केन्द्र सरकार का सेवक नहीं होता कि उसको अपनी इच्छानुसार जब चाहे पद से बर्खास्त कर दिया जाए। राष्ट्रपति के द्वारा राज्यपाल नियुक्त किया जाता है और हटाने का अधिकार भी उन्हें ही है, किसी अन्य के पास राज्यपाल को हटाने की शक्ति नहीं है।

राज्यपाल के पद से बर्खास्तगी के संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने सन् 2010 में एक व्यवस्था दी थी। उच्चतम न्यायालय ने बी. पी. सिंगल के मामले में स्पष्ट किया था कि, उसी राज्यपाल को पद से हटाया जा सकता है, जो राष्ट्रपति का विश्वास खो चुका है। लेकिन इसके लिए ठोस कारण का होना आवश्यक है। राज्यपाल को हटाने समय कारण स्पष्ट करना आवश्यक नहीं है, लेकिन राज्यपाल को इसी आधार पर नहीं हटाया जा सकता कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन हो गया है तथा सम्बन्धित राज्यपाल केन्द्र की विचारधारा से भिन्न है।

संविधान का अनुच्छेद-356—भारतीय संविधान का अनुच्छेद-356 प्रारम्भ से ही विवादास्पद रहा है, इसके कारण केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्ध सहज नहीं रहे हैं। हड़बड़ी में एक मात्र समाधान के रूप में अनुच्छेद-356 का प्रयोग करने वाला केन्द्र ही अनुच्छेद-355 के प्रावधानों का इस्तेमाल नहीं करता। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-355 में भी व्यापक अधिकार उपलब्ध हैं। ऐसे अधिकार, जिनमें अनुच्छेद-356 के प्रयोग की स्थिति ही उत्पन्न नहीं हो।³ सरकारिया आयोग ने इस विषय पर विचार करते हुए पाया कि मंत्रिमंडल को विधानसभा में बहुमत होने के बावजूद 13 मामलों में राष्ट्रपति शासन को लागू किया गया, ऐसे 15 मामलों में जिनमें मंत्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया था, अन्य दावेदारों को वैकल्पिक सरकार बनाने का अवसर नहीं दिया गया था और न ही उन्हें विधानसभा में अपने बहुमत समर्थन का परीक्षण देने का अवसर प्रदान किया गया। सरकारिया आयोग ने केवल 26 मामलों में ही राष्ट्रपति शासन लागू करने को अपरिहार्य माना है।⁴

विभिन्न योजनाओं एवं वित्त सम्बन्धी विवाद—भारत में नियोजन की प्रक्रिया के सम्बन्ध में राज्यों को सहभागिता देने के उद्देश्य से सन् 1952 में राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council) की स्थापना मंत्रिमण्डल के प्रस्ताव द्वारा की गई थी।⁵ जिससे केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय समन्वय को स्थापित किया जा सके, लेकिन संघीय शासन व्यवस्था में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय एवं योजना सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर तनाव

उपस्थित हैं। सन् 1967 के चतुर्थ आम चुनावों के पश्चात केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय एवं योजनाओं से सम्बन्धित विषयों को लेकर विवाद उभरे हैं। वित्त आयोग एवं योजना आयोग द्वारा वित्तीय संसाधनों की वितरण व्यवस्था से अधिकांश राज्य असन्तोष प्रकट कर चुके हैं। सन् 1969 में पहली बार कुछ राज्यों में चतुर्थ योजना के प्रारूप को अनौपचारिक रूप से अस्वीकृति प्रदान की गई थी। राज्यों की मांग रही है कि उनके साथ भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए तथा जो सहायता राज्यों को उपलब्ध कराई जाती है वह बिना शर्त के होनी चाहिए। मई 1979 में मुख्यमंत्रियों के दो दिवसीय सम्मेलन में केन्द्र द्वारा वित्तीय संसाधनों के विभाजन के प्रश्न पर काफी विवाद उभर कर सामने आया था। उस समय विवाद ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया था कि पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ने इस मामले को उच्चतम न्यायालय में ले जाने का निश्चय प्रकट किया।

केन्द्र द्वारा राज्यों को निर्देश—केन्द्र सरकार द्वारा कतिपय मामलों में राज्य सरकारों को निर्देश दिए जाते हैं, इस कारण भी केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में अनेक बार विवाद उत्पन्न हो जाते हैं। यहां पर यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या राज्य सरकारों के लिए केन्द्र सरकार के निर्देशों का पालन बाध्यकारी है? यदि राज्य सरकारें केन्द्र की आदेश पालना से इनकार करे तो क्या व्यवस्था की जाएगी? जब राज्य की सीमा के अन्तर्गत राज्य सरकारें केन्द्रीय सम्पत्ति की सुरक्षा न करे तो केन्द्र के द्वारा क्या कदम उठाए जाएंगे? ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है, जब राष्ट्रीय सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए केन्द्र सरकार केन्द्रीय कर्मचारियों की तैनाती करे और राज्य सरकार द्वारा उसका विरोध किया जाए। इन सभी उपरोक्त प्रश्नों पर केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में समय-समय पर विवाद प्रकट होते रहे हैं। केन्द्रीय सरकार के द्वारा जब राष्ट्रीय सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल को कुछ राज्यों में तैनात किया तो केरल, पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु की सरकारों ने केन्द्र के इस कदम पर विरोध प्रदर्शित किया था। इससे केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न हो गई थी।⁶ 18 सितम्बर 1968 को केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल का सामना करने के लिए केन्द्र सरकार ने राज्यों को एक अध्यादेश द्वारा आवश्यक दिशा-निर्देश दिए। लेकिन केरल की साम्यवादी सरकार ने केन्द्र के अध्यादेश को संविधान विरोधी और श्रमिक विरोधी कह कर उसे मानने से इनकार कर दिया। केन्द्र की तरफ से जब राज्य में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल तैनात किया गया तो केन्द्र तथा राज्य सरकार में तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई थी। तत्कालीन मुख्यमंत्री नम्बूद्रीपाद ने आरोप लगाया कि राज्य में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल का आना

राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप है। केन्द्र सरकार को इससे बचना चाहिए।

सीबीआई के उपयोग पर तनावपूर्ण स्थिति—राज्य सरकारों के द्वारा यह आरोप लगाए जाते रहे हैं कि केन्द्र सरकार अपने राजनीतिक हितों की पूर्ति हेतु सीबीआई का दुरुपयोग करती है। उच्चतम न्यायालय के द्वारा भी इसकी कार्यशैली पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए इसे 'पिंजरे में कैद तोते' के रूप में परिभाषित किया गया। जब तृणमूल कांग्रेस के मंत्री मदन मित्रा को शारदा चिट फण्ड घोटाले के आरोप में गिरफ्तार किया गया तो पार्टी के सांसदों ने 15 दिसम्बर 2014 को लोकसभा में इसका तीव्र विरोध किया और जोरदार हंगामा किया। तृणमूल कांग्रेस ने आरोप लगाया कि भाजपा का मंतव्य ठीक नहीं है और उसकी सरकार निजी स्वार्थ भावना से प्रेरित होकर कार्य कर रही है। पार्टी के सौगत राय ने कहा कि सीबीआई को प्रधानमंत्री के नहीं बल्कि लोकपाल के अधीन होना चाहिए, क्योंकि सही दिशा में इसका प्रयोग नहीं किया जा रहा है। प्रत्येक दल जो सत्ता से बाहर होता है, उसके द्वारा इस तरह की बातें की जाती हैं, लेकिन जब उसी दल को सत्ता प्राप्त हो जाती है, तो वह इस संस्था पर पूर्णरूपेण नियंत्रण रखने की मानसिकता का परित्याग नहीं कर पाता है। सीबीआई जैसी संस्था पर दबाव बनाने की मानसिकता का परित्याग करना चाहिए।

नदियों के जल वितरण सम्बन्धी विवाद—नदियों के जल वितरण को लेकर केन्द्र-राज्य तथा परस्पर राज्यों में विवाद उग्र रूप से उभर कर सामने आए हैं। जैसे कावेरी नदी जल विवाद अनेक वर्षों से चला आ रहा है। इस नदी के जल विभाजन को लेकर कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल एवं पुडुचेरी के मध्य विवाद अवस्थित है। तमिलनाडु एवं कर्नाटक के किसानों द्वारा अपने-अपने हिस्से का जल प्राप्त करने हेतु अनेक आन्दोलन किए गए हैं तथा इस कारण कई किसान अपनी जान भी गँवा चुके हैं। भारतीय संघ व्यवस्था में कावेरी नदी विवाद ने राजनीतिक माहौल को काफी उद्धेलित किया है। नदी-जल विवाद भविष्य में अनेक समस्याओं की जड़ बन सकते हैं, इसलिए अन्तर्राज्यीय नदी जल के प्रबन्धन को प्राथमिक कार्यों की सूची में रखा जाना चाहिए।

भारत के उच्चतम न्यायालय के द्वारा कहा गया कि नदी की धारा पर सबका समान अधिकार है। मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा, न्यायाधीश अमिताभ रॉय और न्यायाधीश एएम खानविलकर की पीठ ने 16 फरवरी 2018 के अपने निर्णय में कहा कि नदियों के जल पर कोई राज्य अपने विशेषाधिकार का दावा नहीं कर सकता है। तमिलनाडु और केरल के मध्य 135 वर्षों से चले आ रहे कावेरी

नदी जल के विभाजन के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के द्वारा महत्वपूर्ण निर्णय दिया गया। न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक निर्णय में कावेरी जल विवाद न्यायाधिकरण (सीडब्ल्यूडीटी) के निर्णय में परिवर्तन करते हुए अंतिम निर्णय दिया। यह निर्णय आगामी 15 वर्षों तक प्रभावी रहेगा। न्यायालय के द्वारा तमिलनाडु को मिलने वाले पानी में कटौती की गई तथा कर्नाटक को मिलने वाले पानी की मात्रा में 14.75 टीएमसी फीट की वृद्धि की गई। इस निर्णय के अनुसार तमिलनाडु को कावेरी का 177.25 समेत 404.25 टीएमसी फीट पानी उपलब्ध होगा। सन् 2007 में 192 टीएमसी फीट पानी का आदेश था। भारतीय संघ व्यवस्था में आए दिन होने वाले नदी-जल विवाद देश की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था के लिए ठीक नहीं है। देश के नीति-निर्धारकों एवं समाज को पानी का मूल्य समझना चाहिए।

नौकरशाही के सम्बन्ध में तनाव—नौकरशाही को लेकर भी केन्द्र तथा राज्यों के मध्य प्रारम्भ से ही विवाद रहे हैं। भारत में संघीय सरकार अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से राज्य सरकारों पर नियंत्रण रखती है। संविधान में संघ तथा राज्यों के लिए अलग-अलग सेवाओं का प्रावधान किया गया है, लेकिन हमने ब्रिटिश शासन से विरासत में एकरूपीय उच्च प्रशासनिक सेवाओं की पद्धति भी प्राप्त की है। इस प्रकार अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारी केन्द्र तथा राज्य दोनों स्थानों पर कार्य करते हैं। संविधान में यह भी प्रावधान किया गया है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा केन्द्र और राज्यों में समान रूप से कार्य करेगी। सन् 1967 के आम चुनावों के पश्चात नौकरशाही के विषय में तनाव उभर कर सामने आए हैं। राज्यों में पुलिस प्रशासन को केन्द्रवादी संघवाद के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है।

देश के प्रख्यात राजनीतिक विद्वान प्रोफेसर बी. एम. शर्मा इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि, सन् 1967 के वर्ष को एक विभाजक वर्ष का नाम दे सकते हैं, जब सात राज्यों में कांग्रेस को प्रथम बार पराजय का मुंह देखना पड़ा। इस समय न केवल केन्द्र और राज्यों में सीधी टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई, बल्कि कई मुख्यमंत्री राज्यों को अपने कामकाज में आन्तरिक स्वायत्तता देने की भी मांग उठाने लगे तथा उनके द्वारा राज्यों में केन्द्रीय पुलिस बल का भी विरोध किया जाने लगा।⁷ चतुर्थ आम चुनावों के पश्चात यह समस्या उभर कर सामने आई कि क्या नौकरशाही गैर कांग्रेसी राज्य सरकारों की नीतियों का पालन उसी प्रकार कर पाएगी, जिस प्रकार से वह अब तक कांग्रेस सरकार की नीतियों का पालन करती थी। केन्द्र तथा राज्यों के मध्य अवस्थित मतभेदों को दूर करने के

उद्देश्य से कुछ संवैधानिक उपबन्ध भी किए गए हैं, जिनका विवेचन अधोलिखित है—

भारतीय संविधान के ग्यारहवें भाग के द्वितीय अध्याय में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य प्रशासनिक सम्बन्धों का वर्णन किया गया है। संविधान के अनुच्छेद-73 के अनुसार, केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति उन विषयों तक सीमित है, जिन पर संसद को विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार अनुच्छेद-162 के अनुसार, राज्यों की प्रशासनिक शक्तियां उन विषयों तक सीमित है, जिन पर राज्य विधानसभाओं को कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषयों के सम्बन्ध में प्रशासनिक अधिकार साधारणतया राज्यों में निहित हैं, लेकिन इन राज्य की प्रशासनिक शक्तियों को संघ की ऐसी प्रशासनिक शक्तियों के द्वारा सीमित रखा गया है, जो संविधान एवं विधि द्वारा प्रदत्त हैं। प्रशासनिक सम्बन्धों के संदर्भ में केन्द्र को राज्यों के ऊपर नियंत्रण रखने का अधिकार प्रदान किया गया है, लेकिन इसके अतिरिक्त राज्यों को स्वायत्तता एवं उत्तरदायित्वों का व्यापक क्षेत्र मिला हुआ है। इसके बावजूद भी कतिपय राजनीतिक पण्डितों का मानना है कि राज्यों को और अधिक स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए।

संघीय सरकार द्वारा राज्यों को निर्देश देना—केन्द्र का अधिक शक्तिशाली होना भारतीय संघ व्यवस्था के लिए आवश्यक है। राष्ट्रीय एकता को मद्देनजर रखते हुए संविधान निर्माताओं के द्वारा केन्द्र को अधिक सशक्त बनाया गया है तथा उसे महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान किए गए हैं, जिससे वह राज्यों पर उचित नियंत्रण रख सके। इस प्रकार व्यवस्था की गई है कि भारतीय संघ प्रणाली निर्बाध रूप से कार्य कर सके। केन्द्र द्वारा नियंत्रण के उपाय यहां इंगित हैं :-

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-256 के अनुसार केन्द्र सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्यों को निर्देश दे सके कि उन्हें अपनी कार्यकारी शक्ति का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए। राष्ट्रीय और सैनिक महत्व के मार्गों व पुलों आदि का निर्माण साधारणतया केन्द्रीय सरकार द्वारा ही किया जाता है, लेकिन केन्द्र सरकार को यह अधिकार है कि वह इस प्रकार के मार्गों के निर्माण व उनके उचित रखरखाव के लिए राज्यों को आवश्यक दिशा-निर्देश दे सके। इसी प्रकार रेल मार्गों एवं रेल गाड़ियों की सुरक्षा के लिए भी निर्देश जारी किए जा सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद-257 के तहत राज्यों को अपनी कार्यपालिका शक्ति का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए, जिससे संसद द्वारा निर्मित कानूनों की पालना सुनिश्चित की जा सके। संसद के द्वारा निर्मित

कानूनों को कार्यान्वित करने के लिए हर संभव उपायों का प्रबन्ध करना प्रत्येक राज्य का कर्तव्य है। राज्यों का भी यह दायित्व है कि वे केन्द्रीय प्रशासन में कोई व्यवधान उत्पन्न न करें। भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 263 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह एक अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना करे। यदि राष्ट्रपति को किसी समय यह प्रतीत होता है कि जन हितार्थ अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की जानी चाहिए, तो उनके द्वारा ऐसा किया जा सकता है। जिसके महत्वपूर्ण कार्य इस प्रकार होंगे :-

1. राज्यों के मध्य उत्पन्न होने वाले विवादों की जांच करना तथा उनके सम्बन्ध में उचित सलाह एवं सुझाव देना।
2. राज्यों के मध्य अथवा संघ तथा राज्यों के मध्य सामान्य हितों से सम्बन्धित विषयों की पड़ताल करना तथा उन पर आवश्यक विचार-विमर्श करना।
3. इन विषयों और विशेषकर इनसे सम्बन्धित नीतियों एवं कार्यों के श्रेष्ठतम समन्वय के सम्बन्ध में सिफारिशें करना। राष्ट्रपति इस परिषद् के संगठन एवं प्रक्रियाओं को निर्धारित तथा इसके कर्तव्यों को परिभाषित कर सकता है।

ग्रेनविल ऑस्टिन ने भारतीय संघ को 'सहकारी संघ' के नाम से उद्धोषित किया है, अतः केन्द्र और राज्यों के मध्य समन्वयात्मक एवं सहयोगात्मक सम्बन्ध बने रहने परमावश्यक है। देश की संघीय व्यवस्था में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के मध्य विद्यमान तनावों को दूर करने के लिए समय-समय पर आयोगों, परिषदों एवं परामर्शी संगठनों का गठन किया गया है। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में मधुरता लाने के लिए आवश्यक है कि केन्द्र सरकार पूर्वाग्रह से मुक्त होकर संविधान के अनुरूप अपने कर्तव्यों का निर्वहन करे। दलीय एवं स्वहित की बजाय जनहित एवं राष्ट्रीय हितों को मद्देनजर रखते हुए कार्य योजनाओं का निर्धारण किया जाए। राजनीतिक विद्वेषता एवं बदले की भावना से कार्य नहीं किया जाना चाहिए तथा सकारात्मक सोच के साथ केन्द्र और राज्यों की सरकारों को कार्य

करना चाहिए, तभी केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में सुदृढ़ता और मधुरता लाई जा सकती है। उसी व्यक्ति को राज्यपाल बनाया जाना चाहिए, जो किसी भी राजनीतिक दल से जुड़ा हुआ न हो तथा राज्यपाल की नियुक्ति करने से पूर्व सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री से आवश्यक रूप से परामर्श किए जाने का प्रावधान किया जाए। उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की पालना सुनिश्चित की जाए तथा इन निर्णयों की पालना में शीघ्रता की जाए। अनुच्छेद- 356 का प्रयोग करते समय संसद में सर्वसम्मति बनाई जाए तथा विपक्ष की सहमति आवश्यक रूप से ली जाए। नदी-जल विवाद के सम्यक समाधान हेतु नदियों के जल को राष्ट्रीय संपदा घोषित किया जाए तथा एक राष्ट्रीय जल नीति का निर्माण किया जाए। केन्द्र एवं राज्य सरकारें अपनी कार्य योजनाओं में व्यापक नीति और उदारवादी सोच का परिचय दें।

संदर्भ सूची

1. व्हीयर, के. सी. फेडरल गवर्नमेंट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, इले हाउस, लन्दन, 1963, पृ. 2
2. शर्मा, डॉ. धर्मराज, 'भारत में केन्द्र-राज्य सम्बन्ध', संपादकीय, उपकार जगत, 11 फरवरी 2016, अलवर, राजस्थान.
3. कश्यप, सुभाष, केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का नया राग, सहारा समय, नई दिल्ली, 5 मार्च 2005
4. केन्द्र-राज्य सम्बन्ध आयोग प्रतिवेदन, भाग- प्रथम, सन् 1998, पृ. 164
5. शर्मा, बी. एम. व शर्मा पी. डी., भारतीय प्रशासन, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1992
6. माहेश्वरी, बी. एल., सेन्टर-स्टेट रिलेशन्स इन सेवन्टीज, कलकत्ता, 1973, पृ. 4
7. शर्मा, प्रो. बी. एम., पूर्वोक्त
8. ऑस्टिन, ग्रेनविल, द इंडियन कॉन्स्टीट्यूशन, कॉर्नर स्टोन ऑफ ए नेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1966, पृ. 186

भूटान की जनसंख्या, संस्कृति व राजनैतिक संगठन



डॉ. कन्हैया लाल मीना

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, चिमनपुरा (शाहपुरा), जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

भूटान स्थल रूद्ध पहाड़ी छोटा देश स्वकीय प्रधान संस्कृति में जकड़ी एवं बिखरी हुई छोटी जनसंख्या, विभिन्न सांस्कृतिक विचारधाराओं के दो विशाल देशों के अर्थात् चीन और भारत के मध्य स्थिति एवं स्वातंत्र्य प्रेम - विचारों पद्धतियों तथा शैक्षणिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि सभी संस्थाओं के प्रति अत्यन्त शंकालु बनाए हुए है। भूटानी नागरिकता प्राप्त नेपाली राजतंत्र व्यवस्था के विरोधी हो या न हो किन्तु भक्त नहीं है। वे राष्ट्रीय सभा को सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न संस्था बनाने के पक्ष में है। मूल भूटानी और भूटानी नेपालियों के बीच एक दरार है जो इस बात से स्पष्ट झलकती है कि दक्षिणी भूटान में जहाँ भूटानी नेपाली बसे हुए हैं, निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था है जबकि भूटान के अन्य तीन भागों में चयन पद्धति है। भारत की प्रतिरक्षा में भूटान का अत्यधिक महत्व है। भारत की उत्तरी प्रतिरक्षा व्यवस्था में भूटान को भेद्योग की संज्ञा दी जाती है। चुम्बी घाटी से चीन की सीमायें केवल 80 मील है। यदि चीन विस्तारवादी इरादों से इस क्षेत्र में घुसपैठ करे तो वह न केवल भूटान को बल्कि उत्तरी बंगाल, असम, अरुणाचल प्रदेश को भारत से काट सकता है। इसलिए चीन द्वारा समय-समय पर अपनायी जाने वाली प्रतिकूल नीतियां भारत की चिन्ता का कारण बन जाती है लेकिन सौभाग्य से भारत-भूटान सम्बन्ध मित्रतापूर्ण रहे हैं और उनकी भौगोलिक स्थिति, जनसंख्या, संस्कृति और राजनैतिक संगठन भविष्य में सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों के लिए प्रेरित करती रहेगी।

संकेताक्षर : सांस्कृतिक विशिष्टता, राजनीतिक संगठन, सामाजिक परिवर्तन

किसी भी देश की विदेश नीति पर उसकी जनसंख्या के आकार, प्रकृति, योग्यता और उसकी संस्कृति आदि तत्व विशेष प्रभाव डालते हैं। जनसंख्या का आकार, विदेश नीति के आर्थिक पहलू को विशेष रूप से प्रभावित करता है। अपनी विशाल जनसंख्या के कारण भारत को अपने आर्थिक विकास में अमेरिका और रूस की तुलना में अधिक परेशानी उठानी पड़ती। भारत को अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण ही बड़े देशों पर विदेशी पूंजी, तकनीकी ज्ञान और सैनिक साज-सामान के लिए निर्भर रहना पड़ता है, लेकिन जनसंख्या में निरन्तर हो रहे गुणात्मक सुधार के कारण यह निर्भरता कम होती जा रही है। इसी प्रकार भूटान की अधिकांश जनसंख्या कृषि में लगी होने के कारण कुशल और तकनीकी कौशल युक्त श्रमिकों की कमी आती रही है। इस प्रकार की कमी भविष्य में भी रहेगी क्योंकि जनसंख्या का वितरण कुछ इसी प्रकार का है। भूटान के निवासी अनोखे हैं, लेकिन वे परम्पराओं पर आधारित तथा राष्ट्रीय अनुशासन को प्रवृत्त करने

वाली सामाजिक और आर्थिक विशिष्टताओं को प्रदर्शित करते हैं। उनके भोजन और पहनावे की आदतें उनके रीति-रिवाज, उनकी धार्मिक प्रथायें और मूकाभिनय, नृत्य, आदि सर्वथा उनके अपने हैं वे उनके समीपवर्ती या दूरस्थ पड़ोसियों से सर्वथा भिन्न प्रकार के हैं। 132 करोड़ की विशाल आबादी वाले भारत की तुलना में भूटान की जनसंख्या 7.98 लाख है। जनसंख्या के घनत्व की दृष्टि से भी दोनों देशों में अन्तर है जहाँ भूटान में प्रति वर्ग मील पर 21 से भी कम व्यक्ति रहते हैं वहीं भारत में प्रति वर्ग मील पर 382 से भी ज्यादा व्यक्ति रहते हैं।

यह माना जाता है कि भूटानी जनता का विशाल बहुमत भारतीय मंगोल प्रजाति से निर्मित हैं।¹ लेकिन देश की दक्षिणी भाग में नेपाली मूल के निवासियों का आधिक्य है। ये लोग चिरांग और सामची मध्यवर्ती प्रदेशों में रहते हैं। नेपाली मूल के निवासी प्रारम्भ से ही भूटान के प्रशासन के लिए सिरदर्द बने हुए हैं जिनकी समस्याओं का समाधान आज तक नहीं हो पाया है। इनको द्वितीय

स्तर प्राप्त होने के कारण वर्षों से इनमें असन्तोष और विद्रोह की भावना पनपती जा रही है। भूटान की जनता का विभाजन मोटे रूप से तीन भागों में किया जा सकता है - 1. पुरोहित वर्ग, 2. अभिशासी वर्ग एवं 3. किसान व श्रमिक वर्ग। लोग अध्यवसायी हैं एवं कृषि कर्म के प्रति समर्पित हैं। लेकिन देश के भू-वैज्ञानिक ढांचे के कारण नियमित कृषि कर्म अलबत्ता इक्का दुक्का स्थानों तक ही सीमित है। भूटान में बसे नेपाली लोगों की भी कई उपजातियाँ हैं, जैसे रिवाए, गुर्ग, लिम्बु, छैनी तथा थारसा। ये लोग 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में असम और बंगाल से आकर भूटान की तराई के क्षेत्रों में बसते चले गए। इनका मुख्य व्यवसाय कृषि एवं शारीरिक श्रम है। नेपाली लोगों ने भूटान के मूल निवासी भूरिया, लैटचा, टुकयास एवं दोयास की तुलना में अधिक मेहनती होने के कारण भूटान में शनैः शनैः नागरिकता प्राप्त कर ली। भूटान के प्रशासन में यद्यपि नेपालियों को नागरिकता प्रदान की, किन्तु सम्मान का दर्जा नहीं दिया। उनको देश में दो स्थानों पर बसने की स्वतंत्रता है। यही नहीं उनको भूमि खरीदने का अधिकार भी प्राप्त नहीं है। भूटान के प्रशासन में इनको कहीं भी प्रतिनिधित्व का अधिकार नहीं है। ब्लीलोरंज रेखा भूटान को पूर्वी व पश्चिमी दो भागों में विभाजित करती है। जिनमें दोनों भागों के रहन-सहन भिन्न-भिन्न हैं।² पूर्वी भूटान में रहने वाले लोगों का जीवन भारत में स्थित आसाम, पश्चिम बंगाल व नेपाल के लोगों की तरह है। भूटान के लोग बड़े परिश्रमी, अनुशासनप्रिय व राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। उनके स्वभाव में प्रायः नम्रता, शिष्टाचार व विनोदप्रियता देखने को मिलती है। कई शताब्दियों तक विश्व से पृथक् रहकर भी उन्होंने भाषा व संस्कृति का निर्माण किया।

भाषा—भूटान भारत की भाँति बहुभाषी देश है। यहाँ भिन्न-भिन्न भाषाएँ प्रचलित हैं। पूर्वी भूटान में प्रयुक्त होने वाली भाषा आसाम व पश्चिमी बंगाल में बोली जाने वाली भाषाओं से मिलती जुलती है। पश्चिमी भूटान में अधिकतर 'तिब्बती' भाषा का प्रयोग होता है किन्तु यह भाषा भी तिब्बत की मूल भाषा से भिन्न है। ये भाषा जौन्खा कहलाती है जो राजकीय भाषा भी है। इस परम्परागत "डंगन लिपि" में लिखा जाता है। यहाँ के विद्यालयों में भी विभिन्न भाषाएँ सिखाई जाती हैं जिनमें भूटानी, हिन्दी, अंग्रेजी, तिब्बती, नेपाली, आसामी और बंगाली इत्यादि प्रमुख होती हैं।³

धर्म—भारत के असदृश भूटान धर्म निरपेक्ष राज्य नहीं है। बौद्ध धर्म यहां का राज्य धर्म है। लगभग सभी निवासी बौद्ध धर्म को मानते हैं। बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय को मानने वाले लोग वहाँ अधिक हैं। बौद्ध धर्म ने आठवीं शताब्दी में एक भारतीय बौद्ध भिक्षुक के माध्यम से ही प्रवेश किया था। पाचु नदी के किनारे को

एक पोरिंगंज स्थित है, यह यहाँ का प्रसिद्ध बौद्ध मठ है। यहाँ के बौद्ध अनुयायी धर्मगुरु दलाई लामा को मानते हैं व अपने आपको लामा कहते हैं।

वेशभूषा व खान-पान—पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण भूटानी लोग ढीला और लम्बा कोट पहनते हैं और ऊपर से रंगीन कम्बल ओढ़ते हैं। विविध छटाओं वाली घाटियों में इन पोशाकों का सम्मिलित सौन्दर्य देखते ही बनता है। भूटानी पुरुष "खो" पहनते हैं। इसे ही दक्षिणी भूटान में 'बोकू' कहते हैं। स्त्रियों की घुटनों तक लम्बी पौशाक "कीरा" कहलाती है। "बोकू" एवं "कीरा" भूटान की राष्ट्रीय पौशाक हैं।⁴ यहाँ की स्त्रियाँ गले में लम्बे-लम्बे चांदी के हार पहनती हैं जिनके बीच में कीमती पत्थरों व कोडियों का प्रयोग होता है। कानों में चांदी के "कर्णफूल" व बालियों के पहनने का रिवाज है। वे अंगुलियों में कीमती पत्थरों की अंगुठियाँ पहनती हैं। भूटानी लोगों का मुख्य भोजन चावल व गेहूँ तथा मक्का है। इसके अलावा अधिकतर जौ, आलू व याक का मांस खाते हैं। ये लोग गाय व सुअर का मांस भी खाते हैं। भूटानी लोग पान व सुपारी के बड़े शौकीन होते हैं।⁵

आर्थिक तत्त्व—भूटान आर्थिक रूप से एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि व पशु-पालन है। इसके अतिरिक्त चिकनी मिट्टी के बर्तन बनाना, बाँस के पेड़ों से सुन्दर-सुन्दर चटाइयाँ बनाना, बाँस से पतली पतली तिल्लियाँ बनाना, रेशम के कीड़े पालना इत्यादि छोटे-छोटे कुटीर उद्योग हैं जिन्हें भूटान के लोग बड़े परिश्रम से करते हैं। बहुत से लोग ऊन साफ कर ऊनी कम्बल बनाने का कार्य करते हैं। कपड़ा बुनने का बहुत रिवाज है, सूती, ऊनी व रेशमी प्रायः सभी प्रकार के कपड़े ये लोग हाथ से बुन लेते हैं। ऊन से ये लोग सुन्दर-सुन्दर गलीचे बनाते हैं। यहाँ पर मठों में रहने वाले लामा लोग भी कपड़ा बुनने का काम बड़े शौक से करते हैं। कड़ाई का काम भी ये लोग भी बखूबी करते हैं। भूटानी लोग भेड़, याक और खच्चर पालते हैं।

कला—भूटान में राजाओं आदि के निवास स्थान, किले, कलात्मक दृष्टि से तो सुन्दर बने हुये हैं। साथ ही बड़े मजबूत बने हुए होते हैं। भूटान में मकान अधिकतर पत्थर व लकड़ी के बने हुए होते हैं, यहाँ के मकानों के फर्श अधिक ऊँचे नहीं होते। भूटान के लोग संगीतप्रिय होते हैं। ये लोग अपने विभिन्न समारोहों में गीत गाते हैं व नाचते हैं।

नृत्य-संगीत—भूटान में मूलतः भूटानी, नेपाली और तिब्बती नृत्य दिखाई पड़ते हैं। तिब्बत के पूर्व महाराजा 'लोग दरमा' के जीवन पर आधारित नृत्य नाटिका भूटान में बहुत लोकप्रिय है। जीवन

के क्षणभंगुरता पर आधारित “नर कंकाल नृत्य” और पुनर्जन्म की धारणा पर आधारित ‘हीरों डासर्स’ यहाँ के प्रमुख नृत्य हैं।⁶

खेलकूद—खेलकूद जगत में भूटानी धनुर्विधा में सबसे आगे बढ़े हुए हैं। भूतपूर्व महाराजा ड्रुक ग्यालपो जिम्मे दोर्जी वांग्चुक न सिर्फ उत्साही व तेज तीरन्दाजी थे, अपितु अपने देश के सर्वोत्तम निशानेबाजों में से एक थे। चूंकि इस खेल की उत्पत्ति स्थल भारत ही है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि भूटान का धनुर्विधा के प्रति वर्तमान अनुराग उस अतीत की विरासत है जबकि ईसा के पूर्व एवं परवर्ती कला में आर्यावृत का भूटान से सम्पर्क था। यहाँ लगभग सभी प्रमुख उत्सवों पर तीरन्दाजी की प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है। इसके अलावा कुश्ती (केशे), भाला फेंक (खूर्न) और पकड़ छुड़ाना (शेरेपारे) जैसे खेल भी दिखाई पड़ते हैं। इन दिनों आधुनिक खेलों का चलन भी यहाँ पर तेजी से बढ़ रहा है।⁷

राजनैतिक संगठन—भूटान में राजतंत्र की स्थापना इसी शताब्दी में 1907 ई. में हुई, किन्तु एक राजनीतिक इकाई के रूप में यह सत्रहवीं शताब्दी में ही स्थापित हो गया था। सत्रहवीं शताब्दी से लेकर 1907 ई. तक भूटान के राजनीतिक इतिहास में सत्ता केन्द्र का विवर्तन काल माना जा सकता है।⁸ आरम्भ में धर्मराज की सत्ता सर्वोच्च थी। कालान्तर में दो समानान्तर सत्ताओं का उदय हुआ। एक धर्मराज और दूसरा देवराज। 19वीं शताब्दी में ‘पोनलोपो’ के रूप में क्षेत्रीय अधिकारियों की महत्ता बढ़ गई जिससे देवराज की शक्तियों का ह्रास हो गया। 19वीं शताब्दी में पोन्लोपो में जो भयंकर संघर्ष चला उसके परिणामस्वरूप 1907 में राजतंत्र की स्थापना हुई। सन 1903 में धर्मराज के निधन के पश्चात उनका अवतरण नहीं हुआ। आनुवंशिक राज्य तंत्र के ड्रुक ग्यालपो वांग्चुक वंश के थे। राज्य तंत्र की स्थापना के पश्चात जौंगपोनों की नियुक्ति स्वयं भूटान नरेश द्वारा की जाने लगी। भूटानी लामाओं के साथ तालमेल बैठाने का प्रयास किया गया। सौगडू अथवा राष्ट्रीय सभा की स्थापना 1953 में की गई।⁹ इसके गठन में सभी क्षेत्रों और वर्गों के प्रतिनिधित्व का तो प्रावधान किया गया किन्तु निर्वाचन प्रणाली को नहीं अपनाया गया। भूटान के केवल दक्षिणी भाग में निर्वाचन होता जहाँ बहुत बड़ी संख्या में भूटानी नागरिकता प्राप्त नेपाली निवास करते हैं। भूटान के शेष तीनों भागों में राष्ट्रीय सभा के सदस्यों का चयन होता है। शासन में जनमत को स्थान देने की भूटान ने अपनी पद्धति अपनाई है।¹⁰ राष्ट्रीय सभा में लामाओं का प्रतिनिधित्व भी होता है किन्तु

वहाँ भी केन्द्रीय तथा क्षेत्रीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों के चयन का प्रावधान है। सौगंड में किसी प्रस्ताव के पारित होने के लिए यह प्रावधान है कि उसके पक्ष में कम से कम दो तिहाई मतों का समर्थन होना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि भूटान का विशिष्ट वर्ग आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में आमूल परिवर्तन का पक्षधर नहीं है। सन् 1952-53 में दक्षिणी भूटान में बसे कुछ भूटानी नेपालियों ने भूटान कांग्रेस की स्थापना की थी¹¹ और यह सोचा था कि उसकी गतिविधियों का संचालन केन्द्र भारत के किसी स्थान पर होगा। किन्तु भारत सरकार द्वारा अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष किसी रूप में सहायता प्राप्त न होने से उसका शैशव अवस्था में ही अन्त हो गया।

वर्तमान स्थिति—भूटान सरकार 18 जुलाई 2008 से एक संवैधानिक राजशाही रही है। भूटान का राजा राज्य का मुखिया है। कार्यकारी शक्ति का प्रयोग लांजिया सुंगरशोग या प्रधान मंत्रियों की अध्यक्षता में मंत्रियों की परिषद द्वारा किया जाता है। विधान शक्ति द्विमासिक संसद में निहित है, दोनों उपरी सदन राष्ट्रीय परिषद और निचले सदन नेशनल असेंबली। 22 अप्रैल 2007 को जारी एक शाही आदेश ने राजनीतिक दलों पर पिछले प्रतिबंध को उठाया, जिससे अगले वर्ष आयोजित होने वाले नेशनल असेंबली चुनावों की आशंका में उन्हें क्रम बनाया जा सके। 2008 में भूटान ने अपना पहला आधुनिक संविधान अपनाया, जिसमें सरकार के संस्थानों और लोकतांत्रिक बहु-पक्षीय व्यवस्था के कानूनी ढांचे को शामिल किया गया। अर्थशास्त्री इटेलिजेंस यूनिट ने 2016 में भूटान को “संकट शायन” के रूप में दर्जा दिया।

निष्कर्ष—भूटान में तीन मुख्य जातियां हैं जिन्हें हम शाटचौटस, नालौटस तथा नेपालियों के नाम से पुकारते हैं। तीनों जातियों की संस्कृति, धर्म तथा अहनियम भिन्न थी। भूटान में विभिन्न जातियां अपने-अपने जोन में बसी हुई है। शाटचौटस अधिकांश पूर्वी भाग में नालौटस पश्चिमी व मध्य भाग में तथा नेपाली जाति दक्षिणी भाग में। भूटान के धर्म व विव्वती भाषा व उसकी संस्कृति में विरोधाभास होने के कारण राष्ट्रीय चेतना/एकता के लिए एक परिषद का गठन हुआ है जिसके सदस्य केवल राजा के सगे सम्बन्धी लोग हैं, परन्तु समस्या सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भावुकता से जुड़ी हुई है। सत्ता चाहे आर्थिक हो या राजनीतिक एक सीमा के बाद तक साझेदारी हो सकती है उसके परे नहीं। एक और नेपालियों से अपेक्षा कि वे राष्ट्रीय चेतना की मुख्यधारा से जुड़ जाये और दूसरी ओर उन्हें आर्थिक-राजनीतिक सुविधाओं

से वंचित रखें - ऐसा होना संभव नहीं नजर आता। 1960 से पूर्व विशिष्ट वर्ग केवल परम्परावादी या लामा भिक्षुओं का एक समूह हुआ करता था जो राजतंत्रीय व्यवस्था को मजबूत रखने में सहयोग देता था। धीरे-धीरे इन लोगों की शक्तियां तथा सुविधायें मिडिल क्लास ने ले ली।

अतः सामाजिक स्तर पर परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देने लगा है कि नया विशिष्ट वर्ग आक्रामक है और परम्पराओं का केवल आवरण रखने पर विश्वास करता है। पुराना वर्ग अब धूमिल हो रहा है लेकिन बिना किसी शक्ति के उसे किसी न किसी क्षेत्र में लगाए हुए है। इस प्रकार नये मूल्यों की व्यवस्था उभर रही है। रोचक बात तो यह है कि जो लोग पुरानी दकियानूसी विचारधारा से चिपके हुये थे, अब देश के आधुनिक विकास (आधुनिक आर्थिक विकास) की शैली को अपनाने में अपना गर्व समझते हैं और पुराने मूल्यों व विश्वासों को हेय दृष्टि से देखते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. कोएलॉ, वी.एच., सिक्किम एवं भूटान-सांस्कृतिक सम्बन्ध की भारतीय परिषद् द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1967, पृ. 79
2. उपर्युक्त, पृ. 58
3. राजस्थान पत्रिका, 19 नवम्बर, 1989
4. उपर्युक्त
5. कोएलॉ, वी.एच., सिक्किम एवं भूटान-सांस्कृतिक सम्बन्ध की भारतीय परिषद् द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1967, पृ. 80
6. राजस्थान पत्रिका, 19 नवम्बर, 1989
7. उपर्युक्त
8. मिश्रा, डॉ. आर.सी., पर्वतीय क्षेत्रों की राजनीति में भूटान (राजस्थान प्रकाशन, जयपुर), 1988, पृ. 47
9. उपर्युक्त, पृ. 50
10. उपर्युक्त
11. उपर्युक्त, पृ. 53

भारत की डी-हाइफनेटेड की नई विदेश नीति (इजराइल के विशेष संदर्भ में)



डॉ. बबीता चौधरी

निदेशक

गूँज एज्यूकेशन पॉइन्ट, श्री गंगानगर (राजस्थान)

शोध सारांश

विदेश नीति कुछ स्वीकृत सिद्धान्तों का समूह होती है, एक कार्य-योजना होती है तथा दूसरे देशों के साथ सम्बन्धों को स्थापित करने तथा चलाने की एक सोची-समझी योजना होती है जिसके आधार पर राष्ट्रीय हित को परिभाषित एवं मान्यता प्राप्त उद्देश्यों एवं परिणामों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। विदेश नीति के भूगोल, अर्थव्यवस्था, धर्म और संस्कृति, अंतर्राष्ट्रीय परिवेश, गुट निरपेक्षता, पंचशील सिद्धान्त आदि निर्धारक तत्व रहे हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत की इजराइल के संदर्भ में हाइफनेटेड से डी-हाइफनेटेड हो रही विदेश नीति का विश्लेषण किया गया है। भारत ने इजराइल को 1950 में राष्ट्र के रूप में आधिकारिक मान्यता प्रदान की लेकिन 1992 तक किसी प्रकार के राजनयिक संबंध नहीं रखे लेकिन वर्तमान वैश्विक संदर्भ में भारत-इजराइल संबंधों के नवीन आयाम महत्वपूर्ण हो गए हैं, दोनों देश कृषि, शिक्षा अन्वेषण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष, जल प्रबंधन इत्यादि क्षेत्रों में परस्पर सहयोग द्वारा न केवल आपसी संबंधों को मजबूत करना चाहते हैं अपितु विश्व को भी परिवर्तित करना चाहते हैं। भारत फिलीस्तीन और इजराइल दोनों देशों को अलग-अलग करके देख रहा है यही एक डी-हाइफनेटेड विदेश नीति की पहचान होती है। अतएव बदलती परिस्थितियों में दोनों के संबंधों को नये सिरे से देखने की आवश्यकता है।

संकेताक्षर : हाइफनेशन, डी-हाइफनेटेड विदेश नीति, इजराइल-इंडिया न्वोन्मेष कोष

विदेश नीति उन सिद्धान्तों का समूह जो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्धों के दौरान अपने राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने के लिए अपनाता है। विदेश नीति और राजनय को अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के संचालन की प्रक्रिया के यान के दो पहिये कहा जा सकता है। कुछ उद्देश्यों को निश्चित करना और उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अन्य देशों के व्यवहार में परिवर्तन कराने के प्रयास करना ही विदेश नीति है। विदेश नीति का संबंध परिवर्तन और यथास्थिति दोनों से है। प्रत्येक देश कुछ ऐसे सिद्धान्तों को अपनाता है जिनके मार्ग दर्शन में वह अन्य राज्यों के साथ अपने संबंध निश्चित करता है। ये सिद्धान्त राष्ट्रीय हित और शक्ति के पारस्परिक संबंधों पर आधारित होते हैं।¹

किसी देश की विदेश नीति का निर्धारण कई स्थिर और परिवर्तनीय कारकों द्वारा होता है। भारत की विदेश नीति के निर्धारक तत्व जैसे-भूगोल, अर्थव्यवस्था, धर्म और संस्कृति, अंतर्राष्ट्रीय परिवेश, गुट निरपेक्षता आदि हैं।²

हाइफनेशन (Hyphenation)

हाइफनेशन शब्द अंग्रेजी के हाइफन (-) से बना है जो दो देशों के बीच संतुलन साधने को प्रदर्शित करता है, हाइफनेटेड विदेश नीति में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि किसी एक देश के साथ रिश्तों को बेहतर बनाने में किसी अन्य देश के साथ रिश्ते खराब ना हो जाएँ, किसी एक देश के साथ रिश्ते बनाते समय उस देश के अन्य देशों के साथ किस प्रकार के संबंध है, इस तथ्य को भी महत्व दिया जाता है साथ ही इसमें आदर्शवादी सिद्धांतों व व्यावहारिक राष्ट्रीय हितों के मध्य भी संतुलन बनाया जाता है।

डी-हाइफनेटेड (De-Hyphenated)

एक डीहाइफनेटेड विदेश नीति की पहचान ये होती है कि हम किसी भी देश के साथ अपने संबंधों का निर्धारण अपने व्यापक राष्ट्रीय हितों के आधार पर करें ना कि उस देश के अन्य देशों के साथ संबंधों के आधार पर। हेनरी अल्फ्रेड किसिंजर ने कहा था कि अन्तर्राष्ट्रीय कूट नीति में कोई दोस्त या शत्रु नहीं है, वहां केवल स्थायी हित होते हैं।

भारतीय विदेश नीति (De-Hyphenated)

आजादी के बाद के भारत की स्थितियों को देखें तो हायफनेटेड विदेश नीति से बेहतर विकल्प भारत के पास नहीं था। ये भारत की हायफनेटेड विदेश नीति का ही परिणाम है कि आज भारत विश्व के धुर प्रतिद्वंद्वी देशों के साथ एक साथ अच्छे संबंध बनाने में सफल रहा है। हायफनेटेड विदेश नीति के कारण ही आज भारत के पास विदेश संबंधों में विकल्पों की बहुलता है। परन्तु आज परिस्थितियां बदल चुकी हैं, बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में आज भारत सर्वाधिक तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था है। पहले भारत चाहता था कि उसके अन्य देशों से संबंध खराब न हों, वहीं आज की बदली हुई परिस्थितियों में अन्य देश चाहते हैं कि उनके भारत जैसी बड़ी अर्थव्यवस्था के साथ संबंध खराब न हों। हायफनेटेड विदेश नीति ऐसे व्यावहारिक संबंधों को बनाने की भारत की क्षमता को बाधित करती है जो कि भारत के राष्ट्रीय हितों को पूरा करने में सहायक हो सकते हैं। परन्तु यह भी सही है कि हायफनेटेड विदेश नीति ने ही भारत को आज इतना सक्षम बनाया है कि भारत डीहायफनेटेड विदेश नीति को अपनाने की राह पर अग्रसर है।

डीहायफनेटेड विदेश नीति का यह तात्पर्य नहीं है कि भारत ने विदेशी संबंधों में जिस संतुलन को वर्षों की मेहनत से बनाया है उसे भारत असंतुलित करने जा रहा है। भारत के लिए डीहायफनेटेड विदेश नीति का अर्थ होगा भारत के राष्ट्रीय हितों के आधार पर सभी अंतर्राष्ट्रीय ताकतों के साथ मधुर संबंध बनाना ना कि उन ताकतों के आपसी संबंधों के आधार पर।

भारत की डी-हाइफनेशन विदेश नीति (इजराइल के संदर्भ में)

भारत की विदेश नीति की व्यापक रूपरेखा या ढांचे में कभी भी बहुत अधिक बदलाव नहीं आया है। इसकी विशेषता एक निरंतरता है और इसमें किसी भी समय पर आमूलचूल परिवर्तन (रैडिकल चेंजेस) देखने को नहीं मिले हैं। परन्तु हाल की कुछ घटनाएं भारत की विदेश नीति में इजराइल के प्रति परिवर्तन की ओर संकेत करती हैं-

ऐतिहासिक संबंध

भारत को 1947 में तो इजराइल को 1948 में नौ महीने के अंतराल पर आजादी मिली थी। दोनों ही देशों को आधुनिक राष्ट्र बनने के क्रम में विभाजन का दंश झेलना पड़ा था। 14 मई, 1948 को यहूदी एजेंसी के प्रमुख डेविड बेन-गुरियन द्वारा इजराइल राष्ट्र की स्थापना की घोषणा की गई और इसके साथ ही इजराइल संयुक्त राष्ट्र में शामिल हो गया। इजराइल के प्रथम प्रधानमंत्री डेविड बेन गुरियन के दौर से ही अपनी इस धारणा को यथावत

रखा है कि भारत और इजराइल आखिरकार करीबी दोस्त होंगे। बेन गुरियन और भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू नियमित रूप से पत्र व्यवहार करते रहे। उपनिवेशों को आजादी प्रदान करने की प्रक्रिया के जोर पकड़ने और एशिया एवं अफ्रीका में नए स्वतंत्र देशों के उदय के साथ ही अन्य देशों का समर्थन प्राप्त करने के लिए भारत की सहायता महत्वपूर्ण साबित हुई। इसे स्वीकार करते हुए इजराइल को संशय से घिरे भारत को यहूदी देश को मान्यता प्रदान करने के लिए राजी करने में कड़ी मेहनत करनी पड़ी, और तो और इजराइल नेतृत्व ने नेहरू को राजी करने के लिए वैश्विक यहूदी समुदाय के सबसे प्रसिद्ध व्यक्तित्व अल्बर्ट आइंस्टीन की भी मदद ली। लेकिन महान वैज्ञानिक आइंस्टीन भी नेहरू को राजी नहीं कर सके, जबकि नेहरू जी उनका बेहद आदर करते थे। अंततः 17 सितम्बर, 1950 को भारत ने इजराइल राष्ट्र को आधिकारिक तौर पर मान्यता प्रदान की।

भारत इजरायल के सन्दर्भ में देखें तो 1920 में चलाए गए खिलाफत आन्दोलन के समय से ही भारत ने मुस्लिम आन्दोलन के समय से ही भारत ने मुस्लिम समुदाय का साथ दिया जो आज भी भारत की अरब समर्थक विदेश नीति का द्योतक है। 1948 में यहूदी राज्य इजरायल की स्थापना के बाद से 1992 तक भारत तथा इजरायल के मध्य किसी प्रकार के राजनयिक संबंध नहीं रहे। इसके मुख्यतः निम्न कारण थे-

- भारत गुट निरपेक्ष राष्ट्र था तथा दूसरे गुट निरपेक्ष राष्ट्रों की तरह इजराइल को मान्यता नहीं देता था।
- फिलिस्तीनियों को उनकी जमीन से बेघर करके 1948 में यहूदी राज्य की स्थापना को भारत ने नैतिक मापदंडों पर उचित नहीं पाया और भारत फिलिस्तीन की आजादी का समर्थक रहा।
- भारत इजरायल के साथ संबंधों को मजबूत करके अरब राष्ट्रों को नाराज नहीं करना चाहता था।
- भारत को लगता था कि फिलिस्तीन की कीमत पर इजरायल से संबंधों को मजबूती देने से भारतीय मुस्लिम समुदाय नाराज हो सकता है।

भारत ने बीच का रास्ता अपनाया (हायफनेटेड विदेश नीति) और 1950 में इजराइल राष्ट्र को आधिकारिक तौर पर मान्यता तो प्रदान की परन्तु 1992 तक भारत ने इजरायल के साथ किसी प्रकार के राजनयिक संबंध नहीं रखे, साथ ही भारत फिलिस्तीन की आजादी का समर्थन करता रहा और आज भी करता है। भारत ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दृढ़ता से दो-राष्ट्र समाधान पर बल दिया

और फिलिस्तीन अधिकृत क्षेत्र में इजरायली नीति और निर्माण कार्यों की सार्वजनिक तौर पर निंदा की।³

विदेश नीति डी-हाइफनेशन की ओर

1990 सोवियत संघ के पतन तथा पाकिस्तान के कश्मीर में गैर कानूनी घुसपैठ के चलते राजनीतिक परिवेश में परिवर्तन आया और भारत ने अपनी सोच बदलते हुए इजराइल के साथ संबंधों को मजबूत करने पर जोर दिया और 1992 में तत्कालीन प्रधानमंत्री ने इजराइल के साथ कूटनीतिक संबंध शुरू करने को मंजूरी दी। लेकिन उसके साथ भारत के राजनयिक संबंध 1992 में स्थापित हुए। प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने इजराइल के साथ कूटनीतिक संबंध शुरू करने को मंजूरी प्रदान की। हालांकि भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकारों ने और भी अधिक प्रोत्साहन दिया। इजराइल ने मुम्बई में वाणिज्य दूतावास (ब्रिटिश राज के दौर में खुला पुरानी यहूदी एजेंसी का कार्यालय) बरकरार रखा, जो दोनों देशों के बीच आधिकारिक आदान-प्रदान का मार्ग बना और जिसने भारतीय यहूदी समुदाय को इजराइल में जाकर बसने में सहायता की।

इजराइल के साथ बढ़ते संबंधों ने भारत को सार्वजनिक रूप से फिलिस्तीन को समर्थन देने तथा दोनों पक्षों से बातचीत के जरिए द्विपक्ष समाधान एवं सुरक्षित सीमाओं पर आधारित शांतिपूर्ण समाधान तलाशने के लिए प्रेरित करने से नहीं रोका। 2015 में पहली बार भारतीय राष्ट्रपति ने इजराइल का दौरा किया और अब 2017 में पहली बार किसी भारतीय प्रधानमंत्री ने इजराइल की यात्रा की। परन्तु अभी भी भारत का आधिकारिक रुख यही है कि भारत इजरायल की संप्रभुता और अस्तित्व का पूर्ण समर्थन क्षेत्रों में उनकी नीति से सहमत नहीं है। भारत सरकार इजरायल द्वारा किसी भी फिलिस्तीन क्षेत्र का अतिक्रमण करने पर उसकी सार्वजनिक निंदा करती थी तो अब ऐसा करने से बचती है। इजराइल के राष्ट्रपति रिवलिन की वर्ष 2016 की भारत यात्रा भारत-इजराइल संबंधों की परिपक्वता का परिचायक है, जो बीतते वर्षों के साथ प्रगाढ़ होते गए। भारत की विदेश मंत्री सुष्मा स्वराज ने जनवरी 2016 में इजराइल की यात्रा की थी और प्रधानमंत्री मोदी की सरकार के सत्ता में आने के बाद से दोनों देशों के बीच ऐसे उच्च स्तरीय दौरों की संख्या बढ़ी है। 2017 में जब दोनों देश अपने कूटनीतिक संबंधों के 25 वर्ष पूरा कर रहे हैं, ऐसे में प्रधानमंत्री मोदी की इजराइल की ऐतिहासिक यात्रा काफी महत्वपूर्ण है।

प्रधानमंत्री की तीन दिवसीय इजरायल यात्रा को भारत की विदेश नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन माना जा रहा है ऐसा केवल इसलिए

नहीं है कि पहली बार कोई भारतीय प्रधानमंत्री इजरायल की यात्रा पर गये बल्कि इस यात्रा के दौरान कई अन्य घटनाक्रम इस बात की ओर संकेत करते हैं जैसे-इजरायल यात्रा के दौरान फिलिस्तीनी समस्या को वार्ता का मुद्दा नहीं बनाकर जान-बूझ कर नजरअंदाज किया जाना, जो भारत की पश्चिम एशिया की नीति में एक बड़े परिवर्तन का संकेत है। प्रधानमंत्री द्वारा अपनी यात्रा को केवल इजराइल तक ही सीमित रखना और पहले के नेताओं की तरह फिलिस्तीन नहीं जाना इजरायली प्रधानमंत्री नेतन्याहू ने इन दोनों बातों को अमूल्य भेंट के तौर पर लिया और भारतीय प्रधानमंत्री का इजरायल में अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प और पोप के स्तर पर स्वागत करने का निर्णय लिया। भारत ने भी न तो 2015 में गाजा पट्टी पर किए गए ऑपरेशन प्रोटेक्टिव एज की निंदा की और नहीं पिछले दिनों फिलिस्तीन राष्ट्रपति मोहम्मद अब्बास की यात्रा को ज्यादा अहमियत दी। दरअसल नए अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के अनिश्चित रुख के कारण इजरायल को भी एक नए सशक्त और विश्वसनीय मित्र की खोज भारत पर आकर पूरी होती है। इजरायल के प्रधानमंत्री बेजामिन नेतन्याहू ने कहा कि भारत-इजरायल संबंध स्वर्ण में बने हैं।⁴

भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्रमोदी की इजराइल यात्रा

भारत-इजराइल के मध्य समझौते

- भारत में जल संरक्षण के लिए एमओयू
- औद्योगिक शोध और विकास तथा नवोन्मेष के लिए 4 करोड़ अमेरिकी डॉलर के कोष की स्थापना के लिए एमओयू, जिसे इंडिया इजराइल इनोवेटिव इनिशिएटिव फण्ड (I4 F) भी कहा जा रहा है।
- भारत के राज्यों में पानी की जरूरतों को पूरा करने के लिए MOU
- कृषि क्षेत्र में सहयोग के लिए दोनों पक्ष तीन साल के भारत इजराइल विकास सहयोग कार्यक्रम पर सहमत हुए जो 2018 से 2020 तक चलेगा।
- इसरो और इजराइल के बीच परमाणु घड़ी के लिए सहयोग की योजना
- GEO LEO ऑप्टिकल लिंक के लिए MOU जो भविष्य में सैटेलाइट के जरिये ब्राडबैंड का विकास करेगा।
- छोटे सैटेलाइट्स के लिए इलेक्ट्रिक प्रोपल्शन के क्षेत्र में सहयोग के लिए MOU

संयुक्त बयान में दोनों देशों ने माना कि आतंकवाद वैश्विक शांति और स्थायित्व के लिए बड़ा खतरा है तथा उसके सभी रूपों और

अभिव्यक्तियों से लड़ने के लिए अपनी मजबूत प्रतिबद्धता पर जोर दिया। इस यात्रा के दौरान त्रिमूर्ति चौक का नाम बदलकर हाइफा चौक कर दिया। प्रथम विश्वयुद्ध के समय भारत की 3 रियासतों मैसूर, जोधपुर और हैदराबाद के सैनिकों को अंग्रेजों की ओर से युद्ध के लिए तुर्की भेजा गया था जहाँ उन्होंने 23 सितंबर, 1918 को हाइफा का युद्ध लड़ा था, यह युद्ध प्रथम विश्व युद्ध के दौरान शांति के लिए सिनाई और फिलिस्तीन के बीच चलाए जा रहे अभियान के अंतिम महीनों में लड़ा गया था। मारवाड़ के घुड़सवार ने जर्मन सेना की मशीनगनों का मुकाबला करते हुए इजराइल के हाइफा शहर पर महज एक घंटे में कब्जा कर लिया था। इसी जंग ने इजराइल राष्ट्र के निर्माण के रास्ते खोले। 1918 में यही हाइफा यहूदी पहचान बना और 14 मई 1948 को यहूदियों के नये देश इजराइल का निर्माण हुआ। युद्ध समाप्ति के पश्चात् ब्रिटिश मूर्तिकार लियोनार्ड जेनिंग्स ने 1922 में लुटियंस दिल्ली में त्रिमूर्ति चौक बनाया, यहां लगी तीन मूर्तियाँ मैसूर, जोधपुर, हैदराबाद की सेनाओं का प्रतीक है। इस यात्रा के दौरान इजराइल के क्रिसेंथामम या गुलदाउदी फूल का नाम मोदी फूल रखे जाने की घोषणा की गई।⁵

इजराइल प्रधानमंत्री का भारत दौरा

इजराइल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू जनवरी 2018 में भारत दौर पर आए, यह 15 साल बाद किसी इजराइली प्रधानमंत्री का भारत दौरा है। इससे पहले 2003 में प्रधानमंत्री एरियल शेरोन भारत आए थे। नेतन्याहू का यह दौरा भारत-इजराइल की दोस्ती के मद्देनजर काफी अहम है, क्योंकि UN में भारत ने यरूशलम को राजधानी घोषित करने के विरोध में वोट किया था।

भारत-इजराइल के मध्य समझौते

- बनावसाकांठा में (I-Create) सेंटर का उद्घाटन
- नेतन्याहू ने खारे व गंदे पानी को साफ करने वाली वाटर प्यूरीफायर जीप मोदी को भेंट की।
- साइबर सुरक्षा पर MOU
- दोनों देशों के पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय के बीच MOU
- एयर ट्रांसपोर्ट पर एग्जीमेंट
- फिल्म-को प्रोडक्शन पर समझौता
- दोनों देशों के हौम्यापेथी पर रिसर्च के लिए MOU
- अंतरिक्ष विज्ञान व तकनीक के लिए दोनों देशों के बीच समझौता।⁶

विदेश नीति में परिवर्तन भारत के राष्ट्रीय हित के परिप्रेक्ष्य में

इजराइल से संकोच करने के पीछे एक तर्क था कि यदि भारत इजरायल के साथ संबंधों को बढ़ाता है, तो इसका विपरीत प्रभाव फिलिस्तीन पर पड़ता है। इजरायल समस्या कोई दीर्घकालिक समाधान प्रस्तुत करते हुए उपरोक्त चिंता को दूर करके भारत-इजरायल संबंधों को विकसित किया जा सकता है फिलिस्तीन के राष्ट्रध्यक्ष ने भी प्रत्यक्ष रूप से फिलिस्तीन-इजरायल समस्या को हल करने के लिए भारत को मध्यस्थ की भूमिका निभाने का आग्रह किया है। इजरायली प्रधानमंत्री नेतन्याहू ने भी कहा कि अगर भारत फिलिस्तीन व इजरायल के बीच तनाव घटाने में सहायक होता है तो वह इसका स्वागत करेंगे। इजराइल से संकोच करने के पीछे दूसरा तर्क था भारत के मुस्लिम समुदाय का नाराज होना जो कि निराधार है क्योंकि भारत के मुस्लिम समुदाय का इजराइल से क्या लेना-देना है? वहां जो झगड़ा है वह इस्लाम और यहूदीवाद के बीच नहीं है। वह मामला धार्मिक नहीं है बल्कि क्षेत्रीय मामला है। तीसरा तर्क था, अरब देशों से हमारे संबंधों में तनाव पैदा होना राष्ट्रों के अपने स्वार्थ है। यदि वे इजराइल से अच्छे संबंध बनाने वाले राष्ट्रों से दुश्मनी करने लगें तो इससे उनकी ही राष्ट्रीय हित प्रभावित होंगे। उदाहरण अमेरिका इजराइल का सबसे बड़ा संरक्षक है। फिर भी लगभग सभी अरब देशों ने अमेरिका के साथ घनिष्ठ संबंध बनाये हुए हैं। वैसे भी भारत की परम्परागत रूप से फिलिस्तीन समर्थक नीति के बावजूद भी भारत को अरब जगत में बहुत कम सद्भावना मिली है। अरब देश महत्वपूर्ण अवसरों पर भारत के खिलाफ पाकिस्तान का समर्थन करते रहे हैं। चौथा तर्क था कि भारत गुट निरपेक्ष राष्ट्र था, और इजरायल अमेरिकी गुट में शामिल देश था, वो भी सोवियत संघ के विघटन के बाद निराधार हो गया है। साथ ही फिलिस्तीनी मुक्ति आंदोलन का धीरे-धीरे हमास और हिज्बुल्लाह जैसे धार्मिक अतिवादी संगठनों के हाथ में जाने से यासिर अराफात जैसे धर्मनिरपेक्ष नेता अब इस संघर्ष में नहीं रहे जो वैचारिक आधार पर भी भारत के वर्तमान इजरायली झुकाव को मजबूत करता है।

इजरायल के साथ दोस्ती भारत के हित में इसलिए है, क्योंकि कई क्षेत्रों में यह छोटा सा देश दुनिया के अन्य देशों से कंही ज्यादा आगे निकल चुका है। सिंचाई के नये तरीकों से इजराइल ने रेगिस्तान को हरा भरा करके दिखाया है। भारत के किसानों को इससे बहुत लाभ हो सकता है। इजरायल से हमें गंगा की सफाई में भी सहायता मिलने वाली है, सुरक्षा मामलों भी इजराइल की भारत का महत्वपूर्ण सहयोगी है। इजरायल की तरह भारत भी एक ऐसे पड़ोस में रहने को मजबूर है, जहां चारों तरफ अशांति और

अराजकता का माहौल है। ऐसे में इजरायल की मदद से भारत इन हानिकारक ताकतों का मुकाबला अधिक सक्षम रूप से कर सकता है।⁷ चीन ने जुलाई 2017 में अफ्रीका और दक्षिण में शांति और मानवता कायम करने में मदद के नाम पर जिबूती में अपना सैनिक अड्डा बनाने के लिए अपनी सेना को भेजा जिससे भारत के सामरिक हित प्रभावित हो सकते हैं। दरअसल यह वह क्षेत्र है जहां से होकर भारत के व्यापारिक जहाज बड़ी संख्या में गुजरते हैं। ऐसे में भारत को भी पूर्वी अफ्रीका और पश्चिमी एशिया में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने की जरूरत है जिसमें इजरायल से संबंध काफी मददगार साबित हो सकते हैं। जिबूती पूर्वी अफ्रीका (हॉर्न ऑफ अफ्रीका) में बसा एक देश है, जिसकी सीमाएं उत्तर में इरीट्रिया से पश्चिम और दक्षिण में इथियोपिया से और दक्षिण पूर्व में सोमालिया से मिलती हैं। इसके अलावा लाल सागर और गल्फ ऑफ अदन से मिलती देश की सीमाएं हैं। जिस कारण इसे रणनीतिक तौर पर महत्वपूर्ण दर्जा प्राप्त है। इससे पहले अमेरिका, जापान और फ्रांस भी जिबूती में अपना सैनिक अड्डा बना चुके हैं, यहीं से होकर दक्षिणी दिशा से लाल सागर में प्रविष्ट हुआ जाता है। स्वेज नहर का रास्ता भी यहीं से होकर है। चार अलग-अलग समुदायों (बेने इजराइल, कोचीनीज, बगदादिस और बनी मेनाशे) से संबंधित लगभग 80, 000 भारतीय यहूदी इजराइल में रहते हैं। इजराइल में भारतीय यहूदी समुदाय अभी भी भारतीय सांस्कृतिक प्रथाओं को जीवित रखे हैं।

वर्तमान वैश्विक संदर्भ में भारत-इजराइल संबंधों के नवीन आयाम महत्वपूर्ण हो गए हैं। भारत और इजराइल कृषि, शिक्षा, अन्वेषण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष, जल प्रबंधन इत्यादि क्षेत्रों में परस्पर सहयोग द्वारा न केवल आपसी संबंधों को मजबूत करना चाहते हैं अपितु विश्व को भी परिवर्तित करना चाहते हैं इजराइल ने सुरक्षा परिषद् में भारत के स्थायी सदस्यता का भी समर्थन किया है।⁸

निष्कर्ष

- कोई भी देश अलग-अलग होकर या पूरी तरह आत्मनिर्भर होकर नहीं रह सकता। विभिन्न देशों की विविध प्रकार की जरूरतों की पूर्ति के लिए उनमें पारस्परिक अंतर्निर्भरता उन्हें एक दूसरे के नजदीक लाती है और इस नजदीकी से उत्पन्न सहयोग मतभेदों आदि का प्रबंधन करने के लिए विदेश नीति का निर्माण किया जाता है।

- जवाहरलाल नेहरू से लेकर मोरारजी देसाई तक सभी ने कृषि की उन्नति से लेकर राष्ट्रीय सुरक्षा तक इजराइल से निःसंकोच सहायता ली। भारत के साथ औपचारिक संबंध न होने के बावजूद इजराइल ने नेशनल सिक्वोरिटी से लेकर फूड सिक्वोरिटी तक अपना सहयोग दिया। यह वो समय था, जब अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में बड़े-बड़े बदलाव हो रहे थे।
- नेहरू और इंदिरा गांधी की फिलिस्तीन समर्थक नीति से एक कदम आगे बढ़कर राजीव गांधी ने इजराइल के प्रधानमंत्री से युनाइटेड नेशन्स में मुलाकात की। राजीव गांधी के कार्यकाल में संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेंबली की सालाना मीटिंग में भारत के प्रधानमंत्री का इजराइल के प्रधानमंत्री से मिलना दोनों देशों के संबंधों में बदलाव का परिचायक था।
- भारत फिलिस्तीन और इजराइल दोनों देशों को अलग-अलग करके देख रहा है और यही एक "डीहायफनेटिड विदेश नीति" की पहचान होती है। फिलिस्तीनियों के प्रति भारतीय नीति में कोई बुनियादी परिवर्तन होगा। वास्तव में भारत इजरायल घनिष्ठता, फिलिस्तीन समस्या को हल करने में सहायक की भूमिका ही निभाएगी। इजरायली प्रधानमंत्री नेतन्याहू ने कहा कि भारत और इजरायल के रिश्तों का उभयपक्षीय कसौटी में ही परखा जाये ना कि क्षेत्रीय या वैश्विक समीकरणों के सन्दर्भ में।

संदर्भ सूची

1. पन्निकर, के. एम., इण्डिया एण्ड द इण्डियन ओशन, एलन एण्ड अन्विन, 1951, पृ. 83
2. दत्त, वी. पी., इण्डियाज फॉरेन पॉलिसी, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2011, पृ. 82
3. वर्ल्ड फोकस, जनवरी, 2018 पृ. 20
4. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू बीबीसी.को.यू.के./इण्डिया
5. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू आरएसटीवी.एनआईसी.इन
6. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू एमईए.जीओवी.इन-लोकसभा
7. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू लाईवमिंट.कॉम
8. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू हिन्दू.कॉम

भारत में आतंकवाद—चुनौती एवं समस्या

डॉ. कौसर फिरदौस जाफरी

राजनीति विज्ञान विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)



शोध सारांश

समसामयिक परिदृश्य में आतंकवाद अपने चरमोत्कर्ष तक पहुंच गया है एवं मानवता के लिए विकराल संकट बन गया है। पाकिस्तान में आई.एस.आई. के माध्यम से इस्लामी संगठनों को एकत्रित कर उनकी मदद से अफ़ग़ानिस्तान एवं हिन्दुस्तान पर आतंकवादी हमले करवाए गए। लश्कर-ए-तैयबा, जैश-ए-मोहम्मद व जे.ई.एम. आदि प्रमुख संगठनों द्वारा आतंकवादी तैयार किए जाते हैं। आतंकवाद में ऐसे बर्बर, हिंसक तरीकों को अपनाया जाता है जिन्हें आज के सभ्य मानवतावादी समाज में स्वीकार नहीं किया जा सकता। भारत का कोई भी क्षेत्र आतंकवाद से अछूता नहीं है चाहे जम्मू-कश्मीर हो, तमिलनाडु या उत्तर-पूर्वी राज्य हो, या पश्चिम बंगाल या बिहार, राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली हो, या आर्थिक राजधानी मुम्बई। आज आवश्यकता इस बात की है कि आतंकवाद को दृढ़ता व ईमानदारी से परास्त करने की योजना बनानी चाहिए। आतंकवादियों के विश्वव्यापी जाल को तोड़ देना तब ही सम्भव है। जिसके लिए स्वभाविक रूप से दृढ़ राजनैतिक इच्छा शक्ति, क्षमता, सार्थक योजनाओं, गहरी दूरदर्शिता व धैर्य की आवश्यकता है।

संकेताक्षर : आई.एस.आई., लश्कर-ए-तोएबा, जैश-ए-मोहम्मद, उग्रवाद, अलगाववाद

मानव जीवन के विविध पक्षों पर, उनकी सोच पर, जीवन शैली पर समाज का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा गया है। समाज का निर्माण व्यक्तियों की आपसी सामूहिकता व सह-सम्बंध से होता है। स्वाभाविक है कि व्यक्तियों के ऊपर होने वाले प्रभाव व परिवर्तनों का असर समाज व देश पर भी होता है।

“यही पशु प्रवृत्ति है कि आप ही आप चरें!

वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे!!”

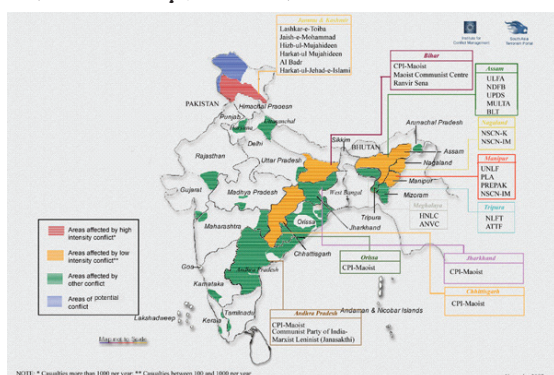
ब्रयान एम. जैकिंस(1974) के शब्दों में आतंकवाद “हिंसा की धमकी, व्यक्तिगत हिंसात्मक कृत्य और लोगों को आतंकित करने के उद्देश्य से हिंसा का विचार आतंकवाद है।”¹ समसामयिक परिदृश्य में आतंकवाद अपने चरमोत्कर्ष तक पहुंच गया है एवं मानवता के लिए विकराल संकट बन गया है। आज राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के मध्य का अंतर समाप्त हो गया है, क्योंकि आतंकवादी संगठनों के मध्य परस्पर सहयोग व सम्पर्क बढ़ रहा है। पाकिस्तान में आई.एस.आई. के माध्यम से इस्लामी संगठनों को एकत्रित कर उनकी मदद से अफ़ग़ानिस्तान एवं हिन्दुस्तान पर आतंकवादी हमले करवाए गए। अमरीका आतंकवाद के खात्मे के नारे के साथ इस महाद्वीप पर नियंत्रण करना चाहता

है। लश्कर-ए-तोएबा, जैश-ए-मोहम्मद व जे.ई.एम. आदि प्रमुख संगठनों द्वारा आतंकवादी तैयार किए जाते हैं।²

साधारणतया आतंकवाद का अभिप्राय आतंक उत्पन्न करने के पीछे किसी संगठन अथवा समूह का कोई निश्चित लक्ष्य गुप्त कार्यवाहियों द्वारा प्राप्त करना होता है। यह लक्ष्य राजनैतिक, धार्मिक तथा व्यक्तिगत भी हो सकता है। आतंकवाद में ऐसे बर्बर, हिंसक तरीकों को अपनाया जाता है जिन्हें आज के सभ्य मानवतावादी समाज में स्वीकार नहीं किया जा सकता। गुप्त कार्यवाहियों द्वारा भय उत्पन्न करके अपने उद्देश्य की पूर्ति करना ही आतंकवाद है। आतंकवाद के मूल स्रोतों का चिन्तन करने पर कई स्रोत सामने दिखाई देते हैं, जिसमें गरीबी, अभाव, अशिक्षा, मानसिक विक्षिप्तता, बेरोज़गारी, अतिगतिशीलता एवं शीघ्रातिशीघ्र संपत्ति अर्जन की लालसा मुख्य है। इसके अतिरिक्त आधुनिक आतंकवाद का विशुद्ध रूप, राजनीतिक हितों की प्राप्ति से सम्बन्धित हो गया है। इस श्रेणी में अफ़ग़ानिस्तान, फिलीपींस जैसे राष्ट्र शामिल हैं जो राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि के लिए आतंकवाद को संरक्षण व बढ़ावा दे रहे हैं। दूसरी ओर अमरीका जैसे राष्ट्र आतंकवाद के सफाये के नाम पर अपने हितों को साधने में लगे हैं।³

यहां हमें इस बात को समझना होगा कि आतंकवादियों के लक्ष्य एक सामान्य अपराधियों अथवा संस्थागत अपराधियों अथवा सफेदपोश अपराधियों से भिन्न प्रकार के होते हैं। ये सामान्यतः व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं होते हैं, जैसा कि अन्य प्रकार के अपराधों में देखे जा सकते हैं। संगठनात्मक अपराधियों द्वारा भी सरकारी नीतियों को प्रभावित करने के प्रयास किए जाते हैं, किन्तु ये आतंकी नहीं कहे जा सकते।⁴

भारत में आतंकवाद से प्रभावित राज्य



भारत में आतंकवाद के कारण- हमारी आन्तरिक विषमताओं व समस्याओं के अलावा पड़ोसी देश भी भारत को अशांत बनाने में पीछे नहीं हैं। भारतीय सुरक्षा के समक्ष खतरे हैं, जो कि उग्रवाद, अलगाववाद को बढ़ावा दे रहे हैं-

1. आर्थिक कारण-आर्थिक मुद्दा बहुत बड़ा मुद्दा है, क्योंकि यह कई प्रकार से आतंकवाद को जन्म देने में सक्षम हुआ है। आतंक के सौदागरों के पास बहुत मात्रा में पैसा होता है तथा यह गलत धंधों, चंदे आदि के माध्यम से इसकी उगाही की जाती है तथा हथियार संसाधन, सूचना इकट्ठी करने के काम में आते हैं। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भारत की कमज़ोर आर्थिक स्थिति आतंकियों के उद्देश्यों को पूरा करने में मददगार साबित हो रही हैं।

2. राजनीतिक कारण-राजनीतिक कारणों ने ही पहले अतिवादी एवं तत्पश्चात आतंकवादी गतिविधियों को जन्म दिया। आज की राजनीति बाहुबल एवं शक्ति पर आधारित हो चुकी है। ज़ाहिर है इससे अपराधीकरण को बढ़ावा मिलता है। अपराधियों को अराजक गतिविधियों की ओर आकर्षित करना बहुत ही आसान होता है, जो आज की राजनीति खुले आम परोस रही है। जाति, नस्ल, सम्प्रदाय के नाम पर की जाने वाली राजनीति भस्मासुर की तरह होती चली जा रही है, जो स्वयं इन राजनीतिक पार्टियों एवं राजनेताओं की पहुँच से दूर होती चली जा रही है।

3. जातीय कारण-जातीय कारणों के दृष्टिकोण से आतंकी संघर्षों से प्रभावित क्षेत्रों में प्रमुखतः नागालैंड मिजोरम, मणिपुर रहे हैं। इनके झगड़े छोटे स्तर पर जातीय कारणों से शुरू हुए व धीरे-धीरे विकराल बनकर आतंकी गतिविधियों में परिणत हो गए। पंजाब का आतंकवाद पूरे उत्तर-भारत को अराजकता से जोड़ गया था। जातीय व्यवस्था ने समाज में विभेद पैदा किया व अनजाने में ही छोटे-बड़े का एहसास कराया इससे समाज में दूरियां बढ़ने लगीं। इस प्रकार जातीय व्यवस्था की कमज़ोरियों ने समाज में अराजकता एवं विध्वंसक प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने में योगदान दिया है और आज भी दे रहा है।

4. धार्मिक कारण-धर्म भारतीय सामाजिक व्यवस्था एवं भारतीय जनमानस में बहुत ही महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। धर्म की आड़ में एक बड़ा ही भयावह आतंकी माहौल बना, जब पंजाब को खालिस्तान बनाने की ज़ोर आजमाइश की गई। सिखों के कई संगठन इस मांग को उचित ठहराते हुए आतंकी बन गए, बहुत ही मुश्किल से इस समस्या पर नियंत्रण पाया गया। परंतु जम्मू-कश्मीर में इस समस्या को अभी तक नियंत्रित नहीं किया जा सका है।⁵

5. प्रादेशिकता एवं क्षेत्रीयतावाद-प्रादेशिकता के अन्तर्गत अनेक सीमा विवाद जल बंटवारे सम्बंधी विवाद, आर्थिक साधनों के वितरण सम्बंधी विवाद आते हैं महाराष्ट्र, मैसूर, हरियाणा व पंजाब में ऐसे विवादों के ढेर सारे उदाहरण हैं। अनेक वर्षों तक स्वतंत्रत मिल बनाने की मांग को लेकर काफी उपद्रव होते रहे हैं। पंजाब में 'खालिस्तान' व असम में अलगाववादियों ने 'सदै आसाम' की मांग को लेकर सुरक्षा व्यवस्था को प्रभावित किया है। कश्मीर की स्थिति दिन-प्रतिदिन अत्यंत विस्फोटक होती जा रही है। प्रान्तीयता एवं क्षेत्रीयता की भावनाएं राष्ट्रीय एकता को खण्डित करने के साथ-साथ आर्थिक एवं औद्योगिक विकास में बाधा पहुँचाती है।

6. भाषावाद-सरकारी अनुमानों के अनुसार भारत में 179 भाषायें तथा 594 उपभाषायें हैं। साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से 15 मुख्य भाषायें हैं, जिसे भारतीय संविधान में मान्यता प्राप्त है। भारत में भाषावाद के झगड़े, दक्षिण में मद्रास, पूर्व में आसाम, पश्चिम में बंगाल तथा हिन्दी भाषा उत्तरी भारत में गत कई वर्षों से होते रहे हैं। भाषा विवाद ने निश्चित ही हमारी सुरक्षा व्यवस्था बनाये रखने में जटिलताएँ उत्पन्न की हैं।

7. शोषण व अन्याय की प्रवृत्ति-विश्वभर में शोषण व अन्याय की प्रवृत्ति सदियों से चली आ रही है, साम्राज्यवाद के द्वारा अविकसित और निर्धन राष्ट्रों का शोषण किया गया। आज़ादी

के बाद भी शोषण की प्रवृत्तियाँ कायम रहीं, इसी प्रकार की परिस्थितियों में आतंकवादी नहीं है बल्कि शोषण व अन्याय के विरोधी है।

8. युवकों में असंतोष—बेरोज़गारी गरीबी, बीमारी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद आदि अनेक कारणों से युवकों में असंतोष है। आज का युवक अधिक महत्त्वकांक्षी है, परन्तु अपनी महत्त्वकांक्षाओं को पूरा करने के लिए उसके पास साधन नहीं है, इसलिए वह तस्करी, नशीले पदार्थों का व्यापार व आतंकवाद से जुड़ जाता है।

9. अवैध शस्त्र, मादक पदार्थों की तस्करी—वर्तमान में अवैध शस्त्र व्यापार इतना बढ़ गया है कि अत्याधुनिक एवं प्रतिबंधित शस्त्रों को अवैध रूप से प्राप्त करना कोई कठिन कार्य नहीं रह गया है। अपराधी व आतंकवादी तक इनकी सुलभता ने स्थिति को विस्फोटक बना दिया है। अवैध व्यापार का जाल लगातार फैलता जा रहा है। विश्व के आधे से अधिक देशों में हथियारों की तस्करी, नकली नोटों का व्यापार, मादक पदार्थों का कारोबार फैला है। आतंकवादियों को इन्हीं स्रोतों से अत्यधिक धन प्राप्त होता है, जिसका प्रयोग वह अपनी कुत्सित योजनाओं में करते हैं।

कश्मीर समस्या का जन्म, कबाइली युद्ध तथा कश्मीर का औपचारिक व संवैधानिक तौर पर भारत में विलय—स्वतंत्रता प्राप्ति व ब्रिटिश शासन समाप्ति के बाद कुछ राजाओं ने अपने स्वतंत्र राज्य निर्माण का स्वप्न देखा था उनमें से एक कश्मीर रियासत भी थी। कश्मीर के शासक राजा हरिसिंह हिन्दू थे, जबकि उनकी 40 लाख की जनसंख्या में 66 प्रतिशत भाग मुसलमानों का था। कश्मीर में दुविधापूर्ण व अनिश्चय की स्थिति बनी हुई थी, इसकी सीमाएँ दोनों देशों से लगी हुई थी। राजा हरि सिंह कोई निर्णय नहीं कर पा रहे थे उन्होंने 12 अगस्त को भारत व पाकिस्तान के साथ यथा स्थिति समझौता का प्रस्ताव रखा जिसे दोनों सरकारों ने स्वीकार कर लिया। समझौते के कुछ ही दिन बाद पाकिस्तान ने इसका उल्लंघन करना शुरू कर दिया और पाकिस्तान कश्मीरी शासक पर पाकिस्तान के साथ सम्मिलित होने के लिए दबाव डालने लगा।

20 अक्टूबर 1947 को पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। इस पर महाराजा हरिसिंह ने भारत से सहायता मांगी तो तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने प्रतिक्रिया स्वरूप स्पष्ट कहा कि कश्मीर को हम तभी सहायता दे सकते हैं जब कश्मीर भारत में सम्मिलित हो जाए। कोई रास्ता न देख अंततः 26 अक्टूबर 1947 को कश्मीर के राजा हरिसिंह ने विलयपत्र पर

हस्ताक्षर कर दिए। इसी के साथ संवैधानिक दृष्टि से समस्त जम्मू-कश्मीर क्षेत्र भारत का अंग बन गया।



कश्मीर के प्रश्न पर पाकिस्तान के तर्क

- कश्मीर का भारत में विलय भारत द्वारा प्रयोग की गयी शक्ति व भय प्रदर्शन का परिणाम है।
- कश्मीर एक मुस्लिम बाहुल्य प्रदेश है। अतः वह क्षेत्र उसे प्राप्त होना चाहिए।
- कश्मीर के महाराजा व पाकिस्तान के मध्य यथास्थिति समझौता सम्पन्न हो चुका था तब पाकिस्तान की बिना अनुमति के महाराजा द्वारा कश्मीर को भारत के साथ सम्मिलित करना न्यायसंगत नहीं है।
- कश्मीर के महाराजा द्वारा भारत के साथ जो समझौता हुआ था वह कुछ शर्तों पर आधारित था, जो स्थाई नहीं था। कहा जा सकता है समयावधि के उपरांत उसे रद्द समझा जाना चाहिए।
- कश्मीर के महाराजा द्वारा भारत के साथ विलय पत्र पर हस्ताक्षर करने के समय तक कश्मीर का अधिकांश भू-भाग आंदोलनकारियों द्वारा अपने वश में किया जा चुका था। अतः इस भू-भाग पर भारत का अधिकार असंवैधानिक है।
- कश्मीर का विलय जनमत संग्रह पर आधारित था, इस प्रश्न पर पाकिस्तान को समानता का अधिकार है, क्योंकि सभी निर्णय कांग्रेस व मुस्लिम लीग के रज़ामंदी से हुए थे।
- कश्मीर के महाराजा ने जनता की इच्छा के विरुद्ध भारत में सम्मिलित होना स्वीकार किया था। अतः यह वैधानिक नहीं है।
- कश्मीर में उथल-पुथल भारतीय सरकार के प्रति अविश्वास का परिचायक है। सुरक्षा बलों के बाहुल्य से उनकी आवाज़ों

को दबाया जाना व आन्दोलनकारी नेताओं की गिरफ्तारी अनुचित है। यह भारत सरकार की कमज़ोरी को दर्शाती है।

कश्मीर के प्रश्न पर भारत के तर्क

- भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1935 में यह व्यवस्था थी कि देसी रियासतों के शासक अपने भाग्य का निर्णय करने के लिए स्वतंत्र हैं। अन्य रियासतों के लिए भी यही प्रवेश पत्रक तथा प्रक्रिया अपनाई गई थी। अतः कश्मीर का भारत में विलय वैधानिक तौर पर हुआ है।
- कश्मीर की जनता द्वारा भी स्वतंत्र रूप से निर्वाचित संविधान सभा के माध्यम से कश्मीर को भारतीय संघ का अभिन्न अंग घोषित किया गया है। अतः जनमत संग्रह की बात पूर्ण रूप से आधार हीन है।
- आत्मनिर्णय का प्रश्न एक लोकतंत्रीय प्रश्न है। इसका प्रयोग राज्यों को टुकड़ों में विभाजित करने के लिए नहीं किया जाता है। उदाहरणार्थ क्या पाकिस्तान सिन्ध प्रांत के निवासियों को आत्मनिर्णय का अधिकार दे देगा, क्योंकि ऐसे अधिकार दे देने से प्रत्येक देश की अखण्डता खतरे में पड़ जाएगी।
- भारत का दावा है कि पाकिस्तान एक आक्रामक देश है। इसने शांति व सुरक्षा के वातावरण को दूषित कर दिया है। भारत ने सुरक्षा परिषद में यह मांग रखी थी कि पाकिस्तान को आक्रमणकारी घोषित कर इस पर प्रतिबंध लगाये जायें।
- पाकिस्तान सुरक्षा परिषद के निर्णयों को सरलता व निष्ठा से स्वीकार नहीं करता उसने कूटनीतिक दांव पेंचों का सहारा लेकर स्थिति को जटिल बना दिया है।
- पाकिस्तान एक तृतीय पक्ष है जो किसी प्रकार का दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता।
- पाकिस्तान आतंकवादी देश है जो जम्मू-कश्मीर में ही नहीं सम्पूर्ण भारत की शांति व्यवस्था भंग करना चाहता है। भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मांग की है कि इसे आतंकवादी देश घोषित कर इस पर कड़े प्रतिबंध लगाये जायें।
- पाकिस्तान किसी शांति वार्ता में दिलचस्पी नहीं लेता चाहे सुरक्षा परिषद हो या गुटनिरपेक्ष आन्दोलन।⁶

कश्मीर के प्रश्न पर सत्य व अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी का दृढ़ विश्वास था कि भारत का तर्क सत्य है। उन्होंने अपनी प्रार्थना सभा में लॉर्ड माउंट बेटन से कहा था कि 'कश्मीर की रक्षा के लिए यदि भारत की सारी सेना कुर्बान हो जाये तो भी मेरी आंख से

एक बूंद नहीं टपकेगी, क्योंकि भारत सरकार का यह कार्य सत्य के मार्ग पर है।

आतंकवाद की चुनौतियाँ- आतंकवाद रूपी दैत्य धीरे-धीरे समूची दुनिया को अपनी भूख शांत करने के लिए जिंदा ही निगलने के लिए तैयारी में जुटा है। इसके विस्तार पर नज़र डालने पर महसूस होता है कि यह विकसित व अविकसित देशों में भेदभाव नहीं करता व सभी तरह के देशों को अपनी चपेट में ले रहा है। फिर भी विकसित देशों में इनकी जीविका कुछ ज्यादा ही आसान रही है और इसलिए एशियाई व अफ्रीकी देशों की फेहरिस्त लम्बी है। इनकी कार्यवाहियों की गहनता व तीव्रता विकसित देशों में अधिक है। विकसित देश तकनीकी रूप से सक्षम होने के कारण तथा वहां शिक्षित एवं संवेदनशील जनसंख्या होने के कारण प्रतिक्रियात्मक कार्यवाहियों को बखूबी अंजाम देने में सफल होते हैं। दूसरी तरफ अविकसित देश उन कमियों के कारण इनसे मुकाबला करने में कम सक्षम होते हैं।

इससे सबसे बड़ी चुनौती सरकार की आर्थिक स्थिति पर गहरी चोट के रूप में उभरकर सामने आती है। एक तो इनसे लड़ने में तकनीकों, हथियारों संसाधनों की आवश्यकता होती है, दूसरे विदेशी निवेश, पर्यटन, व्यापार, विकास आदि पर इसका सीधा असर पड़ता है। सामाजिक एवं साम्प्रदायिक कलह को बढ़ावा देने में यह परिस्थितियाँ अनुकूल साबित होती हैं और समाज जाति, धर्म, सम्प्रदायों आदि में बंट जाते हैं। बेगुनाह व मासूम लोग इस साजिश के शिकार बनते हैं और हर तरफ आतंक व अनजाना डर का साया गहराता चला जाता है। इस पर काबू पाने के लिए इसकी एक परिभाषा देनी होगी, जो विश्व के सभी देशों में मान्य हो व सभी देश उसका सम्मान करें अन्यथा हमेशा ही दुविधा की स्थिति रहेगी। उदाहरणतः भारत जिसे आतंकवाद कहता है, पाकिस्तान उसे स्वतंत्रता संग्राम कहकर जायज़ ठहराता है।⁷

उपसंहार

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक व शांतिप्रिय देश है। भारत का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो आतंकवाद से अछूता हो। चाहे जम्मू-कश्मीर हो, तमिलनाडु या उत्तर-पूर्वी राज्य हो, या पश्चिम बंगाल या बिहार, राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली हो, या आर्थिक राजधानी मुम्बई। आज आवश्यकता इस बात की है कि आतंकवाद को दृढ़ता व ईमानदारी से परास्त करने की योजना बनानी चाहिए। आतंकवादियों के विश्वव्यापी जाल को तोड़ देना तब ही सम्भव है। जिसके लिए स्वभाविक रूप से दृढ़ राजनैतिक इच्छा शक्ति, क्षमता, सार्थक योजनाओं, गहरी दूरदर्शिता व धैर्य की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. जैकिंस, ब्रायन एम, इंटरनेशनल टेररिज़्म एण्ड वर्ल्ड सिक्योरिटी, रैंड कोरपोरेशंस, 1974
2. नारंग एस ए, टेररिज़्म ए ग्लोबल पर्सपेक्टिव, कनिष्का पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2001, पृ. 26
3. कौसिस, ऑट्टी, टेररिज़्म पोलिटिक्स वोल्यूम 3, चैप्टर 6, बोलेरी प्रैस, 1989
4. अहमद, इकबाल, स्टेट टॉक ओन टेररिज़्म, सेवन स्टोरीज़ प्रैस, 1981, पृ. 29
5. सिंह, डॉ. बी.आर., भारत में आतंकवाद, राधा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2010, पृ. 14
6. सिंह, अशोक कुमार, राष्ट्रीय सुरक्षा के आयाम, अविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2001, पृ. 32
7. टेररिज़्म कोसेप्ट कॉज़ेज़ एण्ड कोनफिलिक्ट रेज्यूतूशन, प्रिंटेड बाय द डिफेंस थ्रैट रिडक्शन ऐजेंसी, मेसन युनिवर्सिटी, फोर्ट बेलवोर, वर्जिनिया, 14 जनवरी 2003, पृ. 142-147

अलवर जिले में कृषि का आधुनिकीकरण एवं भौगोलिक अध्ययन



डॉ. मीनाक्षी शर्मा

शोधार्थी, भूगोल विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

1967 के बाद देश में हरित क्रांति की लहर के बाद कृषि विकास प्रभावित हुआ है। जनसंख्या आंकड़ों के आधार पर जिले की जनसंख्या में लगातार वृद्धि जारी है। बढ़ती आबादी के भरण-पोषण हेतु एवं जनसंख्या के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने हेतु कृषि व्यवस्था को विकसित करना, क्षेत्र की प्रथम आवश्यकता है। पिछले कुछ वर्षों से कृषि के क्षेत्र में अनुसंधानों से नये परिवर्तन हुए हैं। राजस्थान में कृषि के आधुनिकीकरण के लिए अनेक योजनाएं सरकार द्वारा चलाई जा रही हैं इसके बावजूद अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आये हैं। अलवर जिला राजस्थान राज्य के उत्तर पूर्वी भाग में अवस्थित है। जिले का अक्षांशीय विस्तार $27^{\circ}4'$ उत्तरी अक्षांश से $28^{\circ}4'$ अक्षांश के मध्य एवं देशान्तरीय विस्तार $76^{\circ}7'$ से $77^{\circ}13'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। जिले की आकृति नियमित चतुर्भुज रूप में है। जिले का उत्तर-दक्षिण विस्तार 137 कि.मी. है जबकि पूर्व-पश्चिम दिशा में 110 कि. मी. तक विस्तृत है। सामान्य रूप से इसकी लम्बाई, चौड़ाई से अधिक है। जिले का आकार सामान्य भाषा में एक अनाज की भरी हुई बोरी के समान है। जिले का कुल क्षेत्रफल 8380 वर्ग कि. मी. है। जो राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.45 प्रतिशत भाग है। राजस्थान में कृषि आधुनिकीकरण के साथ विशेषतः अलवर जिले में कृषि के आधुनिकीकरण का अध्ययन किया गया जिसने जिले के भावी कृषि विकास की योजनाओं को आधार एवं दिशा प्रदान करने में सहायता मिल सके तथा सहज ही क्षेत्रीय अध्ययन से यह अनुमान लगाया जा सके कि जिले की किस भाग में किन परिस्थितियों के कारण कृषि विकास कम हुआ है एवं किस भाग में और अधिक कृषि विकास की सम्भावना दिखाई दे रही है। संकेताक्षर : कृषि का आधुनिकीकरण, सिंचाई, सहकारिता, वैज्ञानिक उपकरण, हरित क्रांति

सामान्य रूप में आधुनिकीकरण प्रक्रिया तर्क एवं वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित प्रमाणित प्रक्रिया है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इस विचारधारा को लेकर विश्व में आर्थिक विकास की प्रतिस्पर्धात्मक सोच के कारण हर विकासशील एवं विकसित देशों में पहले खाद में नयी-नयी तकनीकियों का प्रयोग, दूसरा उत्पादन प्रक्रिया में हर क्षेत्र को होने लगा। इसके परिणाम स्वरूप हर देश एवं क्षेत्र में उपलब्ध सीमित संसाधनों का समुचित उपयोग होने के साथ-साथ आर्थिक विकास परिलक्षित होने लगा। भारत में भी आजादी के बाद एक ओर तो जनसंख्या की वृद्धि का प्रभाव परिलक्षित होने लगा, जिसका असर खाद्यान्न आपूर्ति पर नजर आने लगा। खाद्य समस्या के समाधान एवं देश के आर्थिक विकास के लिए कृषि क्रियाओं के साथ-साथ अन्य सभी उत्पादन क्रियाओं में आधुनिकीकरण प्रक्रिया को अपनाया जाने लगा।

1967 के बाद दश में हरित क्रांति की लहर के बाद कृषि विकास प्रभावित हुआ है।¹ जनसंख्या आंकड़ों के आधार पर जिले की जनसंख्या में लगातार वृद्धि जारी है। बढ़ती आबादी के भरण-पोषण हेतु एवं जनसंख्या के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने हेतु कृषि व्यवस्था को विकसित करना, क्षेत्र की प्रथम आवश्यकता है। पिछले कुछ वर्षों से कृषि के क्षेत्र में अनुसंधानों से नये परिवर्तन हुए हैं।

जिले के भौगोलिक परिस्थितियों की प्रतिकूलता एवं विभिन्नता होते हुए भी सरकार एवं कृषि वैज्ञानिकों के सहयोग से कृषि व्यवस्था आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर हो रही है। अध्ययन क्षेत्र में आधुनिक कृषि आदान, उन्नत बीज, रासायनिक खाद्य पौध संरक्षण, औषधियों का उपोग, कृषि में मशीनों एवं उपकरणों का बढ़ता हुआ उपयोग सिंचाई सुविधाओं का विकास, काश्त क्षेत्रफल

का विस्तार आदि में परिवर्तन दिखाई देने लगे। कृषि विकास के कारण कृषि व्यवस्था दिनों-दिन मजबूत होती जा रही है। कृषि उत्पादन में वृद्धि होने के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत होने से उनका जीवन स्तर ऊँचा होता जा रहा है।² कृषि व्यवस्था में सुधार एवं कृषि फसलों की कीमतों में बढ़ते स्तर को देखते हुए 26 जनवरी 2010 को (गणतन्त्र दिवस) की संध्या पर दिये गये अपने भाषण में महामहिम राष्ट्रपति, माननीय श्रीमती प्रतिभा पाटिल ने भी भारत में हरित क्रांति का दूसरा चरण शुरू करने का आह्वान किया था। कृषि में हुए इस प्रकार के क्रांतिकारी परिवर्तन को मूलतः जैविक, रासायनिक एवं यान्त्रिक उपयोग को हरित क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।³

राजस्थान में कृषि आधुनिकीकरण के साथ विशेषतः अलवर जिले में कृषि के आधुनिकीकरण का अध्ययन किया गया जिसने जिले के भावी कृषि विकास की योजनाओं को आधार एवं दिशा प्रदान करने में सहायता मिल सके तथा सहज ही क्षेत्रीय अध्ययन से यह अनुमान लगाया जा सके कि जिले की किस भाग में किन परिस्थितियों के कारण कृषि विकास कम हुआ है एवं किस भाग में और अधिक कृषि विकास की सम्भावना दिखाई दे रही है अर्थात् जिले के कृषि विकास के क्षेत्रीय असंतुलन का ज्ञान के आधार पर कृषि विकास हेतु भावी विकास योजनाएँ बनाई जा सके क्षेत्रीय भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप उपर्युक्त संसाधनों के आधार पर कृषि फसल प्रारूप का विवेचन किया जा सके एवं कृषि संसाधनों का क्षेत्रीय एवं सामाजिक विवेचन के लिए 1991 से 2011 तक के संमकों का आंकड़ा देखने पर यह प्रतीत होता है कि तथ्यों के आंकड़ों का संकलन के आधार पर तुलनात्मक सामयिक क्षेत्रीय विवरण का निष्कर्ष प्राप्त कर विकास योजनाएँ तैयार करने व सम्बन्धित समस्याओं के निवारण हेतु योजनाओं का निर्माण किया जा सके।⁴

कृषि आधुनिकीकरण हेतु उपलब्ध आधारभूत सुविधाएँ

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त जो आधुनिकीकरण की लहर दक्षिण-पूर्वी एशिया के नव-विकासशील स्वतन्त्र देशों में धीरे-धीरे फैलने लगी उसका प्रभाव कृषि उद्योग एवं अन्य सभी व्यवसायों में देखने को मिला रहा है।

उत्पादन क्षेत्र में बढ़ता जा रहा है। अतः आर्थिक एवं तकनीकी प्रक्रियाओं के फलस्वरूप प्रत्येक क्षेत्र में अप्रत्याशित विकास एवं वृद्धि दिखाई देने लगी है। इस आधुनिकीकरण प्रक्रिया से कृषि क्षेत्र में समयानुसार परिवर्तन आने लगे। यदि आधुनिकीकरण प्रक्रिया को कृषि के संदर्भ में देखा जाए तो पहले कृषि की जो परम्परागत पद्धतियाँ प्रचलित थी वह समयानुसार परिवर्तित होकर

आधुनिकीकरण से जुड़ती जा रही हैं। जिनमें प्रदत्त सहयोगी सहकारी एवं सहकारी सुविधाएँ ऋण सुविधाएँ, यातायात सुविधाएँ, सिंचाई सुविधाओं का विकास, कृषि विस्तार कार्यक्रम क्रियान्वित करना, अन्य आधारभूत सुविधाएँ जो अधिक आर्थिक सीमा से बाहर हैं, ये सभी सुविधाएँ विभिन्न योजनाओं के माध्यम से किसानों को मुहैया करवाई जा रही हैं।⁵

वर्तमान समय में लगभग पिछले 50 वर्षों से कृषि विकास में मशीनीकरण का योगदान महत्वपूर्ण है। कृषि में मशीनों का उपयोग भूमि संसाधनों के समुचित उपयोग, समय की बचत एवं उत्पादन लागत की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कृषि कार्य में किसान जब से जमीन में बीज बोता है तब से लेकर तैयार फसल को बाजार तक पहुँचाने में मशीनरी का उपयोग करने लगा है। इन कृषि यंत्रों की वजह से कृषकों की कार्य क्षमता में भी वृद्धि हुई है तथा मशीनों के प्रयोग के कारण कृषि में क्रान्ति आई है।

आधुनिक कृषि से तात्पर्य कृषि में खाद एवं उर्वरकों के उपयोग से उपजों की उत्पादकता एवं गुणात्मकता में वृद्धि से है। क्षेत्र में बोयी जाने वाली रबी व खरीफ की फसलों में वृद्धि में खादों का उपयोग किया जाता है। प्रमुख खादों में गोबर की खाद, मींगणी की खाद, बीट की खाद (मुर्गी कबूरत, चमगादड़) हरी खाद, जैविक खाद, औद्योगिक व शहरी क्षेत्र के अवशिष्ट आदि खादों का उपयोग शामिल है तथा इन खादों के प्रयोग से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। हरित क्रान्ति के क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग प्रभावी कारक रहा है। इसी उद्देश्य एवं आवश्यकता को देखते हुए कृषि एवं सहकारिता विभाग के द्वारा विभिन्न एजेंसियों के माध्यम से रासायनिक उर्वरकों की आपूर्ति की जाती है। किसान खेत के लिए इन उर्वरकों का उपयोग करते हैं। रासायनिक उर्वरक आज भी खेती के आवश्यक आदान बन गए हैं। आज हर किसान कुछ हर किसान कुछ न कुछ मात्रा में आवश्यक रूप से रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करता है। प्रमुख रासायनिक उर्वरकों में प्रमुखता से नेत्रजन (नाइट्रोजन), डी.ए.पी. पोटास, फास्फोरस, एन.पी. के एवं जिप्सम शामिल है।⁶

कृषि विकास में बीजों की उन्नत किस्मों में काफी महत्वपूर्ण योगदान है देश में उन्नत किस्म के बीजों के उपयोग की दिशा में 'राजफैड फाउण्डेशन' की सहायता से 1957 में मक्का की शंकर किस्म का विकास हुआ, 1960 में ज्वार, बाजरा की उन्नत किस्म का विकास हुआ एवं 1963 में राष्ट्रीय बीज निगम की स्थापना हुई इसी आधार पर 1 अक्टूबर 1968 में बीज अधिनियम लागू हुआ इसी प्रकार सम्पूर्ण राज्य में हरित क्रान्ति की लहर दौड़

गई तथा कृषि विज्ञान केन्द्र, नौगांवा अलवर का मुख्य उद्देश्य 'स्वयं करो और सीखो' के सिद्धान्त के आधार पर अलवर जिले के कृषि विभाग द्वारा बीज उत्पादन फर्म के रूप में की गई थी जिसका प्रमुख उद्देश्य इस क्षेत्र की प्रमुख फसलों के फाउण्डेशन और सर्टिफाइड बीज उत्पन्न करने का था। राई सरसों समूह की फसलों का प्रमुख कार्य इस केन्द्र को सौंपा गया तथा वर्तमान में राई सरसों की दृष्टि से क्षेत्र एवं राज्य में प्रथम है।

क्षेत्रीय कृषि आधुनिकीकरण स्तर मापन

कृषि विकास स्तर मापन करने हेतु मुख्य रूप से दो विधियाँ प्रचलित हैं गुणात्मक एवं मात्रात्मक। मात्रात्मक विधि के माध्यम से अध्ययन निष्कर्ष ज्यादा सही रूप से प्राप्त किये जा सकते हैं अलवर जिले की कृषि विकास स्तर मापने के लिए 'प्रमापीकरण' विधि का सहारा लिया गया है। जिसमें कृषि से सम्बंधित विभिन्न सूचकांकों को एक स्तर पर लाकर उनका प्रत्येक तहसील में औसत भार प्राप्त किया गया है। जिसमें एक क्षेत्र का दूसरे क्षेत्र से अन्तर एवं परिवर्तन उभर कर सामने आ सकें।⁷

प्रमापीकरण विधि

प्रथम चरण

1. सूचकांकों के समान्तर माध्य का मापन $\bar{x} = \frac{\sum x}{N}$
2. सूचकांकों के प्रमाप का विचलन का मान $\sigma = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N}}$
 यहाँ $\bar{x}$ = संमकों का समान्तर माध्य
 $\sum$ = योग
 N = संमकों की संख्या (इकाइयों की संख्या)
 $\sum d^2$ = समान्तर माध्य से विचलन वर्गों का योग

दूसरा चरण

$$\text{सामूहिक सूचकांक} = \frac{\sum A - \bar{x}}{\sigma}$$

अथवा

$$\frac{\text{प्रमापीकरण मान}}{\text{सूचकांकों की संख्या}}$$

यहाँ N = सूचकांकों की संख्या है।

निष्कर्ष

सामान्य रूप में आधुनिकीकरण प्रक्रिया तर्क एवं वैज्ञानिक तथ्यों

पर आधारित प्रमाणित प्रक्रिया है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इस विचारधारा को लेकर विश्व में आर्थिक विकास की प्रतिस्पर्धात्मक सोच के कारण हर विकासशील एवं विकसित देशों में नयी-नयी तकनीकियों का प्रयोग उत्पादन प्रक्रिया में हर क्षेत्र में परिलक्षित होने लगा। इसके परिणाम स्वरूप हर देश एवं क्षेत्र में उपलब्ध सीमित संसाधनों का समुचित उपयोग होने के साथ-साथ आर्थिक विकास परिलक्षित होने लगा।

भारत में भी आजादी के बाद एक ओर तो जनसंख्या की वृद्धि का प्रभाव परिलक्षित होने लगा, जिसका असर खाद्यान्न आपूर्ति पर नजर आने लगा। आधुनिकीकरण भी प्रक्रिया के प्रभाव से विश्व स्तर पर औद्योगिकीकरण, कृषि व्यवसाय, खनन तथा अन्य आर्थिक क्रियाओं में लक्ष्य अर्जित करने के प्रयास प्रारम्भ हुए हैं। विशेषकर विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ खाद्यान्नों, उत्पादन वृद्धि हेतु कृषि विकास के लिए नई तकनीकी, रासायनिक उर्वरक, नई किस्मों के उन्नत बीज एवं विभिन्न कीटनाशक औषधियाँ, कृषि क्रियाओं में प्रयुक्त की जाने लगी, जिसमें कृषि उत्पादन में निरन्तर वृद्धि परिलक्षित हुई। अतः कृषि आधुनिकीकरण का तात्पर्य कृषि कार्यों में विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकियों के समग्र उपयोग से हैं। विश्व स्तर पर छठे दशक में सरकार एवं कृषि वैज्ञानिकों का ध्यान विशेष रूप से कृषि विकास की ओर गया और कृषि उत्पादन बढ़ाने से लिए वैज्ञानिक विधियों के पुरजोर प्रयास प्रारम्भ किये। जिसकी परिणित हरित क्रान्ति के रूप में हुई।

संदर्भ सूची

1. सिंह, श्रीनाथ, मॉडिनाइजेशन ऑफ एग्रीकल्चर, हेरीटेज पब्लिशर्स, दिल्ली, 1976, पृ. 139
2. सिंह, जसवीर, कृषि भूगोल, डिटर्मिनेन्ट्स ऑफ एग्रीकल्चर प्रोडक्टिविटी, विशाल पब्लिकेशन्स, हरियाणा, 1996, पृ. 4
3. मिश्र, श्रीकान्त, भारत कृषि विकास, दी मैकमिललन कं. ऑफ इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ मिशीगन, 1976, पृ. 11
4. गुप्ता, एन. एल., राजस्थान में कृषि विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1979, पृ. 342
5. गुर्जर, आर.के., इरीगेशन फॉर एग्रीकल्चर मार्टिनाइजेशन, साइंटिफिक पब्लिशर्स, जोधपुर, 2003, पृ. 24
6. भल्ला, एल. आर., राजस्थान का भूगोल, कुलदीप पब्लिकेशन अजमेर, 1985, पृ. 84
7. शर्मा, पी. एम., राजस्थान में कृषि का आधुनिकीकरण, एक भौगोलिक संदर्भ पी.एच.डी. थीसिस, 1987, पृ. 166

महिलाओं की राजनीति में सहभागिता एवं सशक्तिकरण



डॉ. सुनीता गोयल

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
राजकीय इंजर कॉलेज, बीकानेर (राजस्थान)

शोध सारांश

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है भारतीय राजनीति में महिलाओं ने प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय महिलाओं ने राष्ट्रपति प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष राज्यपाल, मुख्यमंत्री केबिनेट मंत्री, संसद सदस्य आदि पदों को सुशोभित करते हुए अपनी कुशल नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया है। महिला व पुरुष का मतदान प्रतिशत भी लगभग समान रहता है। लेकिन फिर भी भारतीय लोकतंत्र का चिंताजनक पहलू है संसद एवं विधानसभा में महिलाओं की न्यून सहभागिता। 16 वीं लोकसभा में 543 सांसदों में सिर्फ 61 महिला सांसद ही थीं सिर्फ 12%, जबकि विश्व के देशों की संसद में महिला सहभागिता 22% प्रतिशत है। महिला सहभागिता में हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान, नेपाल, बंगलादेश भी हमसे आगे हैं। संसद में महिला सहभागिता बढ़े इसके लिए महिला आरक्षण बिल पास करवाना अति आवश्यक है। क्योंकि बिना कानूनी प्रयासों के महिलाओं की संसद एवं विधानसभा में सहभागिता पुरुषों के बराबर होने में 250 साल और लग जाएंगे। राज्यसभा में बिल पास हो गया लेकिन लोकसभा में बिल अटक जाता है। अतः राजनीतिक दल सच्चे दिल से महिलाओं को राजनीति में बराबरी पर लाना चाहते हैं तो इस बिल को पास करें। ताकि भारत की आधी आबादी अपने वास्तविक भूमिका निभा सके।

संकेताक्षर : संवैधानिक प्रावधान, अल्प सहभागिता, सशक्तिकरण

किसी भी राष्ट्र की स्त्रियों की उन्नति एवं अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति व अवनति निर्भर करती है।
-अरस्तू

“महिलाओं को समान वैधानिक और राजनीति अधिकार दिए जाने चाहिए तभी भारत की आजादी सार्थक हो जाएगी।”

- महात्मा गांधी

संसार की तरक्की नारी के विकास पर आधारित है। नारी को शक्ति रूपा जगत् जननी भी कहा गया है। भारत में वैदिक काल से ही नारी को सम्मानपूर्ण स्थान या सामाजिक धार्मिक राजनैतिक क्षेत्रों में नारी को समान अधिकार थे परन्तु वर्तमान समय स्थिति भिन्न है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। लेकिन आज भी भारत में कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जो लोकतंत्र के मार्ग में चुनौतियां खड़ी करते हैं उनमें से एक है सत्ता में, संसद में, विधानसभा में महिलाओं की नाममात्र की सहभागिता। भारत में महिला प्रधानमंत्री बन सकती है, राष्ट्रपति बन सकती है, राजनीतिक दल की अध्यक्ष बन सकती है, लोकसभा स्पीकर बन सकती है, राज्यों की मुख्यमंत्री बन सकती है लेकिन इन सबके बावजूद

संसद में महिलाओं का प्रतिशत 12% ही है। विश्व में यह 22 प्रतिशत है। महिलाएं भी स्पष्ट रूप से अधिक राजनीति में आने के लिए उत्सुक हैं। पहली से कहीं अधिक सफल भी हो रही हैं। आधी आबादी के लिए महिलाओं का अधिक से अधिक राजनीति में आना उनकी स्थिति को बेहतर बनाने की दिशा में एक कदम हो सकता है। भारत में महिलाओं के राजनीति सशक्तिकरण की जड़ें सल्तनतकाल में दिल्ली की गद्दी पर बैठने वाली रजिया सुल्तान, होल्कर साम्राज्य की शासक अहिल्या बाई, कलकत्ता की रानी रश्मि देवी, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कितुर की रानी चेन्नामा, गोंडवाना की रानी दुर्गावती, रायगढ़ की रानी अवन्ती बाई के साहस एवं वीरता, प्रशासनिक क्षमताओं में समाई हुई है। वही स्वतंत्रता आंदोलन में बेगम, हजरतमहल, सरोजनी नायडू, कु. लक्ष्मीपति, मीराबहन, नीलिसेन गुप्ता, भीकजीकामा, सुचेता कृपलानी, कस्तूरबा गांधी, आदि महिलाओं ने भारत में महिला सशक्तिकरण की मिशाल कायम की है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में विजयलक्ष्मी पंडित सन् 1953 में संयुक्त राष्ट्र महासभा की पहली महिला अध्यक्ष बनीं। भारत की राजनीतिक व्यवस्था में इंदिरा गांधी

ने देश की पहली महिला प्रधानमंत्री बनकर जो कीर्तिमान स्थापित किए, चिरस्मरणीय है। स्वतंत्रता से पहले देश में पहली बार 1917 में महिलाओं को राजनीति में भागीदारी की मांग उठी थी जिसके कारण वर्ष 1930 में पहली बार महिलाओं को मताधिकार मिला। 1950 में भारतीय स्वतंत्रता के तत्काल पश्चात् महिलाओं को भी समान वयस्क मताधिकार मिला। सितम्बर 1946 में भारत की संविधान सभा का निर्माण हुआ तथा 14 महिलाओं को इसके सदस्य के रूप में शामिल किया गया ये थी- अम्मू स्वामीनाथन, दस्यानी वेलागुदुन, दुर्गाबाई, हंसा मेहता, मालती चौधरी, सुचेता कृपलानी, विजयलक्ष्मी पण्डित, पूर्णिमा बनर्जी, कमला चौधरी, बेगम अजीज रसूल, सरोजनी नायडू बेगम जहांनार, लीलागेय बेन, बेगम इकरमुल्लाट।

वर्तमान समय भारतीय राजनीति में कुछ महिला नेताओं की अपने दल पर पूर्ण कमान रही है जिनके निर्णय लेने में भी महत्वपूर्ण भूमिका है जैसे जम्मू कश्मीर पी.डी.पी की मुखिया महबूब मुफ्ती एवं ए.आई.ए.डी.एम.के. की जयललिता, तृणमूल कांग्रेस की ममता बैनर्जी, बहुजन समाजवादी पार्टी की मायावती ऐसी नेता है जो अपनी पार्टी के निर्णयों में निर्णायक भूमिका निभाती है। कांग्रेस पार्टी में इन्दिरा गांधी, सोनिया गांधी की भूमिका भी विशेष महत्वपूर्ण रही है। इन महिलाओं ने इस तथ्य को भली भांति सिद्ध किया कि सामर्थ्य, क्षमता, चातुर्य, निर्णय, सशक्तिकरण में वे किसी से कम नहीं है। भारतीय राज्यों में 1947 से अब तक कई महिलाएँ राज्यपाल पद पर भी आसीन रही है। उत्तरप्रदेश की प्रथम राज्यपाल सरोजनी नायडू, पश्चिम बंगाल की पूजा नायडू, महाराष्ट्र में विजयलक्ष्मी पण्डित, आंध्रप्रदेश, गुजरात में शारदा मुखर्जी, मध्यप्रदेश में सरला ग्रेवाल, पुद्दुचरी में चन्द्रवती, राजस्थान में प्रतिभा पाटिल प्रभाराव, मारखेट अलवा, गुजरात में कमला बेनीवाल गोवा में मृदुला सिन्हा आदि ने राज्यपाल पद को सुशोभित किया।

कालान्तर में नन्दिनी सत्पथी (ओडिशा 1972-76) जे. जयललिता (तमिलनाडू 1991-96, 2001, 2006, 2011), शशीकला काकोदेकर (1973-79) (गोवा), सुचेता कृपलानी (उत्तर प्रदेश 1963-67) सैयदा अनवर तैमूर (असम 1980-81), उमा भारती (मध्यप्रदेश -2003-04), मायावती (उत्तर प्रदेश 1995, 1997, 2003, 2007), शीलादीक्षित (दिल्ली-1998-2013), वसुंधरा राजे (राजस्थान- 2003-08, 2013 से अब तक) राबड़ी देवी (बिहार-1979-99, 2000-05) तथा ममता बैनर्जी (पश्चिमी बंगाल-2011 से अब तक) ने मुख्यमंत्री पद को तो सुशोभित किया ही साथ ही अपनी प्रशासनिक क्षमताओं

से महिला सशक्तिकरण को नवीन आयाम प्रदान किए। प्रतिभा सिंह पाटिल ने राष्ट्रपति पद की गरिमा को बढ़ाया तो सोनिया गांधी ने कांग्रेस की अध्यक्ष तथा संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की अध्यक्ष के रूप में केन्द्र में केन्द्र सरकार के संचालन में प्रमुख भूमिका निभाई तथा दुनिया की टोप 10 सशक्त महिलाओं में तीसरा स्थान प्राप्त करने का गौरव हासिल किया। मीरा कुमार, सुमित्रा महाजन ने अपनी क्षमताओं से लोकसभा स्पीकर के पद की गरिमा को नवीन ऊंचाइयाँ प्रदान की है तो निर्मला सीतारमण एवं सुषमा स्वराज ने रक्षा एवं विदेश विभाग जैसे महत्वपूर्ण पदों पर कुशलता पूर्वक कार्य कर रही है।

सैद्धान्तिक रूप से महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण हेतु संविधान में निम्न प्रावधान भी किए गए हैं:-

1. प्रत्येक स्तर पर विधायीनिकाय, पंचायतीराज संस्थाएं, स्थानीय नगर निकाय, राज्य विधानमण्डल, राष्ट्रीय संसद, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में महिलाओं को बिना किसी भेदभाव के पुरुषों के समान मतदान करने का अधिकार है।
2. प्रत्येक स्तर के निकाय, राज्य विधानमण्डल, राष्ट्रीय संसद, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के चुनाव में स्वतंत्र रूप से चुनाव लड़ने का अधिकार है।
3. प्रत्येक स्तर के सत्ता के पायदानों पर विभिन्न पदों पर निर्वाचित होने, चयनित होने का अधिकार है।
4. बहुदलीय पद्धति में राजनीतिक दलों के स्वयं के संगठनों में महिलाओं को बराबरी के स्तर पर भागीदारी।
5. विभिन्न स्तर के पदों के निर्वाचन में राजनीतिक दलों द्वारा महिलाओं को उम्मीदवार बनाया जाना।
6. सर्वोच्च पदों राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल, लोकपाल अध्यक्ष, मुख्यमंत्री तक महिलाओं की पहुँच।

महिलाओं का राष्ट्र के विकास में समुचित योगदान हो सके, नारी शक्ति का देश के विकास में सदुपयोग किया जा सके। राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय हिस्सा लेने के लिए उन्हें प्रेरित एवं प्रोत्साहित करने के लिए उपरोक्त प्रावधान किए गए। 1951 से लेकर वर्तमान लोकसभा, विधानसभाओं के चुनावों में महिलाएँ मतदान में भी बढ़चढ़ कर हिस्सा ले रही है। 1951 से लेकर लगातार महिलाओं का मतदान प्रतिशत लगातार बढ़ा है। 18 फरवरी 2018 को सम्पन्न हुए त्रिपुरा विधानसभा चुनाव में महिलाओं का वोट प्रतिशत पुरुषों से भी ज्यादा था। इससे सिद्ध है महिलाएँ राजनीति में अपनी भूमिका समझती भी है और निभाती भी है। factly.in एक डाटा-पत्रकारिता पोर्टल के अनुसार वर्तमान में लोकसभा में

12 फीसदी महिला सांसद है। 1951 में यह संख्या 5 फीसदी थी इन वर्षों में महिलाओं की संख्या, पूर्ण संख्या एवं प्रतिशत दोनों में स्थिरतापूर्वक वृद्धि हुई है।

16 वीं लोकसभा में 61 महिला उम्मीदवार जीत कर पहुंची है यह अब तक का सर्वाधिक आंकड़ा है। 543 सदस्यीय लोकसभा में महिला सांसदों की संख्या 2009 में रही महिला सांसद से ज्यादा है। पी आर एस लेजिस्लेटिव रिसर्च के मुताबिक “देश के इतिहास में लोकसभा पहुंचने वाली महिलाओं की यह सर्वाधिक संख्या है। 2009 में 58 महिलाएं लोकसभा पहुंची थी। प्रमुख महिला सांसद जिसमें सोनिया गांधी (रायबरेली) सुषमा स्वराज (विदिशा) उमा भारती (झांसी) मेनका गांधी (पीलीभीत) पूनम महाजन (मुंबई उत्तर मध्य) किरन खेर (चंडी गढ़) सुप्रिया फुले (बारामती) डिम्पल यादव (कन्नौज) है। इनमें से कुछ पहले भी सांसद बन चुकी है। जबकि पूनम, किरन के लिए संसद जाने का यह पहला असवर है। 13 महिला सांसदों को संसद में लोकसभा में पहुंचाकर पश्चिम बंगाल प्रथम स्थान पर है। जबकि उत्तर प्रदेश से 11 महिलाएं संसद में पहुंची है। 1957 में लोकसभा में महिला सांसदों की संख्या सर्वाधिक कम थी केवल 22 थी। 16 वीं लोकसभा में भले ही महिला सांसदों की संख्या 61 है लेकिन 543 सांसदों में सिर्फ 61 महिलाएँ 12% फीसदी ही है। इसलिए संसद में महिलाओं की आनुपातिक स्थिति को लेकर भारत 191 देशों की सूची में 144 वें पायदान पर है। क्योंकि विश्व स्तर पर महिलाओं की राजनीति में सहभागिता 22 फीसदी है भारत में सिर्फ 12%। राज्य सभा में मामूली वृद्धि के साथ 12.5% ही है। दुनिया के अन्य देशों की तुलना में भारत की स्थिति में जबरदस्त नीचे है। कई अफ्रीकी और लैटिन अमेरिकी देश, सोवियत रूस के देश की रैंक भी हमसे (भारत) ऊपर है। अफ्रीकी देश रवांडा जहां 63.8 फीसदी महिलाएँ संसद के निचले सदन का प्रतिनिधित्व करती है। इस सूची में पहले पायदान पर है उत्तरी यूरोप स्थित स्कैंडिनेविया देशों में 40% प्रतिशत महिलाएं संसद में है। बोलिविया और दक्षिणी अफ्रीका जैसे देशों में भी 40% से ज्यादा महिलाएँ सांसद है। हमारे पड़ोस में नेपाल, पाकिस्तान, बंगलादेश में भी संसद में 20% से अधिक महिलाएँ है। हम अपने आप को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र बता कर चाहे जितना भी गर्व महसूस करें लेकिन वास्तविकता यही है आधी आबादी का प्रणालीबद्ध तरीके से राजनीतिक भागीदारी, प्रतिनिधित्व और निर्णय लेने से बाहर रहने के तथ्य के अलावा इन वर्षों में यह संख्या महिला प्रतिनिधित्व के संबंध में और क्या बताती है?

उत्तर प्रदेश, पंजाब, गोवा, मणिपुर, उत्तराखंड इन पांच राज्यों में विधानसभा चुनाव (2017) सम्पन्न हुए। उत्तरप्रदेश में 4823 उम्मीदवारों में महिलाओं की संख्या 445 थी सिर्फ 9 फीसदी। पंजाब जो आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ राज्य है वहां 1145 में उम्मीदवारों में 81 यानी सिर्फ 7 फीसदी, गोवा जैसे शिक्षित राज्य में 251 में से सिर्फ 18 यानी 7 फीसदी, राजनीतिक आन्दोलनों में महिला भागीदारी में प्रसिद्ध उत्तराखंड में भी 637 में सिर्फ 56 महिलाएँ, मणिपुर की स्थिति तो और भी खराब है जहां महिलाएँ सम्पत्ति की मालिक भी होती है वहां सिर्फ 265 में से 11 यानी 4 % फीसदी। राजनीति में कम प्रतिशत सिर्फ इन 5 राज्यों तक सीमित नहीं है। सभी राज्यों में महिला उम्मीदवारों का अनुपात कमोबेश ऐसा ही है। उम्मीदवारी का प्रतिशत कम होता है तो सांसद भी कम बनती है। जबकि महिला उम्मीदवार पुरुषों की तुलना में चुनावों में कुछ ज्यादा सफल होती है। इस समय हमारे देश में विधानसभा में महिला विधायक 9 फीसदी है। लोकसभा में 12 फीसदी महिला सांसद है पिछले 20 सालों में पंचायत और नगरपालिका में 50 प्रतिशत आरक्षण का असर जो विधानसभा, लोकसभा में दिखना चाहिए था उतना नहीं दिखा। नीचे से तो महिला नेतृत्व आगे बढ़ रहा है मतदान प्रतिशत में महिला पुरुष लगभग समान है लेकिन पार्टियाँ, राजनीतिक दल महिलाओं को टिकट देने के लिए तैयार नहीं है। लोकसभा की 543 में से 269 यानी करीब आधी सीटों पर आज तक एक भी महिला सांसद नहीं चुनी गई है। गुजरात का गांधीनगर, हरियाणा का गुरुग्राम, कर्नाटक का मैसूर, मध्यप्रदेश का उज्जैन, तेलंगाणा का हैदराबाद और बिहार के उत्तरपूर्व के राज्यों में तो महिलाओं का प्रतिनिधित्व न के बराबर है। अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम और त्रिपुरा जैसे राज्य में एक भी महिला सांसद नहीं चुनी गई है। ऐसी 130 सीटें हैं जहां महिला सांसद एक ही बार चुनी गई जैसे महाराष्ट्र में पुणे, राजस्थान में अजमेर, तमिलनाडु में कन्याकुमारी, उत्तरप्रदेश में शाहजहांपुर, केरल में तिरुवनंतपुरम में एक ही बार महिला प्रत्याशी को जीत हासिल हुई है। 1952 में पहली लोकसभा से लेकर 2014 की 16 वीं लोकसभा के आंकड़े देखे तो सिर्फ 15 सीटें ऐसी है जहां महिला सांसद पांच बार से ज्यादा बार चुनी गई। सिर्फ 15 सीटें। इनमें से ये सीटें या तो किसी राजनीतिक पार्टी का गढ़ रही है या वर्चस्व वाली महिला चुनी गई जैसे सुनित्रा महाजन या गीता मुखर्जी।

वर्तमान लोकसभा में पुरुषों की सफलता दर 6.4 फीसदी है जबकि महिलाओं की सफलता दर 9.3 फीसदी है तो प्रश्न ये उठता है कि संसद और विधानसभाओं में महिलाओं का भागीदारी इतनी कम क्यों है? जबकि आजादी की लड़ाई में भी महिलाओं ने अपना सक्रिय योगदान दिया संविधान सभा में भी दिया शीर्षस्थ पदों पर अपनी प्रशासनिक क्षमता का कुशल परिचय दिया। मतदान

प्रतिशत भी बराबर है। फिर संसद व विधानसभा में भागीदारी कम क्यों है इसके कतिपय कारण हैं यथा—पार्टियों का शीर्षस्थ नेतृत्व पुरुषों के हाथ में होना, महिलाओं को राजनीति में प्रवेश की राह मुश्किल होना, महिलाओं की निर्णायक भूमिका का अभाव होना, परिवार की भूमिका, चुनावों में होने वाला अंधाधुंध खर्च, राज दलों एवं नेताओं द्वारा महिला उम्मीदवारों को टिकट देने में संकोच या अनिच्छा, सामाजिक बंधन, महिला प्रत्याशी के प्रति वोटर का संकुचित दृष्टिकोण तथा महिलाओं के प्रति राजनीतिक दलों की उदासीनता।

संसद में महिलाओं की सहभागिता कैसे बढ़े—संसद एवं विधानसभा में महिलाओं की संख्या बढ़ाने के लिए पुरुषवादी सोच एवं संस्कृति में बदलाव तो एक स्वप्न मात्र है इसके लिए कानूनी मजबूती का सहारा लेना ही होगा। इसी को मूर्त रूप देने के लिए सन् 1996 में तत्कालीन एच.डी. देवगौड़ा सरकार ने कई पुरुष संसद के जबर्दस्त विरोध के बावजूद महिला आरक्षण बिल संसद में पेश किया गया। इसमें संसद तथा विधानसभाओं में 33 % महिलाओं के आरक्षण का प्रस्ताव किया गया था। लेकिन पिछले 21 सालों में इस बिल पर कोई प्रगति नहीं हुई बहुत ही प्रयासों के बाद 2010 में राज्य सभा में पास कर दिया गया लेकिन लोकसभा में 4 साल तक कोई चर्चा नहीं हुई और बिल रद्द हो गया। भारत में महिला सशक्तिकरण और राजनीति में उनके लिए आरक्षण की बात तो सभी राज. दल करते हैं लेकिन वास्तविकता से बहुत दूर है।

भारत की संसद में बदलाव लाने की वर्तमान समय में आवश्यकता है राज. दलों की यह दलील की महिलाओं को उम्मीदवार नहीं बनाते क्योंकि उनके जीतने की संभावनाएँ कम होती है। (जबकि आंकड़ों में महिलाओं की सफलता का प्रतिशत ज्यादा है) भारत में महिला आरक्षण विधेयक को कानून में बदला नहीं गया है दूसरे देशों में महिला आरक्षण कई रूपों में लागू है। इंटरनेशनल इनस्टिट्यूट फोर डेमोक्रेटिक एंड इलेक्टोरल असिसटेंस स्टोक होम 2014 के आंकड़े दिखाते हैं महिलाओं के आरक्षण देने वाले देशों की संख्या बढ़ी है। 10 देशों ने संवैधानिक चुनावी या राजनीतिक दलों में इस तरह का आरक्षण लागू किया। 90 के दशक के शुरूआत में फिलिपींस, पाकिस्तान और बंगलादेश ने महिला प्रतिनिधियों के लिए 10-30 प्रतिशत सीटों में आरक्षण का कानून बनाया।

महिलाओं के लिए सीट की संख्या या फिर चुनावों में उम्मीदवारों की सूची में कोटा निर्धारित करके आरक्षण दिया जा सकता है। कोटा निर्धारित करने का मतलब है भारत में चुनावों में महिलाओं की सफलता की दर वास्तव में पुरुष उम्मीदवारों से हमेशा बेहतर ही रहा है। 16वीं लोकसभा में 608 महिलाओं 61 महिला उम्मीदवार यानि 9.13 % वही पुरुषों की सफलता का प्रतिशत (7578 पुरुषों में 482 जीते) 6.36 % ही था। महिला आरक्षण विधेयक

लोकसभा से भी अतिशीघ्र पारित होना चाहिए इससे महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ेगा। स्वास्थ्य, शिक्षा, विज्ञान, अंतरिक्ष, रक्षा, व्यापार हर जगह महिलाओं की मौजूदगी है ऐसे में महिलाओं की जो क्षमता और मेधा है उसका इस्तेमाल देश, समाज एवं भारतीय लोकतंत्र के लिए होना ही चाहिए।

संसद एवं विधानसभाओं में महिलाओं की संख्या जिस गति से आगे बढ़ रही है अगर वैसे ही बढ़ेगी तो 250 साल और लग जाएंगे महिला एवं पुरुषों की संसद में बराबर होने में। अतः महिला आरक्षण बिल के माध्यम से महिलाओं की संसद में कम से कम 33 % संख्या तो हो ही जाएगी। जो भारत के लिए, भारतीय लोकतंत्र के लिए, भारत की आधी आबादी के विकास के लिए अति आवश्यक है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं भारतीय आजादी में महिलाओं का बराबर का योगदान रहा है। मतदान प्रतिशत भी महिलाओं और पुरुषों का अभी के वर्षों में लगभग बराबर रहा है। देश के सर्वोच्च पदों को संभालकर महिलाओं ने अपनी क्षमता का परिचय दिया है। प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष, मुख्यमंत्री, राज्यपाल सभी पदों पर महिलाओं ने अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई है। स्थानीय स्तर पर भी सुधार जारी है महिलाओं में राजनीतिक चेतना, नेतृत्व क्षमता का विकास हो रहा है। थोड़ी सी कमी जो रही है विधानसभा व संसद में महिलाओं की संख्या बढ़ाने को लेकर है। जो महिला आरक्षण बिल के पारित होने से और सशक्त हो सकती है। और एक बार मौका मिल जाएगा तो निरन्तर आगे बढ़ती ही रहेगी। तो जहां नारी सशक्त होगी वहां भारतीय लोकतंत्र होगा ही।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. देसाई, नीरा, वुमन इन माडर्न इण्डिया, बोरा एंड कम्पनी पब्लिशर्स, मुम्बई, 1957
2. अंसारी, एम.ए., महिला और मानवाधिकार, जयपुर, 2002
3. आपटे, प्रभा, भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिकेशन्स जयपुर, 1996
4. यादव, जितेन्द्र, नारी सशक्तिकरण, ड्राइडेंट पब्लिशर्स, 2009
5. सायला, शांति कुमार, महिलाओं के कानूनी धार्मिक, एवं सामाजिक अधिकार, रेण्डिफ बुक्स, 2018
6. अग्रवाल, जे.सी., भारत में नारी शक्ति, प्रभात प्रकाशन, 2009
7. कोठारी, रजनी, भारत में राजनीति, ओरिएण्ट लेंगमैन, नई दिल्ली
8. राजस्थान पत्रिका, 8 मार्च 2016, 2017
9. दैनिक भास्कर, 8 मार्च 2016, 2017
10. प्रतियोगिता दर्पण, मार्च 2017

भारतीय राजनीति का बदलता स्वरूप

मनुसिंह

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)



शोध सारांश

भारतीय समाज को समझने की कुंजी उसकी राजनीति में निहित है। भारत ने 15 अगस्त, 1947 के ऐतिहासिक क्षणों में आजादी की खुली हवा में अपने पंख खोले नये नीड़ एवं स्वर्णिम स्वप्नों के लिए उड़ान भरी। किन्तु आजादी के बाद भारतीय राजनीति जिस गति से अनैतिकता, दुश्चरण और चारित्रिक राजनीतिक विघटन का शिकार हुई वह किसी से छुपा नहीं है। आज की राजनीति में भ्रष्टाचारी, दुराचारी होना एक सफल राजनीतिज्ञ के गुण हैं। किसी लड़खड़ाती सरकार को बचाने के लिए उसके पक्ष में वोट डालने की एवज में लाखों करोड़ों रुपये वसूलना राजनीतिक व्यापार है। चुनावों में हर पार्टी उसी व्यक्ति को मैदान में उतारती है जो जीतने वाला हो। नैतिकता, सदाचार कोई मापदण्ड नहीं होता। भारतीय राजनीति के बदलते स्वरूप के प्रभाव से आज देश का सामाजिक-आर्थिक विकास और प्रगति रूक गई है।

संकेताक्षर : लोकतंत्र, दल-बदल, जाति, नैतिकता, राजनीतिक दल

भारतीय राजनीति जिस हास्यापद, घृणित व अशोभनीय मोड़ पर पहुंच गई है, वह देश के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है। आज शान्ति, शोषण, स्वार्थ और सत्ता पर आधारित राजनीति का स्वरूप अत्यन्त धिनौना हो गया है।¹ राजनीतिक सोच, कार्यकलाप और व्यवहार में जो परिवर्तन कुछ दशकों में हुआ है उससे लोगों का राजनीति से विश्वास ढिगा है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था के बारे में विचार प्रकट करते हुए कहा, वर्तमान स्थिति में भारतीय राजनीति कम से कम उनकी हिन्दू भूमिका का आध्यात्मिकरण होने के बजाय इस प्रकार का व्यापारीकरण हो गया है कि वह भ्रष्टाचार की पर्याय बन गई है। बहुत से सुसंस्कृत लोग इस मलकुण्ड से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने से इंकार कर रहे हैं। राजनीति एक प्रकार की गटर व्यवस्था बन गई है जो अत्यन्त अरूचिकर एवं गन्दी है। राजनीतिज्ञ बनना किसी गंदे नाले में काम करने के समान हो गया है।² 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्रता के पश्चात् हमने विकास और प्रगति की दिशा में कदम बढ़ाने शुरू किये। विकास हमारा लक्ष्य था और उसे प्राप्त करने का राजनीति एक साधन लेकिन धीरे-धीरे राजनीति में बढ़ते भ्रष्टाचार, जातिवाद और अपराधी तत्वों के प्रवेश ने राजनीतिक सोच, व्यवहार और कार्यकलाप में जो परिवर्तन किया उससे लोगो

का राजनीति से विश्वास ढिगा है। राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यों के बीच चोली-दामन जैसा संबंध था। राजनीतिक दलों का आधार और आकार सीमित होने के बावजूद उनकी सैद्धांतिक अपील व्यापक थी। कांग्रेस, सोशलिस्ट और जनसंघ पार्टियों के कार्यकर्त्ताओं तथा नेतृत्व के सार्वजनिक जीवन, समझ, सोच और मर्यादा में विशेष फर्क नहीं था।³

भारतीय राजनीति और वर्तमान स्थिति

आजादी के बाद से हमारे देश में राजनीतिक पार्टियों, राजनेताओं व नौकरशाहों के चरित्र और नैतिक मूल्यों में लगातार गिरावट ने दर्शाया है कि धृतराष्ट्र का कुर्सी प्रेम किन-किन विचित्र खेलों को जन्म देता है। चुनाव लड़ना अब हिंसा, धन और बाहुबल का खेल होकर रह गया है। शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र, जहां कभी सेवा के उच्चतम आदर्शों का पालन होता था, आज व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के केन्द्र बन गए हैं। कुछ लोग गरीबी, भुखमरी, तंगहाली के चलते तो कुछ पैसे कमाने की खातिर खून बेचने, खरीदने का धंधा कर रहे हैं। अब पानी का व्यवसाय फल-फूल रहा है। ऐसी स्थिति में वह दिन दूर नहीं जब सांस लेने के लिए हवा खरीदनी पड़ेगी।⁴

पिछले कई वर्षों में भारतीय राजनीति में कई प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। जिनमें मुख्य निम्न है-

भारतीय राजनीति तथा जाति

जाति प्रथा किसी न किसी रूप में संसार के हर कोने में पायी जाती है। एक गम्भीर सामाजिक कुरीति के रूप में यह हिन्दू समाज की ही विशेषता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त जातिवाद ने फिर जोर पकड़ा और वयस्क मताधिकार व्यवस्था के देश में लागू कर दिए जाने के परिणामस्वरूप यह एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उदित हुआ है। आरम्भ में तो सामाजिक अथवा आर्थिक दृष्टि से उच्च अथवा श्रेष्ठ जातियां ही राजनीति से प्रभावित रही और राजनीतिक लाभ उन्हीं तक सीमित रहे।⁵ समय के साथ-साथ मध्यम और निम्न समझी जाने वाली जातियां आगे आने लगीं और अपने राजनीतिक प्रभाव को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहने लगीं।

जाति के राजनीतिकरण की विशेषताएं

1. निर्वाचनों के दिनों में जातिगत समुदाय प्रस्ताव पारित करके राजनीतिक नेताओं और दलों को अपने जातिगत समर्थन की घोषणा करके अपने हितों को मुखरित करते हैं।
2. जाति की भूमिका राष्ट्रीय स्तर की राजनीति पर उतनी नहीं है जितनी स्थानीय और राज्य राजनीति पर है।
3. जाति और राजनीति के सम्बन्ध स्थैतिक न होकर गतिशील हैं।⁶
4. यदि किसी राज्य विशेष में किसी जाति की प्रधानता होती है तो राज्य राजनीति में जाति एक प्रभावक तत्व बन जाती है।

अतः राजनीति में जातिवाद का अर्थ जाति का राजनीतिकरण है। जाति को अपने दायरे में खींचकर राजनीति उसे अपने काम में लाने का प्रयत्न करती है। दूसरी ओर राजनीति द्वारा जाति या बिरादरी को देश की व्यवस्था में भाग लेने का मौका मिलता है।

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दल

भारत एक बहुदलीय व्यवस्था वाला देश है। यहां अनेक राष्ट्रीय स्तर के एवं क्षेत्रीय स्तर के दलों का अस्तित्व पाया जाता है। राजनीतिक दलों का इतिहास लोकतंत्र से भी ज्यादा पुराना है। जहां तक लोकतंत्र का प्रश्न है, उसमें सत्ता के लिए संघर्ष लुक-छिपकर नहीं बल्कि खुलकर होता है। लोगों को राजनीतिक दलों का निर्माण करने की छूट होती है। आज भारत में दलीय व्यवस्था का स्वरूप दिन-प्रतिदिन विकृत होता जा रहा है। विभिन्न दलों में स्वार्थ की आकांक्ष प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, जो भारतीय लोकतंत्र के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है।

भारतीय राजनीति में साझा सरकारों का युग

गठबंधन की राजनीति जिसका श्री गणेश केन्द्रीय स्तर पर 1977 से हुआ। वस्तुतः गठबंधन की राजनीति संख्या बल या जोड़-तोड़ का दूसरा नाम हैं, इसमें शामिल प्रत्येक घटक सरकार से अपनी कीमत मांगता है यह कीमत पैसे, पद और प्रतिष्ठा के अलावा अपने गढ़ (क्षेत्र) को अभेद्य रखना होता है। संविद राजनीति ने छोटे-से-छोटे तथा निर्दलियों को भी सत्ता में सहभागिता करने का अवसर प्रदान किया।⁷ 1977 से लेकर अब तक दस बार केन्द्र में संविद-सरकारें बन चुकी हैं। मिलीजुली सरकारों में प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का कोई निश्चित कार्यकाल नहीं होता।

भारत में दल-बदल की राजनीति

भारतीय राजनीति में सर्वाधिक प्रचलित राजनीतिक खेल का नाम है दल-बदल इसे हम चाहें तो पक्ष परिवर्तन, एक पार्टी छोड़कर दूसरी पार्टी में शामिल हो जाना, सदन में सरकारी दल छोड़कर विरोधी दल में मिल जाना, खेमा बदल लेना कुछ भी कह सकते हैं।⁸ कच्चे अनुमानों के अनुसार अब तक 500 से ज्यादा दल-बदलुओं को गद्दी मिल गयी है। और कोई 25 मुख्यमंत्री दल-बदलू ही कहे जा सकते हैं। दल-बदलू प्रधानमंत्री भी बन चुके हैं।⁹

दल-बदल के कारण

1. कांग्रेस की दल-बदल नीतियों में परिवर्तन
2. पद-लोलुपता
3. धन का प्रलोभन
4. प्रभावशाली दलीय नेतृत्व का अभाव
5. जनता का उदासीनता

इस सम्बन्ध में अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा की दल बदलने वाले विधायकों को विधायिका की सदस्यता त्याग देनी चाहिए और नया चुनाव लड़ना चाहिए।

राजनीति का अपराधीकरण

‘राजनीति का अपराधीकरण’ और ‘अपराध का राजनीतिकरण’ एक ही स्थिति के दो पक्ष हैं तथा ये दोनों स्थितियां आज के शासक वर्ग की राजनीतिक संस्कृति का एक लक्षण बन गया है। राजनीति के अपराधीकरण के अन्तर्गत राजनीति अपराध से ग्रसित हो जाती है तथा अपराधी राजनीतिज्ञों को बाना धारण कर ले ते हैं। कल तक जो अपराधी थे, वे अब राजनीतिज्ञ बन जाते हैं।

भारत में हिंसा एवं आतंकवाद की राजनीति

सम्पूर्ण देश में हिंसा तथा हिंसक गतिविधियां किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। यदि कहीं शान्ति है तो वह भी केवल अपवाद स्वरूप

ही है। भारत में हिंसा एवं आतंकवाद की राजनीति नवीन नहीं है। इसका विस्तार 1980 के दशक में हुआ। 1990 के दशक के प्रथम तीन वर्षों में यह पंजाब, कश्मीर तथा असम आदि प्रदेशों में फैला। पंजाब की स्थिति यह रही है कि जब कभी वहां विपक्षियों की सरकार बनी, केन्द्र के शासक दल ने या तो छलयोजित राजनीति को अपनाकर उसे गिरा दिया या किसी-न-किसी बहाने से उसे बर्खास्त कर दिया। 1968 में अकाली दल और जनसंघ की मिली-जुली सरकार को गिराने में कांग्रेस प्रमुख भूमिका थी।¹⁰ जानकार सूत्र बताते हैं कि जम्मू-कश्मीर राज्य में तो चुनावों की वैधता पर सन्देह उत्पन्न होने के भी कारण हैं। जब मतपेटी के खेल में धांधली की जाती है या लोकतान्त्रिक प्रक्रिया से सत्तारूढ़ राज्य सरकार को बिना उचित कारणों के बर्खास्त कर दिया जाता है। अतः आतंकवाद के विरुद्ध कार्यवाही के लिए कारगर आतंकवाद विरोधी संगठन जरूरी है।

भारतीय राजनीति में वंशवाद का बढ़ता वर्चस्व

आज देश में कोई 50-60 परिवार ऐसे हैं जिनका राजनीति में दबदबा दिल्ली से लेकर गांव तक में है और उन परिवारों के सदस्य अपने उपनाम को भुलाकर उत्तराधिकारी के तौर पर आगे बढ़ते हैं। सभी पार्टियां राजनीतिक लाभ के लिए इसे बढ़ावा दे रही हैं। देश में इक्कादुक्का पार्टी ही सफल है जो वंशवाद की शिकार नहीं है।¹¹ आज कश्मीर से कन्या कुमारी तक और पंजाब से आसाम और उड़ीसा तक हर राज्य में हर 'आकार और रंग' के राजनीतिक वंशज मिल जाएंगे। राजीव गांधी, सोनिया गांधी, मेनका गांधी, राहुल और वरुण गांधी के बाद बिहार में लालू-राबड़ी और उनके बहुचर्चित भाइयों साधु-सुभाष यादव का दबदबा है तो दलित नेता रामविलास पासवान से लेकर बुजुर्ग छोटे साहब सत्येन्द्र नारायण सिन्हा, भागवत झा आजाद आदि प्रमुख सुर्खियों में रहे हैं। नेहरू-गांधी परिवार की चौथी पीढ़ी राजनीति में उतर चुकी है तो कश्मीर में शेख अब्दुल्ला परिवार की तीसरी पीढ़ी राजनीति में है। महाराष्ट्र में सरकार किसी की हो राज तो ठाकरे परिवार का चलता है। 16वीं लोकसभा (2014) में भी राजनीतिक घरानों से जुड़े अनेक उम्मीदवार चुनाव जीतकर लोकसभा में पहुंचे हैं। जिनमें प्रमुख हैं-पूनम महाजन, जयंत सिन्हा, अभिषेक सिंह, गौरव गोगई, चिराग पासवान आदि प्रमुख हैं।¹² भारत में 2014 में वंशवाद कई दूसरे लोकतान्त्रिक देशों के मुकाबले कहीं ज्यादा है, जो इसे जापान, आइसलैंड और आयरलैंड जैसे देशों के साथ खड़ा करता है, जहाँ 2009 में निर्वाचित सांसदों का एक-तिहाई से लेकर एक-चौथाई हिस्सा वंशवाद की देन था। ये भारत को यूके,

बेल्जियम, इजरायल, अमेरिका, नार्वे और कनाडा से अलग कर देता है, जहाँ निर्वाचित सांसदों की तादाद 1 से 11 के बीच है।¹³

खुद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी इस पक्ष के बड़े उदाहरण हैं। अगर भाजपा वंशवादी पार्टी होती तो शायद नरेंद्र मोदी जैसा गरीब का बेटा भाजपा में रहते हुए देश का प्रधानमंत्री न बन पाता और अमित शाह जैसा बूथ स्तर का कार्यकर्ता भाजपा का राष्ट्रीय अध्यक्ष नहीं बन पाता।

भारतीय राजनीति में बदलता राजनैतिक परिवेश और नैतिकता

15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्रता के पश्चात् हमने विकास और प्रगति की दिशा में कदम बढ़ाने शुरू किये। विकास हमारा लक्ष्य था और उसे प्राप्त करने का राजनीति एक साधन। लेकिन धीरे-धीरे राजनीति में बढ़ते, वंशवाद, भ्रष्टाचार, जातिवाद और अपराधी तत्वों के प्रवेश ने नैतिकता को राजनीति से अलग कर दिया और आजकल नैतिकता और राजनीति को एक दूसरे के विपरीत समझा जाने लगा है। क्योंकि जहाँ नैतिकता का सम्बन्ध आत्मा से है, साधनों की पवित्रता से है वहीं राजनीति जोड़-तोड़ द्वारा काम निकालने, कुर्सी पाने और उसे बरकरार रखने का तरीका बनती जा रही है। व्यास विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. लक्ष्मण सिंह राठौड़, राजनीति की इस प्रवृत्ति को 'जुगाड़ संस्कृति' कहते हैं।¹⁴ भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की विभिन्न संस्थाओं का हास हो रहा है। भारतीय राजनीति की यह भी एक त्रासदी है। व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका राजनीतिक दलों तथा नौकरशाही सभी संस्थाएं निरन्तर हास की ओर जा रही हैं—

- राष्ट्रीय स्तर से लेकर प्रजातंत्र की जड़ों पंचायतों में भी राजनीतिक नैतिकता लुप्त प्रायः होती चली जा रही है।
- पूरे भारतीय जन-जीवन में विशेष रूप से राजनीतिज्ञों तथा नौकरशाही में भ्रष्टाचार की जड़ें बहुत गहरी होती जा रही हैं।
- सामाजिक-राजनीतिक नैतिकता नैतिकता के हास के परिणामस्वरूप सम्भ्रान्त वर्ग विशेष रूप से राजनीतिज्ञों से जनता का विश्वास उठता चला जा रहा है तथा सत्ता के प्रति वैधता का भाव समाप्त होता जा रहा है।¹⁵

राजीव गांधी की हत्या के पश्चात् भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। जिसके कारण भारतीय राजनीति का परिदृश्य नेहरू काल की अपेक्षा बदला हुआ लगता है।

मनोवैज्ञानिक और हावर्ड के विद्वान बी.एफ. स्कीनर का कथन है कि मनुष्य का जीवन स्तर सुधारने के लिए मूल्यधारित पर्यावरण का पूर्णतः पुनः निर्माण करना आवश्यक है। राजनीति एक ऐसी

व्यावहारिक गतिविधि है जिसमें हम सामूहिक रूप से रहना सीखते हैं। हमें अपनी समस्याओं को कैसे सुलझाना चाहिए, अपनी पसंदगी की अभिव्यक्ति कैसे करनी चाहिए, अपने मतभेदों को दूर करने के क्या उपाय करना चाहिए। ऐसी अनेक बातें अनिवार्य रूप से नैतिक मुद्दों को जन्म देती हैं।¹⁶

निष्कर्ष

आज की राजनीति में भ्रष्टाचारी, दुराचारी होना एक सफल राजनीतिज्ञ के गुण हैं। किसी लड़खड़ाती सरकार को बचाने के लिए उसके पक्ष में वोट डालने की एवज में लाखों करोड़ों रूपये वसूलना राजनीतिक व्यापार है। चुनावों में हर पार्टी उसी व्यक्ति को मैदान में उतारती है जो जीतने वाला हो। नैतिकता, सदाचार कोई मापदण्ड नहीं होता। उत्तर प्रदेश सरकार ने अपने कई चहेतों के खिलाफ हत्या, धोखाधड़ी और गिरोहबंदी के मुकद्दमें वापस लेकर उन्हें पाक-साफ बेदाग घोषित कर दिया है ताकि वे चुनाव में भाग ले सकें।¹⁷

सबसे बड़ी बात यह है कि राजनीति को इस पीढ़ी ने अर्थ जगत, पश्चिमी चकाचौंध और भौतिकवादी अवसरों का गुलाम नहीं होने दिया। स्वतन्त्रता आन्दोलन में देश के पूँजीपतियों एवं जमींदारों ने धन एवं मन से कांग्रेस की मदद की थी। परन्तु आजादी के बाद पूँजीवाद, शासन और व्यवस्था तथा राजनीति एवं नेतृत्व पर हावी नहीं हो पाया। व्यवस्था ने पूँजीपतियों को व्यक्तिगत स्तर पर पुरस्कृत तो किया किन्तु राजनीति को उनकी कृतज्ञता का या संसाधनों का गुलाम नहीं बनने दिया। राजनीति की इसी स्वायत्ता, सर्वोच्चता एवं स्वाभिमान से उनकी नैतिक शक्ति का निर्माण हुआ। लोगों की आस्था, आशा, अपेक्षा संयम का प्रतीक राजनीतिक प्रक्रिया रही।¹⁸

संदर्भ सूची

1. इंद्रा, उम्मेद सिंह, भारतीय राजनीति में आचार संहिता, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2008, पृ. 61
2. इण्डिया टुडे, 24 नवम्बर 1999, पृ. 19
3. सिंह, संगत, भारतीय राजनीति में नैतिक संकट, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2010, पृ. 127
4. Kranti Kaari, बुधवार, 31 जुलाई, 2013
5. कोठारी, रजनी, भारत में राजनीति: कल और आज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 251
6. फड़िया, बी.एल., भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2016, पृ. 480
7. कश्यप, सुभाष, विश्व प्रकाश गुप्त, राजनीतिक कोष, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1971
8. शुक्ल भानुप्रताप, नीति व सिद्धान्त विहिन राजनीति, दैनिक जागरण, बरेली 23 अगस्त, 1999
9. कश्यप, डॉ. सुभाष, दल-बदल और राज्यों की राजनीति, पृ. 121
10. Myron Weiner: Politics of Scarcity, 1968, p. 215
11. सरिता, जनवरी (प्रथम), 2018, पृ. 16
12. फड़िया, बी.एल., भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2016, पृ. 122
13. ईपीडब्ल्यू, 12 जुलाई, 2014
14. सिंह, संगत, भारतीय राजनीति में नैतिक संकट, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2010, पृ. 104
15. कोठारी, प्रो. रजनी, पालिटिक्स: इन इण्डिया, आरियन्ट लागमेन, दिल्ली, 1970, पृ. 200
16. पारीख, बी. 'कन्ट्रेन्डोरी पालिटिकल थिंक्स', मार्टिन राबर्टसन आक्सफोर्ड, 1982, पृ. 9
17. पंजाब केसरी, नई दिल्ली, 17 फरवरी, 07, पृ. 5
18. सिंह, संगत, भारतीय राजनीति में नैतिक संकट, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2010, पृ. 128

सामाजिक न्याय की समस्या: सर्वोदयी विकल्प

मुकेश कुमारी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)



शोध सारांश

वर्तमान विश्व के समक्ष सामाजिक न्याय की समस्या की विकटतम स्थिति देखने को मिलती है। विश्व के इतिहास में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक विचारधारयें यथा पूंजीवादी, समाजवादी और साम्यवादी चिन्तन इस समस्या के समाधान में सफल नहीं हो पा रही है। सामाजिक न्याय की समस्या के यदि प्रमुख कारणों का यदि विवेचन किया जाए तो इसमें जाति, पंथ, क्षेत्र एवं लिंग के आधार पर भेदभाव हमें स्पष्टतः देखने को मिलता है। उपरोक्त समस्या के समाधान हेतु सर्वोदयी चिन्तन हमें एक सशक्त विकल्प देता हुआ प्रतीत होता है। सर्वोदय चिन्तन के प्रमुख प्रणेता गाँधी एवं उनके बौद्धिक उत्तराधिकारी विनोबा भावे के चिन्तन में हमें शोषण, भेद-भाव, असमानता और हिंसा का कोई स्थान देखने को नहीं मिलता। गाँधी के सर्वोदय चिन्तन की यह विडम्बना है कि इसे व्यवहार में लागू किये बिना अव्यवहारिकता के आधार पर नकार दिया गया। प्रस्तुत शोध पत्र इस सन्दर्भ में एक विलम्ब प्रयास है।

संकेताक्षर : न्याय, सर्वोदय, सामाजिक न्याय, विधि का शासन, स्वतन्त्रता, समानता

मनुष्य का समाज से अटूट संबंध है। समाज में अन्तर्निहित विषमता के अनुरूप ही मनुष्य को उसमें अपना जीवन-यापन करना पड़ता है। समाज में भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति के लोग रहते हैं। उनके मध्य एक ओर सामन्जस्य होता है तो दूसरी ओर वाद-विवाद भी देखने को मिलता है। यह सर्वविदित है कि मानव समाज में आपसी समन्वय के बिना विकास व उन्नति संभव नहीं है। मनुष्य के आपसी सहयोग के बिना एक संतुलित समाज व्यवस्था नहीं बन सकती। मनुष्य और समाज को व्यवस्थित करने में राज्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है। व्यक्ति, समाज व राज्य का आपस में समन्वय विकास का मार्ग बनाता है। इसके प्रतिफल स्वरूप समुचित मानव जीवन सुगम तथा सुव्यवस्थित बन जाता है। समाज में उचित समन्वय हेतु समुचित माध्यम से न्याय का निष्पादन आवश्यक है। अतः किसी समाज एवं राज्य का मूल लक्ष्य अपनी सीमाओं के अन्तर्गत न्याय की स्थापना है।

सामाजिक न्याय एक युग्म शब्द है जिसे सामाजिक और न्याय इन दो शब्दों को जोड़कर बनाया गया है। 'सामाजिक' का अर्थ समाज की विभिन्न स्थितियों से है तथा समाज का अर्थ मनुष्य के विभिन्न पारस्परिक संबंधों की व्यवस्था के रूप में लिया जाता है। समाज की इस व्यवस्था के अन्तर्गत समाविष्ट पारस्परिक सम्बन्ध

अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे-पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक। इस तरह से समाज एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत विभिन्न कोटि के सामाजिक संबंधों द्वारा निर्मित अन्तर्सम्बन्धित उपव्यवस्थायें संघटित हैं। इस दृष्टि से 'सामाजिक' शब्द का सामान्य प्रयोग विद्वानों ने समाज व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाली परिस्थितियों के अर्थ में किया है। राजनीतिक, आर्थिक या किसी अन्य प्रकार के मानवीय संबंध को 'सामाजिक' परिधि के बाहर रखना अतर्कसंगत है। अतः समाज व्यवस्था अथवा उसकी विविध उपव्यवस्थाओं संबंधी सभी स्थितियाँ सामान्यतया 'सामाजिक' हैं और जो कानून द्वारा नियन्त्रित होता है उसे न्याय कहते हैं। पूर्ण या आंशिक रूप से समाज व्यवस्था या उपव्यवस्थाओं को व्यवस्थित रखने के लिए जो न्याय प्रयुक्त किया जाता है वही सामाजिक न्याय है।¹

न्याय को समाज व राज्य की पूर्व शर्त के रूप में स्वीकार किया गया है। व्यक्ति, समाज तथा राज्य के मध्य संबंध को न्याय के आदर्श द्वारा ही संयत किया जा सकता है।

सामाजिक व्यवस्था का अस्तित्व तभी संभव है, जब कानून तथा न्याय के नियम वस्तुगत तथा सार्वभौम प्रमाणिकता में निहित हो और आत्मगत वैयक्तिक इच्छा से भी स्वतंत्र हो, इस प्रकार न्याय

ऐसा सद्गुण है जिसके द्वारा विधिक दायित्वों का निर्वाह किया जाता है।²

‘न्याय’ एक ऐसी विस्तृत भाव तथा विचार बोधक शब्दावली से संकलित नहीं किया जा सकता। प्राचीन राजनैतिक चिन्तन में भी हमें न्याय विषयक विचार के विश्लेषण देखने को मिलते हैं। ‘नीतिशास्त्र’ तथा कानूनी विचारों के आरंभिक काल में ‘न्याय’ शब्द का प्रयोग सामान्यतः ‘पवित्रता’ के समानार्थक रूप में प्रयुक्त होता था। न्याय में सर्वांगीण सद्गुण थे तथा यह स्वीकृत नैतिक आचरण की व्यवस्था के पूर्णतः अनुरूप था।³ दूसरे शब्दों में ‘न्याय’ विषयक विचार का प्रयोग नीतिशास्त्र, मानवाधिकार, कानून तथा प्राकृतिक कानून, प्रक्रियान्वित कानून का पाश्चात्य दर्शन के संदर्भ में प्रयुक्त होता है।⁴

इस प्रकार न्याय का सिद्धान्त सारगर्भित है और अधिकांशतः उन सभी सिद्धान्तों को भी अपने में समाहित है जो एक नैतिक व्यवस्था की आधारशिला बन चुके हैं। न्याय सिद्धान्त सदैव समानता व क्षतिपूर्ति के समानुपात विचारों को संयम, सही एवं सदाचरण के मूल्य में भी समानता अन्तर्निहित है। यदि सभी मनुष्य समान हैं तो सभी मनुष्य एक ही सार तत्व के हैं और वह समान सार तत्व उन्हें समान मौलिक अधिकारों और समान स्वतंत्रता के लिए अधिकारी बनाता है।⁵ इस प्रकार समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व और प्राकृतिक अधिकारों के आदर्श न्याय के अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किये जाते हैं।

रोमन दार्शनिक सिसरो की दृष्टि में ‘न्याय’ एक आन्तरिक शुभ है। उसने न्याय को मंगलकारी बनाने के लिए नैतिक दायित्व एवं सद्गुणों पर बल दिया। मनुष्य को अपने स्वभाव का अनुसरण करना चाहिए जो केवल मनुष्य में व्यवहारिक दर्शन के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। न्याय को सिसरो ने सर्वांगपूर्णता की प्राप्ति के लिए आवश्यक शर्त के रूप में स्वीकार किया है।⁶

ब्रेडले की मान्यता है कि किसी मनुष्य का जीवन मुख्यतः अपने नैतिक कर्तव्यों सहित उन सम्पूर्णताओं की व्यवस्था में अपने स्थान से सम्पन्न होता है जिसे राज्य कहा गया है और वह, अंशतः अपने कानूनों तथा संस्थाओं द्वारा और इससे भी अधिक अपनी चेतना द्वारा मनुष्य को ऐसा जीवन प्रदान करता है जिसे वह जीता है और जीना भी चाहिए।⁷

इस प्रकार न्याय संघर्ष एवं प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों के परस्पर बलबती होने पर अंकुश रखने का एक नियामक है। न्यायसंगत समाज का कोई एकल पृथक अस्तित्व समूह या समाज और मनुष्य का जीवन सुचारू रूप से चले, न्याय उसे सम्भव बनाता है। इस प्रकार

न्याय के व्यवहारिक क्षेत्र में व्यक्ति, परिवार, समुदाय, समाज, राज्य व्यक्ति की गरिमा और सामाजिक संगठन एवं समन्वय को क्रियान्वित किया जा सकता है।

वस्तुतः न्याय की अवधारणा का आधार प्रकृति द्वारा मनुष्य को दिया गया अधिकार है। मनुष्य के अधिकार का सिद्धान्त वस्तुतः एक गृहित सिद्धान्त है। न्याय की अवधारणा इस गृहीत प्रमेय पर आधारित है। परन्तु मानवीय अधिकार का यह गृहित सिद्धान्त मनुष्य की सुरक्षा एवं सुख और समृद्धि के लिए निरंतर आवश्यक है। मनुष्य के जीने के अधिकार को मूलतः धर्म ने और आगे चलकर राज्य संस्था ने मान्यता दी है। न्याय की इस अवधारणा को सत्य तथा बंधुभाव के मूल्यों के साथ धर्म ने जोड़ दिया। वस्तुतः सत्य, न्याय और बंधुभाव ये तीनों मूल्य किसी भी धर्म के आधार स्तम्भ होते हैं। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि न्याय की अवधारणा मुख्यतः एक नैतिक धारणा है।⁸

वस्तुतः न्याय की अवधारणा के आवश्यक अंग के रूप में समता को स्वीकार किया गया है। अतः न्याय की अवधारणा का विचार ‘समता’ की अवधारणा के संदर्भ में भी करना जरूरी है। वास्तव में स्वतंत्रता एवं समता न्याय के लिए आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किये गये हैं। इन दोनों से ही न्याय की अवधारणा का निर्माण होता है। उपरोक्त दोनों तत्वों के अतिरिक्त बंधुभाव भी न्याय के आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किया जाता है। करुणा और अनुकम्पा को ही हम बंधुता कहते हैं। बंधुभाव न्याय का अलंकार माना जाता है। उपरोक्त समस्त मूल्यों का समग्र निहितार्थ को विश्लेषित किये बिना न्याय की सम्पूर्णता को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

विधि का शासन तथा विधि के समक्ष समानता, सामाजिक न्याय के दो मूलभूत आधार स्तम्भ हैं। धर्म, वर्ण, जाति, रंग, वंश आदि इकाइयों के आधार पर जब किसी समाज में भेदभाव किया जाता है तब सामाजिक न्याय से हम परे हटते जाते हैं। विषमता के गर्भ में अन्याय छिपा होता है। किसी समाज का वर्गीकरण जब ऐसे भेदनीति पर होता है, तब उस समाज की कमजोर इकाइयों को न्याय से वंचित रहना पड़ता है।

स्वतंत्रता से आशय “अवरोध की अनुपस्थिति” है, जबकि समानता से तात्पर्य भेदभाव की अनुपस्थिति है।⁹ सामाजिक न्याय का अर्थ कानून के समक्ष सभी की समानता तथा शक्ति को वर्ग विशेष के हाथों में ही केन्द्रीकरण का निषेध करता है।¹⁰ यहाँ यह स्पष्ट करना समीचीन प्रतीत होता है। सामाजिक न्याय के ढांचे में स्वतंत्रता और समानता के तत्व निरपेक्ष न होकर सापेक्ष हो

जाते हैं। तात्पर्य यह है कि सामाजिक न्याय के संदर्भ में व्यक्ति अथवा समूह के लिए स्वतंत्रता से आशय वहीं तक है जहां तक कि यह दूसरे व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक न बने। यदि सम्पन्न की स्वतंत्रता की परिणति विपन्न की दासता में होती है तो स्वतंत्रता के सिद्धांत का कोई सैद्धान्तिक या व्यवहारिक अर्थ नहीं रह जाता।

सामाजिक न्याय: प्रमुख चुनौतियाँ

सामाजिक न्याय की समस्याओं को यदि क्रमबद्ध किया जाए तो एक लम्बी सूची बन सकती है। वे अनेक तथा विविध हैं। आजादी के पश्चात भारत में इन समस्याओं को पहचाना गया है और सामाजिक न्याय के विभिन्न अभिकरण उनके समाधान की दिशा में जूझ रहे हैं। बहुत अच्छे परिणाम नहीं निकल पाए हैं, क्योंकि एक समस्या कई छोटी-छोटी समस्याओं को जन्म देती है। फलतः कई प्रकार की उलझने उपस्थित हो जाती है और सामाजिक न्याय का मूल मुद्दा दब जाता है। अतः ये समस्याएं जटिल एवं व्यापक हैं। इनमें से कुछ प्रमुख समस्याओं का विवेचन यहाँ प्रस्तुत है—¹¹

बंधुआ प्रथा—यह प्रथा बहुत पुरानी है जिसके अन्तर्गत साधन-सम्पन्न और जमींदार परिवार कुछ निर्धन बेसहारा परिवार के स्त्री-पुरुषों को अपने यहां मात्र रोटी तथा फटे-पुराने वस्त्र के लालच में रख लेते हैं। बंधुआ प्रथा से कुछ भिन्न बंधुआ मजदूरी का चलन अलग से विद्यमान है। कुछ ठेकेदार गरीब मजदूरों को थोड़ी सी अग्रिम धन राशि देकर एक गाँव से अन्य स्थानों पर ले जाकर गिरवी रख देते हैं और मामूली मजदूरी तय करके, उन्हें एक प्रकार से बंधक बना लेते हैं। बंधुआ प्रथा और बंधुआ मजदूरी के अन्तर्गत काम करने वाले स्त्री-पुरुषों की दयनीय स्थिति को देखकर ही भारत में बंधुआ मजदूर मुक्ति आन्दोलन सक्रिय है।¹²

बेगार प्रथा—लगभग बंधुआ प्रथा एवं बंधुआ मजदूरी के समान, पर कुछ भिन्न, सामाजिक न्याय की एक समस्या बेगार है। यह प्रथा भी ठेठ दूर-दराज गाँवों में विद्यमान है जिसके अन्तर्गत बेगार करने वालों को न तो रोटी, वस्त्रादि और न ही मजदूरी की पगार दी जाती है।¹³

सूदखोरी—यह परम्परा प्राचीन युग से चली आ रही है। यह साहूकारों तथा महाजनों की एक गूढ़ नीति है। वे गरीब मजदूर तथा छोटे-छोटे किसानों की एक ऊँची ब्याज दरों पर रुपया उधार देते हैं और एवज में उनकी कोई सोने-चांदी की चीज अथवा मकान, जमीन आदि गिरवी रख लेते हैं।¹⁴

बेरोजगारी—यह प्रायः बहुत से देशों की समस्या है। भारत में तो बेरोजगारी की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। न केवल अनपढ़-अशिक्षित स्त्री-पुरुष अपितु शिक्षित स्नातक,

स्नातकोत्तर अभ्यर्थी, इंजीनियर्स, डॉक्टर्स और ऐसे ही बहुत से युवक-युवतियाँ बेरोजगारी के शिकार हैं।¹⁵

जनसंख्या वृद्धि—सामाजिक न्याय के लिए एक अन्य चुनौती जनसंख्या वृद्धि है। यह समस्या विकट एवं व्यापक है। जिसने डांवाडोल कर रखा है। भारत जैसे विकासशील देश में इतनी बड़ी आबादी का भरण-पोषण करना एक गम्भीर समस्या है बहुत से परिवार तो अपने बच्चों का भरण-पोषण नहीं कर पाते।¹⁶

निर्धनता—सामाजिक न्याय की एक और विकराल समस्या निर्धनता की है। गरीबी, दरिद्रता ने सभी धर्मों एवं जातियों के अधिकतर स्त्री-पुरुषों को अपनी गिरपट में ले रखा है इस प्रकार सामाजिक न्याय की दृष्टि से देहाती क्षेत्रों में जो निर्धन तथा दलित लोगों के साथ अत्याचार होते हैं उनकी रोकथाम करना सरकारी अभिकरणों का मुख्य दायित्व है। उन्हें सामाजिक न्याय मिलना कठिन हो रहा है।¹⁷

हिंसात्मक क्रान्ति—सामाजिक न्याय निश्चय ही क्रान्तिकारी परिवर्तन का घोटक है और जब-जब इसके पक्ष में महत्वपूर्ण निर्णय हुए जैसे पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण तब-तब भारतीय समाज में भूचाल आये।¹⁸

सर्वोदयी विकल्प

सर्वोदय चिन्तन के प्रणेता महात्मा गाँधी एवं उनके बौद्धिक उतराधिकारी विनोबा भावे के दर्शन में हमें सामाजिक न्याय की समस्या का समाधान देखने को मिलता है।

(अ) गाँधी दृष्टि—विश्व समय-समय पर विभिन्न सामाजिक-आर्थिक विचारधाराओं ; पूँजीवादी, समाजवादी और साम्यवादी के प्रचार, प्रयोग और क्रियान्वयन का साक्षी रहा है। लेकिन समस्त दृष्टिकोणों से सर्वोदय निःसंदेह गुणा प्रारूपों से बहुत अधिक श्रेष्ठ है। यह एक राष्ट्र के संतुलित और एकीकृत विकास को सामने रखता है जिसमें धनी और निर्धन विशेषाधिकार संपन्न और विशेषाधिकारहीन शासक और शासितों के बीच कोई अंतर नहीं होता है। सर्वोदय के चिंतन का सारांश भावना की भक्ति द्वारा विषयों के सामाजीकरण में निवास करता है। सर्वोदय में हठधर्मिता का कोई स्थान नहीं है। “सर्वोदय का दर्शन हठधर्मिताओं का समुच्चय नहीं है। इसके सारांश में, यह स्वयं को विषय के उपर फैल जाने की भावना के प्रयास और समाजीकरण के अनुकूल है।”¹⁹

सर्वोदयी सामाजिक और राजनीतिक अभिमुखीकरण के मुक्तिदाता का दर्शन है। जहाँ पीड़ा है, सर्वोदय इसका शमन करता है। यह मानवीय भावनात्मक एकीकरण और सर्वोच्च बौद्धिक आकांक्षा का चरमोत्कर्ष है। गाँधी ने उपयोगितावादी सिद्धान्त ‘अधिकतम

लोगों की अधिकतम भलाई' की निंदा की और सर्वोदय के दर्शन की वकालत की।²⁰

गाँधी ने मूलतः “सर्वोदय” शब्द की रचना नहीं की। उनसे भी पहले, सर्वोदय के विचार धार्मिक पुस्तकों-वेद, उपनिषद्, रामायण, गीता, कुरान और अन्य में पाये जाते हैं। भारतीय और पश्चिमी संतों द्वारा भी इसका उपदेश दिया गया है। लेकिन गाँधी ने इस पुराने सिद्धांत एवं आदर्शों को विस्तृत अर्थ एवं प्रयोग दिया।²¹ सर्वोदय की उत्पत्ति संस्कृत में हुई है जो “सर्व” यानि सभी और “उदय” यानि उत्थान से मिलकर बना है। सर्वोदय को उत्पत्ति मूलक अर्थ सभी का विकास है। इसमें सभी जीवित प्राणी शामिल हैं। अन्य शब्दों में सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ अन्य सभी का जनकल्याण है। यह शब्द पहली बार गुजराती में अनुवाद में लिए शीर्षक के रूप में जॉन रस्किन की पुस्तक ‘अनटु दिस लास्ट’ में प्रकट हुआ। सर्वोदय नौ आलेखों की श्रृंखला का शीर्षक था जिसे गाँधी ने लिखा और 1908 में दक्षिण अफ्रीका की साप्ताहिक इंडियन ओपिनियन में गुजराती में प्रकाशित किया।²²

गाँधी के बहु आयामी व्यक्तित्व के पास समस्याओं के संबंध में स्पष्ट विचार एवं निश्चित दृष्टिकोण था, जिनका उनके समय में भारत ने सामना किया। भारतीय समाज गहरी बुराइयों से ग्रस्त था। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से कमजोर हो गया था। दरिद्रता ने भारत की सामाजिक स्थिति को बर्बाद कर दिया था, जिसने जाति-संघर्ष, बाल-विवाह, सती प्रथा, दहेज, भ्रष्टाचार, शोषण इत्यादि क्षति पहुँचाई थी। गाँधी ने इन समस्याओं के शीर्ष हल का प्रयास किया।²³

सर्वोदय समाज में शोषण, भेद-भाव, असमानता और हिंसा का कोई स्थान नहीं है। गाँधी ने यह सामने रखा कि सर्वोदय इन आशंकित बुराइयों से भी मुक्त होना चाहिए। राजनीति, श्रम बिना धन, चरित्र बिना ज्ञान, नैतिकता विहीन व्यापार, मानवता विहीन विज्ञान और त्याग बिना सेवा। यह सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अवरोधों के आधार पर विभाजित होना चाहिए जहां यह सभी एक-दूसरे के प्रति कार्य और प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। सर्वोदय के प्रति उनके उद्देश्य ने इन समस्याओं के बीच एक अंतर्संबंध स्थापित करने के लिए योग्य बनाया।²⁴

सर्वोदय को मानसिकता के लिए कुछ विशेषतायें आवश्यक हैं। गाँधी ने एक व्यक्ति को ग्यारह प्रतीकों को आत्मअनुशासन हेतु प्रस्तुत किया ताकि एक अनुशासित समाज उभर सके। स्व-त्याग सर्वोदय के सामाजिक-व्यवस्था का सार है। प्रत्येक व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों की प्रसन्नता के लिए त्याग करने को तैयार एवं

इच्छुक रहना चाहिए उसे अन्य के लिए कार्य करना चाहिए और इसके बदले में प्राप्ति की आशा नहीं करनी चाहिए। सर्वोदय द्वारा वह नीचे से उपर की ओर राष्ट्र का निर्माण चाहते थे और स्वतंत्रता, न्याय, समानता और भाईचारा पर आधारित नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण चाहते थे।²⁵ गाँधी का आदर्श समाज (सर्वोदय) निम्नांकित विशेषताओं द्वारा चिह्नित किया गया है-²⁶

1. इसमें कोई दमनात्मक राज्य-शक्ति नहीं होनी चाहिए और नागरिकों की सामाजिक बाध्यता जैसे प्राचीन भारत की वर्णाश्रम-व्यवस्था से संगत होनी चाहिए।
2. इसमें ग्रामीण कृषि व्यवस्था शामिल होनी चाहिए जिसमें इच्छाएँ कम हो और सहयोग, संकीर्णता इत्यादि सामाजिक नागरिक और आर्थिक क्रियाओं की शासन पद्धति हो।
3. कृषि के अतिरिक्त अन्य उत्पादन कुटीर उद्योग और दस्तकारी पर आधारित होने चाहिए। शिक्षा हस्तशिल्प पर केन्द्रित होनी चाहिए।
4. विकेन्द्रीकरण और हस्तशिल्प उत्पादन आधारित शासित सिद्धांतों के अतिरिक्त तीन अन्य आर्थिक नियमों का पालन या अभ्यास करना चाहिए-ग्रामीण आत्म-निर्भरता, जीविकापार्जन (स्वयं के शारीरिक श्रम द्वारा जीविकोपार्जन) अपरिग्रह (न्यूनतम उपयोग की वस्तुओं का प्रयोग या संग्रह) भारी मशीनों या भारी वाहनों का इस समाज में कोई स्थान नहीं है।

महात्मा गाँधी ने नैतिक आधार प्रदान कर आत्मविश्वासी बनाया। उन्होंने भारतीयों को जागृत कर अपने दम पर स्वराज्य को स्थापित करने पर बल दिया। उन्होंने राष्ट्र को उचित मार्ग बताया और इस प्रयोजन हेतु सत्याग्रह का अस्त्र प्रदान किया। उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में ही केवल गम्भीर परिवर्तन नहीं किये अपितु जीवन के संदर्भ में उनकी एक व्यापक धारणा के कारण सामाजिक, औद्योगिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में क्रांति की। उन्होंने स्त्रियों को अपने अधिकार के प्रति जागृत किया, सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने की गति को तेज कर दिया और अछूतों तथा उत्पीड़ितों को समानता व न्याय का आश्वासन दिया।

गाँधी ने राजनीति का सत्य, अहिंसा और साधनों की पवित्रता द्वारा आध्यात्मिकमरण कर, अन्याय और निरंकुशता का सत्याग्रह द्वारा सामना कर, अपने रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन का समन्वय करने का प्रयत्न किया तथा प्रभावकारी लोकतंत्र की स्थापना कर, न्याय और समानता पर आधारित समाज की नींव डालकर विश्व शान्ति के लिए मार्ग प्रशस्त किया।²⁷

रस्किन की पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' से गाँधी ने सर्वोदय समाज की प्रेरणा ग्रहण की और उन्होंने लोगों को सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, ईश्वर में आस्था आदि पर संगठित करने का प्रयास किया। गाँधी ने सर्वोदय समाज की स्थापना में सामाजिक न्याय की धारणा को परिलक्षित किया। सर्वोदय समाज का लक्ष्य सभी नागरिकों का कल्याण है।

सर्वोदय गाँधीवादी दर्शन का मर्म है। 'सर्वोदय' का शाब्दिक अर्थ है "सबका उदय" अर्थात् समाज के प्रत्येक व्यक्ति का सर्वांगीण उत्थान। सर्वोदय की आस्था भारतीय सांस्कृतिक चेतना में सदैव से अन्तर्व्याप्त नहीं है। सदियों पूर्व भारतीय संतों ने "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया" सर्वोदयी आस्था की उद्घोषणा का संभवतः प्राचीनतम उदाहरण दिया।²⁸ सर्वोदय सभी व्यक्तियों के उत्थान के प्रति अभिप्रेरित है। उत्थान की सर्वोदयी परिभाषा की परिधि में राग, द्वेष, टकराव, द्वन्द्व या प्रतियोगिता के लिए कोई स्थान नहीं है।²⁹

गाँधी के सामाजिक विचार के मुख्य तत्व हैं, अपरिग्रह, न्याय, अहिंसा और मानवीय समता के आदर्श। गाँधी के लिए समाजवाद का अर्थ जनता की सेवा के लिए अपने संपूर्ण जीवन को समर्पित करना था। गाँधी का मत था कि "परमेश्वर, सत्य और अहिंसा में अटूट विश्वास ही समाजवाद का सारांश है। 30

गाँधी का मत है "समाजवाद एक सुंदर शब्द है और जहां तक मैं जानता हूँ समाजवाद में सभी मनुष्य समान हैं। न कोई नीचा, न कोई ऊँचा। व्यक्ति के शरीर में सिर ऊपर है लेकिन इसीलिए वह ऊँचा नहीं है। पैरों के तलवे धरती का स्पर्श करते हैं इसीलिए पैरों का स्थान नीचा नहीं है। जिस तरह व्यक्ति के सभी अंग बराबर हैं, उसी तरह समाज के सभी वर्ग समान हैं।" उन्होंने अपना मत व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया है कि "राजा और रंक, राजा का सिर काटने से, बराबर नहीं हो जायेंगे, इसी तरह मालिक और मजदूर, मालिक का सिर काटने से समान नहीं बन सकेंगे।" अर्थात् एक वर्ग में अहित करने से दूसरे वर्ग में हित का साधन संभव नहीं है। इसी को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सर्वोदय की परिकल्पना प्रस्तुत की जिसमें समाज के सभी वर्ग के समान विकास व महत्ता पर बल दिया गया।

गाँधी सामाजिक अवधारणा में समता व न्याय के विचार स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। उनके विचार नीच, स्वार्थ, पाशविक वासना और कुत्सित लोभी वृत्ति में विभाजित विश्व के लिए एक समरसतापूर्ण समाज के संदेश थे। यह गाँधी की चमत्कारिक प्रतिभा ही थी कि उन्होंने समाज की प्रत्येक समस्या की तरफ आमजन का ध्यान खींचा।

(ब) विनोबा दृष्टि—विनोबा के विचार भी राष्ट्रीय तथा सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गाँधीवादी भावना से ओत-प्रोत रहे। गाँधी के 'सर्वोदय समाज' की स्थापना उनके जीवन का लक्ष्य बना रहा। उनके भूदान आंदोलन का लक्ष्य केवल भूमि का वितरण करना मात्र नहीं था अपितु उनका अन्तिम लक्ष्य तो 'सर्वोदय समाज' की स्थापना करना था। इस सर्वोदय में सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की कामना निहित थी। ग्रामदान, सम्पत्तिदान, जीवनदान आदि भूदान आंदोलन के ही अंग हैं जिनके माध्यम से विनोबा भारत में शान्तिपूर्ण क्रान्ति लाने को प्रयत्नशील थे। इस क्रान्ति का उद्देश्य सामाजिक न्याय की स्थापना रही है।³¹

वास्तव में विनोबा मानवता के समुचित विकास के आकांक्षी थे। ईश्वर की भक्ति के मार्ग में वे अहंकार को एक बड़ी बाधा मानते थे। उनके मत में भक्ति और अहंकार का परस्पर कटु विरोध है। अहंकार मानवीय गुणों का हास्य करता है। विनोबा के मत में अहंकार रहित विनम्र और समर्पण के भाव से प्रार्थना करने पर ही हम ईश्वर के निकट पहुंच सकते हैं।³²

विनोबा का सम्पूर्ण चिन्तन और समग्र जीवन नैतिकता पर आश्रित है। मानव जीवन एक अविभाज्य इकाई है जिसे हम भौतिक और आध्यात्मिक दो टुकड़ों में नहीं बांट सकते। विनोबा के अनुसार नैतिक मूल्य जीवन की सबसे बड़ी सम्पत्ति आत्मानुभूति अथवा ईश्वरानुभूति है जिसकी प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ और नैतिक जीवन व्यतीत करना नितांत आवश्यक है।³³

उनका मत था कि "यदि हम मानव-हितों की एकता में विश्वास पैदा करें, तो 'सर्वोदय' में यह मान्यता निहित है कि मानव-आत्मा पवित्र है और स्वतन्त्रता, समानता, न्याय तथा बन्धुत्व के आदर्शों को हमें अत्यधिक महत्व देना चाहिए।³⁴ सर्वोदय चिन्तन का मूल मंत्र है कि पूरे समाज में इसी प्रकार की कौटुम्बिक भावना पायी जानी चाहिए।³⁵ सर्वोदय एक जीवनव्यापी क्रान्ति है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के सब पहलुओं में आमूल परिवर्तन करना यही सर्वोदय का अन्तिम ध्येय है।³⁶

विनोबा के दर्शन का उद्देश्य शासनविहीन और शोषणविहीन समाज की स्थापना था। वे स्वीकार करते थे कि आदर्श राज्य में न कोई शासक होगा न शासित तथा न कोई शोषक होगा, न शोषित। उसकी सम्प्रभुता राज्य या राजा की नहीं, बल्कि प्रजा में निहित होगी। ऐसे राज्य का आधार दण्ड नहीं अपितु स्वशासन एवं स्वनियंत्रण ही होगा।

विनोबा ने गाँधी के सामाजिक समता एवं न्याय संबंधी धारणा को विकसित करने का प्रयास किया। वे व्यक्ति को समाज का

अभिन्न अंग मानते थे और व्यक्ति के उत्थान के लिए समाज के क्रियाशील होने को आवश्यक मानते थे। उनके मत में सामाजिक न्याय का अर्थ समाज के पिछड़े वर्ग के लोगों को सुविधा सम्पन्न व्यक्तियों के समक्ष करने का प्रयास है। उनके मत में समाज के निम्नतम स्तर के व्यक्ति के विकास के लिए जमीन, धन, समानता का अवसर और आत्मविश्वास का अहसास आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने ग्रामदान, सम्पत्तिदान और भूदान का आह्वान किया। विनोबा ने सामाजिक न्याय को स्थापित करने में राज्य की भूमिका को अधिक महत्व नहीं दिया बल्कि उन्होंने इस उद्देश्य के लिए समाज को जागरूक करने पर बल दिया। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये उन्होंने राजनीति का त्याग करके सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में आन्दोलन किया। उन्होंने राजनीति को भी लोकनीति में परिवर्तित करने पर जोर दिया। यही कारण है कि उन्होंने राजनीति का केन्द्र राज्य की अपेक्षा लोक को बनाने पर बल दिया।³⁷

विनोबा के सिद्धांत का मूल आधार गाँधीय अवधारणा रहा है। उनके मत में समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु लैंगिक, जातीय, साम्प्रदायिक आधार पर भेदभाव को समाप्त करना होगा। इस असमानता को दूर करने के परिणामस्वरूप ही समाज के प्रत्येक वर्ग में लोगों को विकास का समान अवसर मिलेगा। जिससे व्यक्ति के साथ-साथ ही समाज का भी विकास संभव होगा अन्यथा समाज दलदल में पँसकर पोंगापन्थी ढकोसला बनकर रह जायेगा। उपरोक्त विकास के अवसर केवल शासन के भरोसे संभव नहीं है बल्कि विनोबा के मत में इस हेतु जनता को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहना होगा। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि सामाजिक समानता को प्राप्त करने हेतु हमें राजनीतिक, आर्थिक समानता को भी बनाये रखना होगा।³⁸

प्रारम्भ से विभिन्न चिन्तकों ने समाज में व्याप्त बहुविध अन्याय एवं असमानता को अनुभव किया है। उन्होंने इस तथ्य को भी स्वीकार किया है कि सामाजिक असमानता एवं अन्याय दोनों का एक प्रमुख कारण प्रजा में जागरूकता का अभाव है। अतः उन्होंने समय-समय पर अपने विचार प्रकट कर प्रजा में सामाजिक समानता एवं न्याय की प्राप्ति हेतु जागरूकता की आवश्यकता पर हमारा ध्यान इंगित किया है। वास्तव में यदि प्रजा स्वयं जागरूक न होकर केवल शासन, राज्य व समाज के भरोसे रहेगी तो उसे इससे कभी भी छुटकारा नहीं मिलेगा। इस संदर्भ में गाँधी वादी चिन्तकों ने 'सर्वोदय' की अवधारणा प्रस्तुत की। इस चिन्तन के साथ यह विडम्बना रही है कि इसे विश्व में कहीं भी व्यवहारिक धरातल पर पूर्ण रूप से लागू नहीं किया गया है। इसका प्रमुख कारण है

कि जिनका शक्ति पर अधिकार रहा है वे जानते हैं कि यदि इस विचारधारा को लागू कर दिया गया तो उनका वर्चस्व समाप्त हो जायेगा। हमारे विनम्र अभिमत में प्रजा की जागरूकता नितान्त आवश्यक है।

आधुनिक भारत की सामाजिक प्रक्रिया ऐसी नवचेतना के साथ प्रारम्भ हुई जिसने यहाँ के नागरिकों को स्वतंत्रता, जनतंत्र और मानववाद की दिशा में सम्प्रेरित किया। स्वतंत्रता को वैयक्तिक अनुभूति और सृजनात्मकता की वृद्धि के रूप में ग्रहण किया गया, जनतंत्र की भावना ने सहयोग एवं सहमति की सम्भावना को सुदृढ़ बनाया और मानववाद ने लोगों को प्रेरित किया कि वे मानव की लौकिक, सामाजिक व आर्थिक समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। इस प्रकार मानव की मुक्ति का प्रश्न एक सामाजिक समस्या बनकर भारतीय क्षितिज पर उपस्थित है। जिसका समाधान निश्चित रूप से सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तन में परिलक्षित किया गया। अभिव्यक्ति और समालोचना की भावना, जो मध्यकालीन समाज में दब गई थी, अन्ततः सर्वसत्तावाद, राष्ट्रीय दासता, धर्मान्धता, धार्मिक कट्टरवाद, शास्त्रों की दिव्यता एवं वर्ण तथा जाति की विभीषिका और छूआछूत की अमानुषिकता के विरुद्ध खुलकर सामने आई। आधुनिक युग के साथ-साथ सामाजिक समता एवं न्याय की धारणा को नया सन्दर्भ और नया अर्थ मिला, उसे व्यवहारिक जीवन से जोड़ा गया, उसने सबका ध्यान आकर्षित किया और जन सामान्य एवं विचारकों को यह समझने के लिए बाध्य किया कि सामाजिक समता एवं न्याय की धारणा की पूर्ण अनुभूति या व्यवहारिकता केवल सामाजिक जीवन में प्रभावी हो सकती है। इसकी पूर्ति हेतु सर्वोदय चिन्तन एक सुनिश्चित विकल्प प्रस्तुत करती है।

संदर्भ सूची

1. पूरणमल, मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और भारत का संविधान, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2003, पृ. 72
2. मैसनर, जे, सोशल एशिक्ष, ग्रीनवुड पब्लिशिंग ग्रुप न्यूयार्क, 1973. पृ. 231
3. डेविड सेल्फ, एल., इंटरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेस खण्ड आठ, मैकलिन पब्लिशर्स, न्यूयार्क, 1972, पृ. 341
4. रॉबर्ट ग्विन, पी., इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, खण्ड पंचम यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, 1974, खण्ड पंचम, पृ. 643
5. अम्बेडकर, बाबा साहब, राइटिंग्स खण्ड स्पीचेज, महाराष्ट्र सरकार प्रकाशन, बम्बई, 1987, खण्ड 2, पृ 25

6. जाटव, डी. आर., सामाजिक न्याय का सिद्धान्त, समता साहित्य सदन, जयपुर, 1993, पृ. 15
7. ब्रेडले एफ.एच., ऐथिकल स्टडीज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, अमेरिका, 1988, पृ. 174
8. वाघमारे, जनार्दन, समाज परिवर्तन की दिशाएं विकास प्रकाशन कानपुर, 1999, पृ. 141
9. गाबा, ओ.पी., डाइमेंशन ऑफ सोशल जस्टिस, दिल्ली नेशनल, 1983, पृ. 30-40
10. घोष, बी.एन., जनवरी-मार्च, द आन्टोलोजी ऑफ गाँधीयन पॉलिटिकल इकानॉमी, वाल्यूम 23, नई दिल्ली, 2002, पृ. 395
11. जाटव डी.आर., सामाजिक न्याय का सिद्धान्त, समता साहित्य सदन, जयपुर, 1993, पृ.131
12. उपर्युक्त, पृ. 132
13. उपर्युक्त, पृ. 133
14. उपर्युक्त, पृ. 132
15. उपर्युक्त, पृ. 133
16. उपर्युक्त, पृ. 133
17. उपर्युक्त, पृ. 139
18. उपर्युक्त, पृ. 140
19. मोहंती, जी.एन., लेख सर्वोदय एण्ड अरविन्दों, गाँधी मार्ग, गांधी शांति प्रतिष्ठान, दिल्ली, खण्ड 4
20. पंडेय, बी.पी., गाँधी सर्वोदय एण्ड ऑर्गनाइजेशन, चुग पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1988, पृ. 20-21, जुलाई 1906, पृ. 211
21. मिश्रा, अनिल दत्त, सर्वोदय : एक विकल्प, गाँधीय अध्ययन भारतीय गाँधी अध्ययन समिति की वार्षिक शोध पत्रिका, 2 अक्टूबर 2016, पृ. 19
22. उपर्युक्त पृ. 20
23. मिश्रा, अनिल दत्त, फंडामेंटल्स आफ गाँधीज्म, मितल पब्लिकेशन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 14
24. उपर्युक्त, पृ. 14
25. उपर्युक्त, पृ. 23-24
26. गंगल, ए.सी., गाँधीयन थॉट एण्ड टेक्नीक्स इन द मॉडर्न वर्ल्ड, क्राइटेरियन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1988, पृ. 158-59.
27. उपर्युक्त, पृ. 95.
28. झा, राकेश कुमार, गाँधीय चिन्तन में सर्वोदय, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2009, पृ. 32
29. उपर्युक्त, पृ. 34
30. तेदुलकर, डी.जी., महात्मा : दि लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गाँधी, पब्लिकेशन डिवीजन, भारत सरकार, नई दिल्ली खंड चतुर्थ, पृ. 15
31. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी दि लास्ट फेज, खंड द्वितीय, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1958, पृ. 133
32. भावे विनोबा, सर्वोदय की ओर, अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ प्रकाशन, काशी, 1954, पृ. 4
33. उपर्युक्त, पृ. 4
34. उपर्युक्त पृ. 5
35. उपर्युक्त पृ. 5
36. धर्माधिकारी, दादा, सर्वोदय दर्शन, सर्वसेवा संघ प्रकाशन वाराणसी, 1979, पृ. 6
37. टण्डन, विश्वनाथ, आचार्य विनोबा भावे, पब्लिकेशन डिवीजन, नई दिल्ली, 1992, पृ. 89
38. उपर्युक्त, पृ. 90

जलवायु परिवर्तन के वैश्विक प्रभाव

दीपक कुमार अवस्थी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)



शोध सारांश

जलवायु भौतिक पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग है सहप्रादेशिक विभिन्नताओं की कुँजी है। इसके प्रभाव इतने सूक्ष्म, व्यापक एवं विविधतापूर्ण होते हैं, जिनका सम्यक रूप से विश्लेषण करना एक जटिल कार्य है। वस्तुतः परिवर्तन प्रकृति का नियम है। पृथ्वी पर अधिकांश परिवर्तनों के लिए वैश्विक उष्णता प्रमुख घटक रहा है। जलवायु परिवर्तन और वैश्विक उष्णता ने इन दिनों दुनिया के कई विकसित और विकासशील देशों की नींद उड़ा दी है। वायु मण्डल में ग्रीन हाउस गैसों और कार्बन की बढ़ती मात्रा ने प्राणि जगत के लिए संकट पैदा कर दिया है। इसके प्रभाव से समुद्री जल स्तरों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। परिणामस्वरूप वैश्विक और स्थानीय क्षेत्र के मौसम में अधिकाधिक एवं असमयिक परिवर्तन, वर्षा की असमानता, वायुमण्डलीय पवनों की प्रवृत्तियों में परिवर्तन, धूल भरी आंधियाँ चलने लगी और मरूस्थल का प्रसार तेजी से हो रहा है।

संकेताक्षर : जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण एवं मानवीय जनजीवन पर प्रभाव, परिस्थितिकी असंतुलन, चुनौतियाँ

जलवायु परिवर्तन ने वैश्विक स्थितियों को अत्यधिक गहराई से प्रभावित किया है ऐसा माना जाता है कि मनुष्य का जीवन पृथ्वी पर लगभग 2 लाख वर्ष पुराना है। इसके सन्दर्भ में यह बात मायने रखती है कि पर्यावरण की अनुकूलता कितनी है इसके लिए कौनसी दशाएँ जिम्मेदार है। ये वहीं दशाएँ हैं जिनसे मनुष्य की शारीरिक और मानसिक क्षमता ने सबसे बेहतर सामंजस्य बनाया। इन दशाओं में मनुष्य को अपने अस्तित्व की सुरक्षा में कम चुनौतियाँ झेलनी पड़ी। इसके चलते मनुष्य की बहुत सारी ऊर्जा बची जिसकी उपयोग उसने अपने विकास में किया। मनुष्य ने अपने आस-पास के पर्यावरण को समझा, उसका विश्लेषण किया और उसी के अनुसार अनेक व्यवस्थाओं का विकास किया। उसने कृषि के लिये मौसम को ऋतुओं में बाँटा ताकि वह अधिकतम उत्पादन कर सके। अपनी फसलों के अनुसार उसने अपने औजारों का विकास किया और अपने समाज की संरचना भी इसी आधार पर की।¹ उसने सागर तटों और नदियों के इर्द-गिर्द अपनी बस्तियाँ बसाई तथा खान-पान की आदतों को स्थानीय वनस्पतियों व जैव-विविधता के आधार पर विकसित किया। उसके धार्मिक विश्वास और जीवन दर्शन तक में उसके पर्यावरण और परिस्थितिकी तंत्र के स्वरूप का प्रभाव झलकता है। एक पूरी व्यवस्था है जो हजारों सालों के अनुभव का परिणाम है। ऐसा नहीं था कि मनुष्य ने प्राकृतिक संपदा का कभी दोहन ही नहीं किया, परन्तु पर्यावरण

एवं पारिस्थितिक तंत्र उसकी गतिविधियों से लगभग अप्रभावित रहा। सच्चाई तो यह है कि मनुष्य ने पहली बार धरती के पर्यावरण को उसी समय प्रभावित करना शुरू कर दिया था जब उसने खेती की शुरुआत की। इसके लिये उसने वनों को साफ किया और नदियों से नहरें निकालकर उनके प्रवाह से छेड़खानी की, पर पर्यावरण पर इसके प्रभाव नगण्य थे। जब मानवीय गतिविधियों का पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ने वाला प्रभाव पृथ्वी की स्वक्षतिपूर्ण क्षमता से अधिक हो गया और संसाधनों का दोहन पृथ्वी की संसाधन सृजन की क्षमता से अधिक होने लगा। इन दोनों कारकों का सम्मिलित प्रभाव आज पूरे विश्व में अनेक रूपों में महसूस किया जा रहा है। पर्यावरणीय प्रदूषण, वैश्विक तापन (ग्लोबल वार्मिंग) और अनेक और अनेक प्रकार की आपदाओं की तीव्रता और बारंबारता में वृद्धि दरअसल इन्हीं कारकों की देन है।²

प्रथम दृष्टया लगता है कि ये समस्याएँ कितनी भी विकराल हों, हम जब चाहें अपने रवैये को सुधारकर समस्याओं को नियंत्रित कर लेंगे। पर यहाँ संयुक्त राष्ट्र के जलवायु परिवर्तन के लिये बने अंतर-सरकारी पैनल के अध्यक्ष राजेन्द्र पचौरी का कथन महत्वपूर्ण है, “कार्यवाही करने का ये अलार्म है। अगर दुनिया ने अब भी उत्सर्जन रोकने के लिये कुछ न किया तो मामला हाथ से निकल जाएगा।” जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र की विस्तृत रिपोर्ट में स्पष्ट कहा गया है, “तापमान की डिग्री बढ़ने

के साथ-साथ गंभीर व्यापक और सुधारे न जा सकने वाले असर होंगे।¹ ऐसे संवेदनशील समय में जब पूरी पृथ्वी परिवर्तनों से जूझ रही है, असंभव है कि मानव समाज इससे अछूता रहेगा। बनी-बनाई व्यवस्थाओं के तहस-नहस होने का खतरा सिर पर है। ऐसे में समझदारी यही है कि अब हमारी कोशिशें महज जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग को रोकने तक ही सीमित न रहें बल्कि अब हमें बदलती परिस्थितियों और धरती के मिजाज को समझते हुए अपनी क्षमताओं का मूल्यांकन करने की जरूरत है। और जरूरत है इन बदलावों से सामंजस्य बिठाने के लिये नई रणनीति बनाने की। इसके लिये हमें सबसे पहले बदलती जलवायु के सभी संभावित प्रभावों का आकलन करना होगा। इस आकलन के पश्चात् ही हम अपनी तैयारियों की दिशा निर्धारित कर सकेंगे।³

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव—जलवायु परिवर्तन का सबसे पहला असर कृषि पर पड़ेगा। इसका एक बड़ा कारण मिट्टी की गुणवत्ता में बदलाव का होना है। रासायनिक खादों के अधिकाधिक प्रयोग से पहले ही मिट्टी में जैविक कार्बन घटता जा रहा है, तापमान बढ़ने से मिट्टी की नमी भी घटती जाएगी। इसका सीधा असर मिट्टी की लवणता में वृद्धि के रूप में सामने आएगा। साथ ही, बाढ़ जैसी आपदाओं की बढ़ती बारंबारता से भी मिट्टी का क्षरण बढ़ेगा। पर इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण और व्यापक असर ऋतुओं का पैटर्न बदलने पर दिखाई देगा। हमारा हजारों सालों का कृषि अनुभव ऋतुओं के बदलते पैटर्न की भेंट चढ़ जाएगा कृषि उत्पादन घटने से पहला प्रभाव खाद्यान्न मूल्यों की वृद्धि से खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी। शेष उत्पादों के दाम भी बढ़ेंगे जिससे महंगाई में वृद्धि होगी। कृषि क्षेत्र पर आधारित अन्य प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्रों का उत्पादन भी बुरी तरह प्रभावित होगा। एशियाई विकास बैंक के अनुसार थाईलैंड और वियतनाम में चावल का उत्पादन लगभग आधा रह जाएगा। वहीं दक्षिण एशिया में वर्ष 2050 तक कृषि उत्पादन में 50 फीसदी की कमी आने की संभावना है।⁴

यहाँ विचारणीय यह है कि जहाँ अगले कुछ दशकों में बढ़ती आबादी के लिये हमें अधिक खाद्यान्न उत्पादन की जरूरत है, वहीं खाद्यान्न उत्पादन की कमी की इन संभावनाओं के बीच हमारे पास स्थितियाँ सुधारने के कौन-कौन से विकल्प मौजूद हैं? कृषि पर जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम करने के उपायों की चर्चा करें तो सबसे पहले हमें फसल उत्पादन की नई तकनीकों का विकास करना होगा। हमें ऐसी किस्मों को बढ़ावा देना होगा जो तापमान में बदलावों के प्रति अधिक सहज हों, साथ ही हमें लवणीयता और क्षारीयता सहन करने वाली किस्मों का भी विकास करना होगा। हमें तापमान परिवर्तन और मौसम के अन्य कारकों में बदलाव को बारीकी से समझना होगा तथा बुराई के समय में भी आवश्यकतानुसार बदलाव करना पड़ेगा। साथ ही, मिश्रित कृषि को प्रोत्साहन देकर मृदा उर्वरता संवर्द्धन हेतु मिट्टी की प्रकृति में

हो रहे बदलावों को भी नए सिरे से समझना होगा और जाँच के उपरांत उर्वरक डालने की प्रवृत्ति बढ़ानी होगी।⁵ पर इन सारे उपायों से अधिक महत्वपूर्ण है कृषि क्षेत्र में सिंचाई की नई तकनीकों का विस्तार करना। वर्तमान एवं पारंपरिक तकनीकों के चलते हमारे देश में कुल जल उपयोग का 90 प्रतिशत हिस्सा सिंचाई में खर्च हो जाता है जो कि धारणीय नहीं है। ऐसे में हमें सिंचाई की नई उन्नत तकनीकों के प्रतीकात्मक उपयोग को व्यावहारिक उपयोग के स्तर पर लाना होगा। मौसम और जलवायु के बदलते मिजाज को देखते हुए यह अनिवार्य हो चुका है। यद्यपि इस दिशा में भारत सरकार सक्रिय है और सिंचाई की आधुनिक तकनीकों को प्राप्त करने के लिये इस क्षेत्र में विश्व के सर्वश्रेष्ठ देश इजरायल से सहयोग भी लिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, पशुधन और इसके उत्पादों पर भी जलवायु परिवर्तन का सीधा असर पड़ेगा। भारत में पशुधन का कृषि क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 25 प्रतिशत का योगदान है। दरअसल, पशुधन से प्राप्त अन्य उत्पादों, मसलन अंडे, दूध, माँस इत्यादि का खाद्य कीमतों को प्रभावित करने में बड़ा योगदान होता है। यह तेजी से बढ़ने वाला क्षेत्र है जिसकी सालाना वृद्धि दर लगभग 5 प्रतिशत है।

करनाल स्थित राष्ट्रीय दुग्ध अनुसंधान संस्थान के अनुसार तापमान में परिवर्तन का भैंस और गायों की दुग्ध उत्पादन क्षमता पर व्यापक असर पड़ता है। NDRI का मानना है कि जलवायु में होने वाले परिवर्तन से अगले 4 सालों में 16 लाख टन दूध उत्पादन का सालाना नुकसान हो सकता है। पर बात इतनी ही नहीं है, बढ़ता तापमान पशुओं की प्रजनन क्षमता के लिये भी घातक है। हाल ही में नेशनल एकेडमी ऑफ एग्रीकल्चर साइंसेज द्वारा जारी एक नीतिपत्र में इस बात की पुष्टि की गई। पशुधन की सुरक्षा और भविष्य में संभावित समस्याओं से बचने का एक अच्छा उपाय स्थानीय नस्लों को वरीयता देना है। स्थानीय देशी नस्लों में प्रायः बदलती जलवायु से सामंजस्य बनाने की क्षमता अन्य नस्लों की तुलना में अधिक होती है।⁶

खाद्यान्न और पशु उत्पादों की इस कमी का सीधा असर आबादी के स्वास्थ्य पर पड़ेगा। खाद्य सुरक्षा खतरे में आते ही विश्व भर में कुपोषण बढ़ेगा। कुपोषण सीधे तौर पर आबादी की प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित करेगा। कमजोर प्रतिरोध क्षमता के चलते लोग ज़्यादा बीमार होंगे और इसके चलते समाज के अधिकांश संसाधन भोजन और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी चीजों पर ज़्यादा खर्च होंगे। ये खर्च शिक्षा और कौशल विकास कार्यक्रम पर सीधा असर डालेंगे और समाज फिर से उसी दुश्चक्र में जा फँसेगा जहाँ से निकालने के लिये विश्व भर की तमाम सरकारों ने अपनी बड़ी ऊर्जा खर्च की। परन्तु खाद्यान्न और पशु-उत्पादों की कमी के संकट से निपटने में अगर हम सफल हो गए तो जलवायु परिवर्तन के एक बड़े और दूरगामी दुष्प्रभाव से बचने में सफल रहेंगे।⁷

सामाजिक प्रभाव—प्रचलित समाजशास्त्रीय अध्ययन में भारत के विषय में एक चौंकाने वाला तथ्य सामने आया कि बाढ़, सूखा और अकाल जैसी आपदाओं की बारम्बारता ने देश में नक्सलवाद और उग्रवाद को बढ़ावा दिया है। कोलंबिया विश्वविद्यालय के समाज विज्ञानी क्रिश्चियन पैरंटी ने शोध के अपने नतीजों में पाया कि पर्यावरणीय संकट ने बिहार, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ तथा अन्य राज्यों में असंतोष को बढ़ावा दिया। ऐसे में यह महज़ संयोग नहीं है कि यह पूरा क्षेत्र जो 'लाल गलियारा' के नाम से जाना जाता है, अक्सर सूखा और अकाल से प्रभावित रहता है। देश के इन क्षेत्रों में आंतरिक अशांति से निपटने का एकमात्र सीधा और सरल तरीका यही है कि यहाँ की मूलभूत समस्याओं का निदान कर दिया जाए। देश का 'लाल गलियारा' जो अभी भी अशांत ही है के लिये कुछ ऐसी प्रभावी नीतियों की जरूरत है जो इस क्षेत्र में संपन्नता के माध्यम से शांति ले आए। सूखे और गरीबी की मार झेल रहे इन क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर पैदा करने की जरूरत है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट है कि तापमान बढ़ने के कारण हृदय और श्वास संबंधी बीमारियों में वृद्धि होगी। दुनिया के विकासशील देशों में पेचिश, हैजा, दस्त, पीत-ज्वर, मियादी बुखार जैसी संक्रामक बीमारियों का प्रभाव बढ़ेगा। दरअसल, तापमान और वर्षा की मात्रा रोगवाहकों के विस्तार को प्रभावित करती है। ऐसे में अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका और दक्षिण-पूर्व एशिया में मच्छरों से फैलने वाली बीमारियों का प्रकोप बढ़ेगा और मलेरिया, डेंगू, जापानी बुखार (मेनिन्जाइटिस), पीला बुखार जैसी बीमारियों के चलते मृत्युदर में इजाफा होगा। अनुमान है कि फाइलेरिया और चिकनगुनिया के प्रभाव में भी वृद्धि होगी। तापमान बढ़ने से जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि जहाँ मनुष्यों और उनके पशुधन के लिये नई बीमारियों की चुनौती लाएगी, वहीं नए जीवों के आगमन से स्थानीय जातियों से उनका संघर्ष अवश्यंभावी होगा। यह जलवायु परिवर्तन का महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय प्रभाव होगा। महत्वपूर्ण बात यह है कि जहाँ इससे एक ओर जैव-विविधता संकट में पड़ेगी, वहीं दूसरी ओर नई बीमारियों की चुनौतियाँ मानव सभ्यता के लिये भी बड़ा संकट होंगी। कारण यह है कि जिस गति से परिवर्तन जारी और अपेक्षित है, हमारे शोध की रफ़्तार उससे कम है। हमें विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट को गंभीरता से लेने की जरूरत है। तीव्र वृद्धि की संभावनाओं वाली बीमारियों तथा नई बीमारियों के विषय में व्यापक और तीव्र शोध की जरूरत है। साथ ही जल्द-से-जल्द हमें बीमारियों के प्रभावी टीके और अप्रभावी होती दवाइयों के स्थान पर नई दवाओं की खोज करनी होगी।

पर्यावरणीय प्रभाव—विश्व वन्यजीव कोष के अनुसार इस सदी के अंत तक प्रशांत महासागर से कोरल विलुप्त हो जाएंगे। इससे लगभग 10 करोड़ लोगों की आजीविका विभिन्न कारणों से संकट

में पड़ जाएगी। मसलन कोरल पर्यटकों को आकर्षित करते हैं और कोरल के न रहने पर इन क्षेत्रों की आय घट जाएगी, साथ ही साथ सागरीय परितंत्र पर इसका प्रभाव मत्स्य उत्पादन को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित करेगा।⁸ ग्लोबल वार्मिंग का जो सबसे बड़ा और व्यापक असर है, वह है ध्रुवों की बर्फ का पिघलना। ध्रुवों की बर्फ और पहाड़ों, ग्लेशियर पिघलने से जहाँ एक ओर समुद्र के जलस्तर में वृद्धि होती जा रही है, वहीं सदानीरा नदियों का अस्तित्व भी संकट में है। भारत के हिमालय क्षेत्र में वर्ष 1962 से 2000 के बीच लगभग 16 प्रतिशत हिमनद पिघल गए। इनमें पश्चिमी हिमालय के हिमनद सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। कश्मीर का कोल्हाई हिमनद 20 मीटर से अधिक पिघल चुका है और गंगोत्री हिमनद 23 मीटर प्रतिवर्ष की दर से पिघलता जा रहा है। हिमनदों के पिघलने की अगर यही दर रही तो वह दिन दूर नहीं जब हिमालय क्षेत्र से हिमनद पूर्णतः समाप्त हो जाएंगे। इससे हिमालय से निकलने वाली तमाम सदानीरा नदियों गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सतलज, रावी, चेनाब इत्यादि का सदानीरा स्वरूप समाप्त हो जाएगा और ये मौसमी नदियाँ बन जाएंगी। इसका एक अन्य परिणाम यह होगा कि इन नदियों पर स्थित जलविद्युत इकाईयाँ बंद हो जाएंगी और विद्युत उत्पादन गंभीर रूप से प्रभावित होगा। साथ ही, सिंचाई हेतु जल की भी कमी होगी जिससे खाद्यान्न उत्पादन पर विपरीत असर पड़ेगा।

अमेरिका खुफिया तंत्र ने अपने एक अध्ययन में माना है कि पानी की घटती उपलब्धता व फसलों की गिरती पैदावार की समस्या 2030 के बाद अनियंत्रित हो जाएगी और भारत की आबादी का बड़ा हिस्सा पर्यावरणीय शरणार्थी बन चुका होगा। पर बात सिर्फ खाद्यान्न की कमी और भारतीय आबादी की नहीं है। पिछले 50 सालों के दौरान अंटार्कटिका में लगभग 13 हजार वर्ग किलोमीटर बर्फ पिघलने का अनुमान है। ऐसे में मिन्न का नील डेल्टा व मालदीव सहित अनेक द्वीप डूबने की कतार में है। यह परिदृश्य भी अपने आप में बहुआयामी समस्याओं की शुरुआत है। दरअसल, पर्यावरणीय शरणार्थियों के मुद्दे पर विश्व भर में नई बहस की शुरुआत हो चुकी है। ये शरणार्थी विश्व के जिन क्षेत्रों में भी उभरकर सामने आएंगे, वही क्षेत्र दुनिया के नए अखाड़े होंगे। ये शरणार्थी विश्व भर में सीमा विवाद की वजह बनेंगे, घुसपैठ की घटनाएँ होंगी और विश्व भर की सीमाएँ तनावग्रस्त रहेंगी। ऐसे में ग्लोबल वार्मिंग विश्व राजनीति में तनाव की एक बड़ी वजह बनकर उभरेगा। जहाँ तक बात ग्लोबल वार्मिंग के चलते समुद्रों का स्तर बढ़ने की है तो इससे बचने का सिर्फ और सिर्फ एक ही उपाय है, और वह है ग्लोबल वार्मिंग को रोकना।⁹

जलवायु परिवर्तन हमारे अस्तित्व से जुड़ा मसला है, इसे नकारना शिकारी को सामने देखकर शत्रुमुर्ग की तरह रेत में सिर धँसाने जैसा होगा। बात साफ है। सामने खड़ी समस्या को नजरअंदाज

करके उससे बचा नहीं जा सकता। हमें अपनी कमियों पर पुनर्विचार करना होगा, अपनी क्षमताओं को जानना होगा और जलवायु परिवर्तन की समस्या को अपने तमाम फायदों से ज़्यादा अहमियत देते हुए अपनी प्राथमिकता सूची में शामिल करना होगा। परन्तु ग्लोबल वार्मिंग के विषय में जो एक बड़ा विवाद है, वह इसके घटित होने या न होने से ही संबंधित है। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि ग्लोबल वार्मिंग जैसी कोई चीज़ है ही नहीं और यह कुछ विकसित देशों का फैलाया प्रोपेगैंडा मात्र है। इसका उद्देश्य विकासशील देशों को कार्बन उत्सर्जन का हवाला देकर अधिक उत्पादन से रोकना है। खैर, सच्चाई चाहे जो भी हो, परन्तु ग्लोबल वार्मिंग न सही पर प्रदूषण में वृद्धि पर तो कोई विवाद ही नहीं है। और ग्लोबल वार्मिंग को पूरी तरह नकारना भी किसी नजरिये से समझदारी नहीं है।

इन तमाम बातों के बावजूद यदि हमने ग्लोबल वार्मिंग के लाभों की बात न की तो हमारी चर्चा अधूरी ही रहेगी। अपनी तमाम हानियों के बावजूद ग्लोबल वार्मिंग ही वह घटना है जिसके चलते विश्व के तमाम ठंडे प्रदेशों में हजारों सालों से जमी बर्फ पिघलेगी और हमारी कृषि भूमि में वृद्धि होगी, साथ ही इन क्षेत्रों में दबे खनिज संसाधनों को निकालना भी आसान हो सकेगा। परन्तु यह लाभ हानियों की अपेक्षा कम है। समाज का सर्वसाधनसम्पन्न हिस्सा इस बात से नाराज़ है कि उसका हिस्सा और बड़ा क्यों नहीं हो पा रहा है, जबकि गहराई से विचार करने पर हम पाते हैं कि अधिक-से-अधिक उपभोग करने की यह भूख ही दरअसल तमाम पर्यावरणीय समस्याओं की जड़ है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव—जलवायु परिवर्तन के कारण पृथ्वी के तापमान में परिवर्तन होगा जिससे ध्रुवों की बर्फ पिघलेगी और समुद्री जलस्तर में वृद्धि होगी। समुद्री जलस्तर में वृद्धि से जहाँ जलीय पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव पड़ेगा, वहीं कई द्वीप जलमग्न हो सकते हैं। यह ध्रुवीय पारिस्थितिकी तंत्र को भी प्रभावित करेगा तथा समस्त खाद्य जाल में अव्यवस्था का संकट उत्पन्न हो सकता है। ओज़ोन परत के क्षरण से त्वचा संबंधी कई बीमारियाँ उत्पन्न होगी एवं कई जीव जो बढ़ते तापमान के साथ अनुकूलन में सक्षम नहीं होंगे उनका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। निर्वनीकरण न केवल जंगली जीवों के अस्तित्व पर खतरा है बल्कि इससे वर्षा के पैटर्न में परिवर्तन होगा तथा तापमान भी बढ़ेगा। कृषि का तापमान तथा वर्षा से सीधा संबंध होता है। जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ेगा। अधिक वर्षा के कारण भी मृदा का क्षरण होता है। समुद्र के जलस्तर में वृद्धि के कारण आस-पास के क्षेत्र में जल लवणता में वृद्धि होगी जिससे कृषि प्रभावित होगी। जलवायु परिवर्तन के कारण पशुपालन तथा मत्स्यपालन क्षेत्र भी प्रभावित होंगे। कृषि के प्रभावित के कारण पशुपालन तथा मत्स्यपालन क्षेत्र भी प्रभावित होंगे। इससे महंगाई में वृद्धि होगी तथा गरीबी, भुखमरी और अकाल जैसी समस्याएँ उत्पन्न होंगी। यह समाज में

असंतोष को जन्म देगा जिससे तमाम तरह के असामाजिक कृत्यों में बढ़ोतरी होगी। जलवायु परिवर्तन बाढ़ सूखा तथा चक्रवात जैसी प्राकृतिक आपदाओं का कारण बनेगा जिससे जनजीवन बुरी तरह प्रभावित होगा।¹⁰

संभावित समाधान—विभिन्न देशों को इस समस्या के निराकरण के लिये आगे आना होगा। हालाँकि, जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिये संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क के अंतर्गत कई प्रयास किये जा रहे हैं। इनमें क्योटो प्रोटोकॉल, पेरिस एग्रीमेंट, आदि प्रमुख हैं। इसके लिये सामान्य लोगों को जागरूक होना होगा।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन के लिये सर्वाधिक जिम्मेदार देश और लोग अपने संसाधनों और तैयारियों के बल पर इसके प्रभावों को सबसे कम झेलेंगे परन्तु वे लोग जो इन बदलावों के लिये सबसे कम जिम्मेदार हैं, इन प्रभावों की चपेट में सबसे ज़्यादा आएंगे। ऐसे में अतिशयोक्ति नहीं कि जलवायु परिवर्तन न केवल एक पर्यावरणीय समस्या है बल्कि यह एक सामाजिक समस्या भी है। ज़ाहिर है कि इस समस्या से निपटने की जिम्मेदारी सिर्फ वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों और पर्यावरणविदों की ही नहीं है। समाज को इससे निपटने के अपने रास्ते तलाशने होंगे। संपन्न और विपन्न दोनों को साथ मिलकर इस समस्या से निपटना होगा, क्योंकि जब गरीब और विपन्न के पास रहने को ज़मीन न होगी, खाने को अनाज न होगा तो वह अमीर की ज़मीन पर कब्जा करेगा और अमीर का हिस्सा ही लूटेगा।

संदर्भ सूची

1. गुर्जर, आर.के., इरीग्रेशन फॉर एग्रीकल्चर मार्टिनाइजेशन साइन्टीफिक पब्लिशर्स, जोधपुर, 2003, पृ. 24
2. जोशी, प्रीती, विकास प्रकाशन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2010, पृ. 39
3. काजरी, सेन्ट्रल एरिड जॉन रिसर्च इंस्टीट्यूट जर्नल, जोधपुर, 1986, पृ. 64
4. शर्मा, आर.एन., रिसर्च प्लानिंग एण्ड संस्टेनेबल डवलपमेंट, रिटु पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2014, पृ. 162
5. मंडेलसो, आर एण्ड जेम्स ई.एन., “द इम्पैक्ट ऑफ क्लाइमेट चेंज ऑन द यूनाइटेड स्टेट इकनोमी, यू.के. केम्ब्रिज फ्रॉम द इंटर गवर्नमेंटल पेनल ऑन क्लाइमेट कंट्रोल, 1999, पृ. 112
6. सुजस, वार्षिकांक राजस्थान सूजस, सूचना और प्रसारण विभाग, जयपुर, 2009, पृ. 12
7. मौसम विभाग, जयपुर, राजस्थान 2013-14
8. राजस्थान पत्रिका 13 मई, 2018, पृ. 8
9. पेरिस जलवायु विश्व सम्मेलन दिसम्बर, 2015
10. क्योटो प्रोटोकॉल, जलवायु सम्मेलन, 1997

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एवं मानवाधिकार संरक्षण



भवशेखर

सहायक आचार्य, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

मानवाधिकार मनुष्य के सर्वांगीण विकास हेतु बेहद आवश्यक है। मानवाधिकारों का अमल में आना जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी उनका संरक्षण है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग मानवाधिकारों के संरक्षण एवं इनकी स्थापना में अतिमहत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह संस्था शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुसंधान आदि के माध्यम से मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करती है। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के आधार पर यह आयोग स्थापित किया गया। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग राज्य सरकार को सूचना देकर राज्य सरकार के नियंत्रण में रहने वाले किसी कारागार अथवा सुधार गृह में रहने वाले व्यक्तियों की जीवन दशा का अध्ययन करने हेतु निरीक्षण कर सकता है। आयोग मानवाधिकार संरक्षण को बढ़ावा देने वाले समस्त कृत्य करता है। साथ ही इस सम्बन्ध में जागरूकता बढ़ाने हेतु आवश्यक प्रकाशन, सेमीनार आदि का सम्पादन कराता है। आयोग ने समय-समय पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की हैं, जिनके माध्यम से मानवाधिकार संरक्षण एवं संवर्धन किया जा सके। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग निरन्तर अपनी सजगता एवं सक्रियता के माध्यम से अपनी विशिष्ट भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

संकेताक्षर : मानवाधिकार, आयोग, अध्यादेश, प्रतिस्थापित, संरक्षण

मध्यकाल में 13वीं शताब्दी में सन् 1215 का इंग्लैंड का प्रसिद्ध आज़ा पत्र जिसे मेग्नाकार्टा कहा जाता है, ने मानवाधिकार की पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।¹ सन् 1689 में ब्रिटेन में हुई क्रान्ति ने मानवाधिकार की अवधारणा को विस्तार दिया। इसके बाद 1776 की अमेरिकी क्रान्ति तथा 1789 की फ्रांस की क्रान्ति ने मानवाधिकारों को विकसित होने के लिए आधारभूमि तैयार की।² द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था कायम करने के प्रयास शुरू हुए, जिसमें युद्ध की विभीषिका दोहराई न जा सके। फलस्वरूप 24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई।³ 11 फरवरी, 1946 को संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 68 के तहत मानवाधिकार संरक्षण के लिए प्रारूप तैयार करने हेतु एक मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने जून 1948 में मानवाधिकार की एक विश्वव्यापी घोषणा का प्रारूप तैयार किया, जिसे 10 दिसम्बर को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा स्वीकृत एवं घोषित किया गया। तभी से प्रतिवर्ष 10 दिसम्बर को अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है।⁴ तद्विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर भी इसी क्रम में प्रयास किए जाने लगे।

मानव अधिकारों के विभिन्न कार्यों के पालन के लिए राष्ट्रीय संस्था की स्थापना अत्यन्त प्रभावी साधनों में से एक है। इस प्रकार की संस्था शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुसंधान के माध्यम से मानव अधिकारों के प्रति जानकारी पैदा करने में सहायक होती है तथा मानव अधिकारों के अभिकथित उल्लंघन के मामलों में निष्पक्ष अन्वेषण करती है। राष्ट्रीय संस्था अथवा आयोग के महत्व को महसूस करते हुए 1993 में विश्व मानव अधिकार सम्मेलन में यह कहा गया है कि 'विश्व मानव अधिकार सम्मेलन सरकारों से ऐसी राष्ट्रीय संरचनाओं और संस्थाओं को मजबूत बनाने का अनुरोध करता है जो मानव अधिकारों की अभिवृद्धि एवं संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हों'।⁵ इस प्रकार वियना घोषणा और कार्यवाही कार्यक्रम के क्रियान्वयन पर संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार उच्चायुक्त की 12 सितम्बर, 1998 की रिपोर्ट में यह कहा गया कि राज्यों को राष्ट्रीय मानव अधिकार संरचना और संस्थाओं की स्थापना को और मजबूत बनाने पर विचार करना चाहिए। उन्हें इस प्रक्रिया के समर्थन करने के लिए तकनीकी सहायता के विद्यमान कार्यक्रमों का उपयोग भी कर लेना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समुचित संसाधनों का प्रबन्ध

करना चाहिए तथा राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर इनके अधिकतम प्रयोग को सुनिश्चित करना चाहिए।

मानवाधिकार आयोग की स्थापना के लिए भारत के राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश (अनु. 123(1)) पारित किया। राज्य स्तर पर समान आयोगों की स्थापना के लिए इसी अध्यादेश में प्रावधान किया गया था। राष्ट्रपति के अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने के लिए लोकसभा ने 18 दिसम्बर, 1993 को 'मानव अधिकार संरक्षण विधेयक' पारित किया। राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात् 8 जनवरी, 1994 को यह एक अधिनियम बन गया, जिसे 'मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम' के नाम से जाना जाता है।⁶

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा की तृतीय समिति के समक्ष भारत ने मानव अधिकारों की अभिवृद्धि एवं संरक्षण के लिए एक राष्ट्रीय संस्था को स्थापित करने अथवा मजबूत करने के सम्बन्ध में अपनी भावना प्रकट की थी। इसने एक प्रारूप संकल्प प्रस्तुत किया था, जिसमें इस प्रकार की राष्ट्रीय संस्थाओं की स्वतंत्रता तथा निष्ठा के महत्व पर जोर दिया गया। प्रारूप संकल्प में भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव से विभिन्न प्रकार की राष्ट्रीय संस्थाओं के कार्य करने के सम्बन्ध में तथा मानव अधिकार नियमों को क्रियान्वित करने के लिए उनके योगदान के सम्बन्ध में दो वर्षों में महासभा को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने हेतु निवेदन भी किया था। मानव अधिकारों के संरक्षण एवं अभिवृद्धि के लिए राष्ट्रीय संस्था की स्थापना के सम्बन्ध में भारत द्वारा दिखाई गई रूचि प्रशंसनीय थी। अन्तर्राष्ट्रीय फोरम में दिखाई गई रूचि से यह स्पष्ट होता है कि भारत इस प्रकार की संस्था की स्थापना के पक्ष में था। फिर भी उस समय इस प्रकार की किसी भी संस्था की स्थापना नहीं की गई।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993

भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना 27 सितम्बर, 1993 को की गई। इसकी स्थापना के लिए राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश प्रतिस्थापित किया। राज्य स्तर पर समान आयोगों की स्थापना के लिए भी इसी अध्यादेश में प्रावधान किया गया था। राष्ट्रपति के अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने के लिए लोकसभा ने 18 दिसम्बर, 1993 को 'मानव अधिकार संरक्षण विधेयक' पारित किया। राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात् 8 जनवरी, 1994 को यह एक अधिनियम बन गया जिसे 'मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम' के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम का उद्देश्य राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्यों में मानव अधिकार आयोगों तथा मानव अधिकार न्यायालयों के गठन के लिए प्रावधान करना था जो मानव अधिकारों तथा उनसे सम्बद्ध अथवा आनुषांगिक मामलों के बेहतर संरक्षण के लिए था। इस अधिनियम की धारा 2(घ) में मानव अधिकारों का तात्पर्य संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निहित व्यक्तियों की प्राण,

स्वतंत्रता, समानता एवं गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकारों से है जो भारत के न्यायालयों के द्वारा प्रवर्तनीय हैं। अधिनियम के द्वारा भारत में एक राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई तथा राज्यों में राज्य मानव अधिकार आयोगों की तथा जिलों में जिला मानव अधिकार न्यायालयों की स्थापना की गई।⁷

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

आयोग का गठन - राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन राष्ट्रपति के अध्यादेश के अन्तर्गत 27 सितम्बर, 1993 को दिया गया जिसके प्रथम अध्यक्ष पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र को बनाया गया। इसके बाद पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री मानेपल्ली नारायणराव वेंकटाचल्ला को आयोग का अध्यक्ष बनाया गया। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना अधिनियम के अध्याय दो के अनुसार की गई है। इस अधिनियम की धारा 3 में यह अभिलिखित है कि केन्द्र सरकार एक ऐसे निकाय का गठन करेगी जिसे राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के नाम से जाना जावेगा।⁸ आयोग के आठ सदस्य होंगे और भारत के उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश इसके अध्यक्ष होंगे तथा आयोग के अन्य सदस्य उच्चतम न्यायालय के सेवारत या सेवामुक्त मुख्य न्यायाधीश होंगे। मानव अधिकार के क्षेत्र में ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखने वाले दो प्रसिद्ध व्यक्ति, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग और राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष भी इसके सदस्य होंगे।⁹ आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा, प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली 6 सदस्यीय समिति की अभिशंसा पर की जावेगी। अध्यक्ष तथा सदस्य अपने पद ग्रहण की तिथि से 5 वर्ष की अवधि तक पद धारण करेंगे। वे दूसरी पदावधि के लिए भी पात्र होंगे। कोई भी व्यक्ति 70 वर्ष की आयु तक आयोग की सेवा कर सकता है। आयोग का एक महासचिव होगा जो अपने कार्यों का सम्पादन उसके लिए दी गई शक्तियों को ध्यान में रखकर करेगा।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष अथवा किसी सदस्य को उसके पद से उच्चतम न्यायालय के द्वारा की गई जाँच के बाद अध्यक्ष अथवा आयोग के किसी अन्य सदस्य को कदाचार अथवा अक्षमता के आधार पर राष्ट्रपति के आदेश द्वारा हटाया जावेगा। राष्ट्रपति अध्यक्ष अथवा किसी सदस्य को उसके पद से हटा सकता है यदि वह - (क) दिवालिया न्याय निर्णीत कर दिया हो; अथवा (ख) वह पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों के अतिरिक्त किसी वैतनिक नियोजन में संलग्न रहा हो; अथवा (ग) वह मानसिक या शारीरिक शैथिल्य के कारण अपने पद पर बने रहने के योग्य न रह गया हो; अथवा (घ) किसी सक्षम न्यायालय द्वारा उसे विकृत चित्त घोषित कर दिया गया हो; अथवा (ङ)

ऐसे अपराध के लिए दोष सिद्ध या दण्डित किया गया हो जिसमें राष्ट्रपति की राय में नैतिक अधर्मता अन्तर्गुह्य हो।

उपरोक्त के अलावा केन्द्र सरकार इस आयोग को भारत सरकार के सचिव की श्रेणी का एक अधिकारी उपलब्ध करवायेगी जो इस आयोग का महासचिव होगा। इसके अतिरिक्त आयोग के कृत्यों के दक्षतापूर्ण निर्वहन के लिए ऐसे पुलिस और अन्वेषणकर्ता कर्मचारियों को सरकार उपलब्ध करावेगी जिसे वह आवश्यक समझेगी। आयोग का मुख्यालय दिल्ली में होगा तथा आयोग केन्द्र सरकार से अनुमति लेकर भारत के अन्य स्थानों पर भी अपने कार्यालय स्थापित कर सकेगा।

आयोग की शक्तियाँ एवं कार्य

(1) आयोग स्वप्रेरणा से अथवा पीड़ित व्यक्ति द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा अपने समक्ष प्रस्तुत की गई याचिका पर (क) मानव अधिकार के उल्लंघन या उसके उपशमन अथवा (ख) किसी लोक सेवक द्वारा ऐसे उल्लंघन के निवारण में की गई उपेक्षा के परिवाद की जाँच करेगा। (2) आयोग न्यायालय के सामने लम्बित किसी ऐसी कार्यवाही पर न्यायालय के अनुमोदन से हस्तक्षेप कर सकता है जिसमें मानव अधिकारों के उल्लंघन का कोई अभिकथन अन्तर्गुह्य हो। (3) आयोग राज्य सरकार को सूचना देकर राज्य सरकार के नियंत्रण में रहने वाले किसी कारागार अथवा अन्य किसी संस्था का, जहाँ व्यक्तियों को उपचार, सुधार एवं संरक्षण के लिए निरूद्ध किया जाता हो, अन्तःवासियों की जीवन दशा का अध्ययन करने के लिए तथा उस पर सिफारिश करने के लिए निरीक्षण करेगा। (4) आयोग मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन प्रावधानित संरक्षणों का पुनर्विलोकन करेगा और उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए उपायों की सिफारिश करेगा। (5) आयोग आतंकवाद की कार्यवाहियों सहित उन कारकों का पुनर्विलोकन करेगा जो किसी के मानव अधिकार एवं उस समय में लागू संरक्षण के प्रयोग को प्रतिषिद्ध करते हैं तथा उपयुक्त सिफारिश भी करेगा। (6) आयोग मानव अधिकार पर की गई संधियों एवं अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का अध्ययन करेगा तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिश करेगा। (7) आयोग मानव अधिकारों के क्षेत्र में शोध करेगा एवं शोध कार्य को प्रोत्साहन देगा। (8) आयोग समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मानव अधिकार साक्षरता का प्रसार करेगा तथा उन अधिकारों का संरक्षण के लिए उपलब्ध जानकारी एवं संरक्षणों की अभिवृद्धि, प्रकाशन, समाचार माध्यम सेमिनारों एवं अन्य उपलब्ध संसाधनों के द्वारा करेगा। (9) आयोग ऐसे अन्य कार्यों को भी करेगा जिनको वह मानव अधिकारों की अभिवृद्धि के लिए आवश्यक समझेगा। (10) आयोग मानव अधिकार के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं एवं गैर सरकारी संगठनों के प्रयासों

को प्रोत्साहित करेगा। (11) आयोग केन्द्र सरकार तथा संबंधित राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। आयोग ऐसे किसी भी मामले में विशिष्ट रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा जो उसकी राय में इतनी आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है कि उसे वार्षिक रिपोर्ट के प्रस्तुत करने तक स्थगित नहीं किया जा सकता।

केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार आयोग की वार्षिक तथा विशेष रिपोर्ट को क्रमशः संसद अथवा राज्य विधान मण्डल के प्रत्येक सदन के समक्ष रखेगी। आयोग की सिफारिश पर की गई कार्यवाहियों तथा आयोग की सिफारिश, यदि स्वीकार न की गई हो तो उसे स्वीकार न किये जाने के कारणों को भी रखेगी। आयोग को परिवाद की जाँच करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अधीन किसी वाद का विचारण करने वाले सिविल न्यायालय की शक्तियाँ होंगी।

आयोग के कार्य

1. स्वप्रेरणा से या किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा उसको प्रस्तुत की गई अर्जी पर -
 - (अ) मानव अधिकारों का किसी लोक सेवक द्वारा अतिक्रमण या दुष्प्रेरण किए जाने की, या
 - (ब) ऐसे अतिक्रमण के निवारण में किसी लोक सेवक द्वारा उपेक्षा की, शिकायत के बारे में जाँच करना,
2. किसी न्यायालय के समक्ष लम्बित किसी कार्यवाही में, जिसमें मानव अधिकारों के अतिक्रमण का कोई अभिकथन अन्तर्गुह्य है, उस न्यायालय के अनुमोदन के मध्यक्षेप करना,
3. राज्य सरकार को सूचना देकर, राज्य सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी जेल या किसी अन्य संस्था का, वहाँ व्यक्ति उपचार, सुधार या संरक्षण के प्रयोजनों के लिए निरूद्ध या दाखिल किए जाते हैं, वहाँ के निवासियों के जीवन की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए निरीक्षण करना और उन पर सिफारिश करना,
4. संविधान या मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन उपबन्धित रक्षोपायों का पुनर्विलोकन करना और उनके प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन के लिए उपायों की सिफारिश करना,
5. ऐसी बातों का, जिनके अन्तर्गत आतंकवाद के कार्य हैं और जो मानव अधिकारों के उपभोग में विघ्न डालते हैं, पुनर्विलोकन करना और समुचित उपचारी उपायों की सिफारिश करना,
6. मानव अधिकारों से संबंधित संधियों और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय लिखतों का अध्ययन करना और उनके प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन के लिए सिफारिशें करना,

7. मानव अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उसका संवर्धन करना,
8. समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मानव अधिकार संबंधी जानकारी का प्रसार करना और प्रकाशनों, संचार माध्यमों, गोष्ठियों और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध रक्षोपायों के प्रति जागरूकता का संवर्धन करना,
9. मानव अधिकारों के क्षेत्र में कार्यरत गैर सरकारी संगठनों और संस्थाओं के प्रयासों को उत्साहित करना।
10. ऐसे अन्य कृत्य करना, जो मानव अधिकारों के संवर्धन के लिए आवश्यक समझे जाएं।¹⁰

आयोग की सिफारिशें

आयोग ने सरकार के समक्ष समय-समय पर रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं। इन रिपोर्टों में आयोग के कार्यों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए तथा मानव अधिकारों की अभिवृद्धि एवं संरक्षण के लिए बहुत-सी सिफारिशें भी की गई हैं। उनमें से मुख्य इस प्रकार है - (1) पीड़ित व्यक्ति अथवा उसके परिवार के सदस्यों को अनुतोष प्रदान करने की शक्ति प्रदान करने हेतु आयोग के लिए अधिक स्वायत्तता सुनिश्चित करने के क्रम में आयोग ने 'मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993' में संशोधन करने की सिफारिश की है। (2) संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा दिसम्बर, 1984 में अंगीकार किये गये यातना और क्रूर, अमानवीय और अपमानजनक व्यवहार अथवा दण्ड के अन्य रूपों के विरुद्ध अभिसमय, जो जून, 1987 को लागू हुआ था, को स्वीकार करने की सिफारिश की है। (3) पुलिस को सुधारने तथा उसे शिक्षित करने की सिफारिश की है। उसने यह सिफारिश की है कि पुलिस सुधार आयोग, 1979 की द्वितीय रिपोर्ट, जिसमें पुलिस के अन्वेषण कार्य को राजनीतिक दबाव से मुक्त रखने का सुझाव भी सम्मिलित है, पर कार्यवाही की जावे। (4) अभिरक्षात्मक अपराध विशिष्ट रूप से विद्रोहात्मक होते हैं, क्योंकि प्रतिरक्षा विहीन व्यक्ति के विरुद्ध लोक सेवक द्वारा विश्वासघात का प्रदर्शन करते हैं। आयोग ने इस सम्बन्ध में यह सिफारिश की है कि भारतीय कारागार अधिनियम, 1894 का पुनरीक्षण किया जाना चाहिए। आयोग कारागार प्रणाली में सुधार करने के लिए एक नया अखिल भारतीय कारागार नियम संग्रह तैयार कर रहा है। (5) व्यक्तियों को उनके मानव अधिकारों की जानकारी देने के लिए जनसाधारण में जागरूकता की आवश्यकता है, किन्तु दुर्भाग्यवश बड़ी संख्या में गैर सरकारी संगठनों के अस्तित्व में होने पर भी इस ओर कोई प्रभावपूर्ण कदम नहीं उठाया गया है। (6) मानव अधिकार से संबंधित प्राथमिकताओं में से एक प्राथमिकता यह है

कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यकों की स्थिति में सुधार किया जावे। (7) नीति निर्माताओं, सुरक्षा बलों एवं मानव अधिकार के प्रतिपादकों के बीच बातचीत जारी रखी जाय, क्योंकि इससे विद्रोह और आतंकवाद को निपटाने में विचार एवं कार्य की स्पष्टता पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। (8) अर्द्धसैनिक बल तथा सेना अपनी अभिरक्षा में रहने वाले व्यक्ति की मृत्यु अथवा बलात्कार के मामलों की रिपोर्ट सीधे आयोग को दें। (9) राष्ट्र को बालश्रम की समाप्ति के प्रयास, शिशुओं की शिक्षा के अधिकार आदि में प्रगति करनी चाहिए। (10) दूरदर्शन और आकाशवाणी दोनों को मानवाधिकार की जानकारी में वृद्धि करने की अपनी अन्तर्ग्रस्तता को बढ़ावा देना चाहिए।

निष्कर्ष

मानवाधिकार संरक्षण वर्तमान समय में मानव समुदाय हेतु अत्यन्त आवश्यक है ताकि मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग मानवाधिकार संरक्षण एवं संवर्धन में अपनी महत्ती भूमिका का निर्वहन कर रहा है। अपनी स्थापना के समय से लेकर वर्तमान समय तक इस आयोग ने अपने कार्यों के माध्यम से पहल करते हुए मानव समाज के सुनहरे भविष्य एवं सुखद जीवन हेतु अपनी उपयोगी भूमिका अदा की है। जिस अपेक्षा के साथ इस राष्ट्रीय संस्था का अस्तित्व हुआ, उन अपेक्षाओं पर यह खरी उतरती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकान्त, एम., भारत की राजनीतिक व्यवस्था, टाटा मैक्ग्राहिल, नई दिल्ली, 2014, पृ. 7.27
2. मिश्र, जयकुमार, भारत का संविधान : एक पुनर्दृष्टि, कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2010, पृ. 43
3. फडिया, कुलदीप, संयुक्त राष्ट्र संघ एवं प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2011, पृ. 2
4. उपर्युक्त, पृ. 95
5. यादव, डी.एस., भारत में मानवाधिकार, आस्था प्रकाशन, जयपुर, 2012, पृ. 135
6. उपर्युक्त, पृ. 136
7. गुप्ता, पंकज, मानवाधिकार व महिलाएँ, साहित्यागार, जयपुर, 2014, पृ. 103
8. मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 3
9. मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 4
10. मीना, जनक सिंह, मानवाधिकार : संकल्पना एवं यथार्थ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2015, पृ. 72-79